※ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ※

श्रीश्रीकृष्णचैतन्य चरितामृतम्

श्रीमन् मुरारिगुप्त प्रणीतम्

श्रीवृन्दावनधामवास्तव्येन न्यायवैशेषिकशास्त्रि, नव्यन्यायाचार्य्य,
काव्यव्याकरणसांख्यमीमांसा वेदान्ततर्कतर्कतर्क
वैष्णवदर्शनतीर्थाद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्रीहरिदासशास्त्रिणा
सम्पादितम् ।

सद्ग्रन्थ प्रकाशक :—
श्रीहरिदास शास्त्री
श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,
श्रीहरिदास निवास, कालीदह, पो० वृन्दावन ।
जिला–मथुरा (उत्तर प्रदेश)
पिन २८११२१
श्रीगौराङ्गाब्द ४९८

सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम्

प्रकाशक * मुद्रकः—
श्रीहरिदास शास्त्री
श्रीहरिदास निवास, कालीदह,
पो० वृन्दावन, जिला—मथुरा,
(उत्तर प्रदेश) पिन—२८११२१

प्रथमसंस्करणम्—एकसहस्रम्

प्रकाशन सहायता—४८.००

प्रकाशनतिथि
श्रीवासपण्डितगोस्वामितिरोभावतिथि
ज्येष्ठ कृष्णा दशमी
२५।५।८४

❊ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ❊

—❊❊—

विज्ञप्तिः

—❊❊—

परम करुणार्णव श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की अनुपम अनुकम्पा से तदीय अभीप्सित "श्रीश्रीकृष्णचैतन्य चरितामृतम्" ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। यह ग्रन्थ श्रीमन्महाप्रभु सम्बन्धीय चरित ग्रन्थ में सर्वादि तो है ही परवर्त्ती रचित चरितावली समूह का उपजीव्य भी है। इसका अपर नाम मुरारि गुप्तेर करचा है, इस प्रकार स्वरूप दामोदरेर करचा ग्रन्थ का भी उल्लेख, श्रीकृष्णदास कविराज कृत श्रीचैतन्य-चरितामृत ग्रन्थ में है, किन्तु वह अप्राप्य है।

यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में निबद्ध होने से भी सुमार्ज्जित बाङ्गला भाषा के सहित इसका पूर्ण सामञ्जस्य विद्यमान है, केवल विभक्ति का ही प्रभेद है। अतएव ग्रन्थ की भाषा जिस प्रकार अमृत मधुर है, भाव भी उस प्रकार अनवद्य चित्ताकर्षक है, श्रीगौराङ्गदेव की कोमल करुण प्रतिच्छवि का वर्णन ग्रन्थ के स्थान स्थान में है, जिसका सकृत् पाठ सेही वह भक्त वृन्दके मानस मुकुरमें सुस्थिर भाव से अङ्कित हो जाती है। वस्तुतः अति स्वल्प कथा से अति विशाल भाव वर्णन में कवि मुरारि सिद्ध हस्त थे। निदर्शन स्वरूप कतिपय पद्य इस प्रकार हैं—

"निज संस्मृति मात्रसम्पदः पुलकप्रेमजड़ा बभूवह ।
स तदा निजमेव मन्दिरं समगादाश्वरीरया गिरा।
भक्तवर्ग सुखवेष्टितः प्रभुः प्रेमपाक परिपूरितो देहः।
हरिकीर्त्तनः सत् कथासुखं मुमुदे दानव सिंहमर्दनः॥

"पुलक प्रेम जड़" "प्रेमपाक परिपूरितोदेहः" पदद्वय के द्वारा श्रीगौर चन्दमा की अवस्था का प्रदर्शन हुआ है, वह

भाषास्थ सीमित अर्थ को अतिक्रम कर भक्त निकर के मानस मुकुर में अति विशाल एवं समुज्ज्वल रूप से प्रकाशित होती है।

शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार के सहित छन्दः की विविधता भी प्रस्तुत ग्रन्थ में समधिक परिलक्षित है। "मितञ्च सारञ्च वचो हि वाग्मिता" का निदर्शन भी बहुल परिमाण में है।

उदाहरण—"श्रीवासोयत्र रेजे हरिपद कमल प्रोल्लासन्मत्तभृङ्गः।
प्रेमार्द्रोत्तुङ्गबाहुः परमरसमदं गर्यतीशं सदोत्कः।
गोपीनाथो द्विजाग्र्यः श्रवण पथ गते नाम्निकृष्णस्यमत्तोऽ
त्युच्चैरौति स्म भूयोनवतरलकरो नृत्यति स्मातिवेलम्॥
बालोद्यद्भास्कराभो बुधजन कमलोद्बोधने दक्षमूर्त्तिः
कारुण्याब्धे र्हिमांशोरिवजन हृदयो त्तापशान्त्येक मूर्त्तिः।
प्रेमध्यानाति दक्षो नटन विधि कलासद्गुणाद्योमहात्मा
श्रीयुक्ताद्वैतवर्य्यः परम रस कलाचार्य्य ईशो विरेजे॥
यत्र गुणवानति रेजे चन्द्रशेखर गुरुद्विजराजः।
कृष्णनाम कृषिताङ्गरुहः स प्रस्खलन् नयनवारिभिरार्द्रः।
यत्र नृत्यति मुनौ हरिदासे दासवत्सलतया जगदीशः।
स्वेचरैः सुरगणैः समहेशैर्लास्यमाशु परिपश्यति हृष्टः॥
जगन्नाथस्तस्मिन् द्विजकुलयोदधीन्दु सदृशोऽ
भवद्वेदाचार्य्यः सकल गुण युक्तो गुरुसमः।
स कृष्णाङ्घ्रिध्यानप्रबलतरयोगेन मनसा
विशुद्धः प्रेमार्द्रोनव शशिकलेवाशुववृधे।"

उपरोक्त वर्णन में श्रीवास, गोपीनाथ, श्रीमद् अद्वैताचार्य्य, चन्द्रशेखराचार्य्य, हरिदास एवं श्रीजगन्नाथ मिश्र का चरित्राङ्कन सुन्दर रूप से हुआ है। मुरारि गुप्त के सहित उन सब की अतीव घनिष्ठता थी, सुतरां सुनिपुण चित्रकर गुप्तमहाशय के कर कमल से उन सब का स्वाभाविक एवं निखूँत चित्राङ्कन होगा, इस में संशय नहीं है।

एतद्व्यतीत विशेष वार्त्ता यह है कि— करुणार्णव श्रीगौरसुन्दर

के सङ्ग लाभ के समय से ही मुरारि, आध्यात्मिक ज्ञान चर्च्चा त्याग कर भक्ति रस से अभिषिक्त हुये थे। इस अवस्था में उनकी लेखनी से जो कुछ निःसृत हुआ था, उसकी भक्तिमय मधुर झङ्कार, प्रत्येक पद में श्रुति गोचर होती है। समग्र ग्रन्थ ही भक्ति भावानुप्राणित है, अति कोमल एवं सुमधुर है। ग्रन्थ पाठ से बोध होता है,—यह एक गौर भक्ति का अनन्त अफुरन्त पीयूषमय प्रस्रवण है, निदर्शन निबन्धन कतिपय श्लोक उद्धृत हो रहे हैं—२।१

"चैतन्यचन्द्र तव पाद नखेन्दु कान्ति
रेकादशेन्द्रिय गणैः सह जीव कोषम्।
अन्तर्वहिश्च परि पूरय तस्य नित्यं
पुष्णातु नन्दयतु मे शरणागतस्य॥
चैतन्यचन्द्र तवपाद सरोज युग्मं
दृष्ट्वापि ये त्वयि विभो न परेण बुद्धिम्।
कुर्व्वन्ति मोह वशगा रसभाव हीना
स्ते मोहिता वितत वैभव माययाते॥
चैतन्यचन्द्र नहि ते विबुधा विदन्ति
पादारविन्द युगलं कुतएव चान्ये
येषां मुकुन्द दयसे करुणार्द्रमूर्त्ते
ते तां भजन्ति प्रणमन्ति विदन्ति नित्यम्।
नत्वा वदामि तव पाद सहस्र पत्र
माज्ञा विभो भवतु ते मम तत्र शक्तिः
भूयाद् यथा तव कथामृत सारपूर्ण।
वाणी वरेण्य नृहरे करुणामृताब्धे॥"

श्रीगौरचन्द्रमा के निकट में कविवर प्रार्थना करते हैं--"हे विभो! तुम्हारे चरण कमल युगल में प्रणति पूर्वक में प्रार्थना कर रहा हूँ कि—हे नरहरे! हे करुणामृत सागर! हे वरेण्य! मेरी वाणी जिस प्रकार आपके कथामृत सार से परि पूरित हो, इस प्रकार शक्ति प्रदान करो। भक्त वाञ्छा कल्पतरु कलिपावनावतार श्री गौरसुन्दर उनके लीला लेखक को शक्ति प्रदान किये थे। फलतः यह ग्रन्थ

तादृशी शक्ति का ही अमृतमय फल है।

मुरारि गुप्त श्रीहट्ट निवासी थे। श्रीचैतन्य भागवत में उक्त है--

" श्रीवास पण्डित आर श्रीराम पण्डित
श्रीचन्द्र शेखर देव त्रैलोक्य पूजित ।।
भवरोग नाशे वैद्य मुरारि नाम यार।
श्रीहट्टे ए सब वैष्णवेर अवतार ।।"

एतद्व्यतीत अनेक श्रीहट्ट निवासी जनगण पारस्परिक सम्प्रीति से श्रीगौराङ्ग के जनक श्री जगन्नाथ मिश्र के सहित नवद्वीप में निवास करते थे।

श्रीगौराङ्ग के आविर्भाव के समय मुरारि पञ्चदश वर्षीय युवक थे, एवं पण्डित गङ्गादास की पाठशाला में व्याकरणादि शास्त्राध्ययन एवं आयुर्वेद चर्चा करते थे। मुरारि विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न थे। स्वल्प वयस में ही नवद्वीप के विद्वज्जन समाज में ख्याति लाभ किये थे। मुरारि, दयालु, मिष्टभाषी, विनयी निरीह एवं स्निग्ध थे। चिकित्साक्षेत्र में आपका सुनाम था, यह सब कारणों से मुरारि जन निकर के प्रिय एवं श्रद्धास्पद थे।

मिश्र परिवार के सहित, गुप्त परिवार की यथेष्ट घनिष्ठता थी, विशेषतः शैशवावधि निमाइ के प्रति मुरारि का आन्तरिक स्वाभाविक आकर्षण था श्रीनिमाइ की जन्मावधि समस्त लीलाओं का अवलोकन निज नयनों से मुरारि किये थे। चैतन्य मङ्गल में ठाकुर लोचन दास कहते हैं—

"मुरारि गुपत बैजा वैसे नवद्वीपे।
निरन्तर थाके गोराचाँदेर समीपे ।।
सर्व तत्त्व जाने से प्रभुर अन्तरीण।
गौरे पदारविन्दे भकत प्रवीण ।।
जन्म हैते बालक चरित्र येये कैल।
आद्योपान्ते यत यत प्रेम प्रचारिल ।।"

गौर चरित्र का विलक्षण परिचय मुरारि को था, तज्जन्य श्रीगौराङ्ग आविर्भाव के पश्चात् जब उनकी लीलावली को लिपि-

बद्ध करने का प्रयोजन हुआ, तब भक्त वृन्द परामर्श पूर्वक मुरारी को ही उक्त कार्य्य भार न्यस्त करने का निश्चय किये थे, एवं श्रीवास के द्वारा उक्त कार्य्य हेतु अनुरोध भी कराया गया था।

श्रीकृष्णचैतन्य चरितामृते में उक्त है—१-१

"भक्तः श्रीवासनामा द्विजकुल कमल प्रोल्लासच्चित्रभानुः।
प्राहेदं श्रीमुरारि त्वमिह वद हरेः श्रीचरित्र नवीनम्।
तस्याज्ञामाकलय्य प्रकट कर पुटं स्तं नमस्कृत्य भूयः।
श्रीमच्चैतन्यमूर्त्तेः कलिकलुष हरां कीर्त्तिमाह स्वयं सः॥"

अर्थात् ब्राह्मण कुल कमल के उल्लसित भास्कर स्वरूप भक्त श्रीवास, मुरारि को कहे थे "तुम गौर हरि का नवीन चरित्र चित्रण करो" आज्ञा प्राप्त कर मुरारि स्वयं ही श्रीमत् चैतन्य विग्रह की कलिकलूष नाशिनी कीर्त्ति का कीर्त्तनारम्भ किये थे।

मङ्गलाचरण एवं मुखबन्ध लिपिबद्ध होने पर दामोदर पण्डित श्रीप्रभु विषयक कतिपय प्रश्न जिज्ञासा मुरारि को किये थे—

वह इस प्रकार है १।१—

"एतच्छ्रुत्वाद्भुतं प्राह ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
श्रीचैतन्यकथामत्तः श्रीदामोदर पण्डितः।
कथयस्व कथांदिव्यामद्भुतां लोकपावनीम्॥"
"तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य पण्डितस्य महात्मनः।
उवाच वचनं प्रीतो मुरारि श्रूयतामिति॥"

श्रीचैतन्य मङ्गल ग्रन्थ में भी उक्त प्रसङ्ग का उल्लेख है—

मुरारि गुपत वेजा प्रभु तत्त्व जाने।
दामोदर पण्डित पुछिला ताँर स्थाने॥
दामोदर पण्डित सब पुछिल ताँहारे।
आदोपान्त यत कथा कहिल प्रकारे॥
श्लोकछन्दे हैल पुँथि गौराङ्ग चरिते।
दामोदर संवाद मुरारि मुखोदित॥"

श्रीदामोदर कृत प्रश्न एवं मुरारि द्वारा उसका यथार्थ उत्तर

क्रम से ही सम्पूर्ण ग्रन्थ रचित हुआ है। अतएव मुरारि कृत यह श्रीकृष्ण चैतन्य चरित ग्रन्थ प्रामाणिक एवं आदि होने के कारण परवर्त्ती श्रीचैतन्य चरित लेखक वृन्द,मूलतः इस ग्रन्थ को अवलम्बन कर स्वीय स्वीय ग्रन्थ विरचन किये हैं। श्रीकृष्णदास कृत श्रीचैतन्य चरितामृत में उल्लेख है—

"आदि लीला मध्ये प्रभुर यतेक चरित।
सूत्ररूपे मुरारि करिला ग्रन्थित।
प्रभुर मध्य शेषलीला स्वरूप दामोदर।
सूत्र करि ग्रन्थिलेन ग्रन्थेर भितर।
एइ दुइ जनेर सूत्र देखिया शुनिया।
वर्णन करेन वैष्णव क्रम ये करिया॥
"दामोदर स्वरूप आर गुप्त मुरारि।
मुख्य मुख्य लीला, सूत्रे लिखेछे विचारि।
से अनुसारे लिखि लीलासूत्र गण।
विस्तारि बलियाछेन ताहा दास वृन्दावन॥"

कविकर्णपूर कृत श्रीचैतन्यचरितामृत महाकाव्य के उपसंहार में उक्त है—"आशैशवं प्रभु चरित्र विलास विज्ञैः
केचिन्मुरारि रिति मङ्गल नाम धेयैः।
यद् यद् विलास वलितं समलेखि तज्ज्ञै
स्तत्तद्विलोक्य विलिलेख शिशुः स एषः॥
बद्धाञ्जलिः शिरसि निर्भर काकुवादै
र्भूयोनमाम्यहमसौ स मुरारि संज्ञं।
तं मुग्ध कोमलधियं ननु यत् प्रसादा
च्चैतन्यचन्द्र चरितामृत मक्षिपीतम्॥"

अर्थात् शैशवावधि जो प्रभु चरित्र एवं विलास विषय में अभिज्ञ हैं, उन तत्वज्ञ 'मुरारि' रूप मङ्गल नामा महात्मा के द्वारा जो विलास युक्त ग्रन्थ रचित हुआ है, शिशु मैं उस ग्रन्थ को अवलम्बन कर ही इस ग्रन्थ का प्रणयन कर रहा हूँ।

मैं निज मस्तक में अञ्जलिबद्ध कर निरतिशय काकुवाक्य से

पुनः पुनः उन मनोरम कोमल बुद्धि सम्पन्न मुरारि नामक महात्मा को प्रणाम करता हूँ जिन के प्रसाद से श्रीचैतन्य चन्द्र चरितामृत-ग्रन्थ मदीय 'अक्षिपोत' अर्थात् नेत्र गोचर है।

सकल सद्गुणावली पूरित यह ग्रन्थ सर्वाकर्षक गुण मण्डित होने के कारण ही परवर्त्ती चैतन्यचरित्र काव्य प्रणेता के जीवन में प्रेरणा प्रदायक यह ग्रन्थ हुआ है। लोचन दास कहते हैं—

"श्लोकछन्दे हैल पुँथि "गौराङ्ग चरित।
दामोदर संवाद मुरारिमुखोदित॥
शुनिया आमार मने बाड़ल पीरित।
पाँचालि प्रबन्धे कहो गौराङ्ग चरित॥"

यह है—श्रीचैतन्य मङ्गल ग्रन्थ का उपष्टम्भक। उपसंहार में भी तदनुरूप उक्ति है—

"श्रीमुरारि गुप्त वेजा प्रभुर अन्तरीण।
सकल जानये सेइ भकत प्रवीण॥
लोक निस्तारिते कैल चैतन्य चरित्र।
ताँहार प्रसादे हैल संसार पवित्र॥
श्लोक बन्धे कैल गौरगुणेर कवित्व।
ताहाइ हइल एवे सकलेर सूत्र॥
शुनिया माधुरी लोभे चित्त उत्तरोल।
निजदोष ना देखिनु मन हैल भोल॥
पाँचाली प्रबन्धे आमि रचिल एखन।
दोष ना लइवे केह मो अति अधम॥"

श्रीवृन्दावन दास ठाकुर कृत श्रीचैतन्य भागवत ग्रन्थ भी श्रीमुरारि कृत श्रीचैतन्य चरित के उपादान द्वारा विमण्डित है। आशैशव मुरारि श्रीगौर सुन्दर के साथी थे, अतएव समस्त नवद्वीप लीला का सन्दर्शन मुरारि स्वीय नयनों से किये थे। उक्त दृष्ट बिषयों का अङ्कन स्वीय ग्रन्थ में हुआ है। तद्भिन्न श्रीगौरहरि की लीला विषयक पद रचना भी उनकी है। बाल्य लीला विषयक पद इस प्रकार है—

पहिड़ा

शचीर आङ्गिना माझे भुवन मोहन साजे
गोराचाँद देय हामागुड़ि ।
मायेर अङ्गुलि धरि क्षणे चले गुड़ि गुड़ि
आछाड़ खाइया याय पड़ि ।।
बाघनख गले दोले बुक भासि याय लोले
चाँदमुखे हासिर विजुलि ।
धूला माखा सर्वगाय सहिते ना पारे माय
बुकेर उपरे लय तुलि ।
काँदिया आकुल ताते नामे गोरा कोल हैते
पुनः भूमे देय गड़ागड़ि ।
हासिया मुरारि बोले ए नहे कोलेर छेले
सन्नयासी हइवे गौरहरि ।।

कामोद

शचीर दुलाल मनोरङ्गे । खेले समवय शिशुसङ्गे ।।
माझे गोरा शिशु चारिपाशे । नाचे आर मृदु मृदु हासे ।।
हाते हाते करे धराधरि । ताले ताले नाचे घुरि घुरि ।।
क्षणे घन देय करतालि । क्षणे केह कहे भालि भालि ।।
गोरा यवे बले हरि हरि । शिशु गण सङ्गे बले हरि ।।
घन घन हरि बोल शुनि । काँपे कलि परमाद गुणि ।।
मुरारि आनन्दे भरपूर । पापेर राजत्व हैल दूर ।।

श्रीगौर हरि की कृपा मुरारि के प्रति समधिक थी, मुरारि यद्यपि अधिक वयस्क थे तथापि श्रीगौर हरि के कृपा पात्र आप थे। इसका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ में एवं अन्यान्य श्रीचैतन्य चरित ग्रन्थ समूह में विशेष रूप से है।

मुरारि श्रीरामचन्द्र का उपासक थे। वैष्णव वन्दना में उल्लेख है—

"वन्दिव मुरारि गुप्त भक्ति शक्तिमन्त ।
पूर्व अवतारे याँर नाम हनुमन्त ।।

मुरारि श्रीगौराङ्ग देव को स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण रूप में श्रीराम रूप में एवं वराह प्रभृति रूप में अनुभव किये थे।

एकदिन महाप्रभु मुरारि को निर्जन में कहे थे। मुरारि! तुम तो श्रीरघुनाथ का उपासक हो, तुम्हारा दास्य भाव है। इस से मधुर भाव का भजन अति उपादेय है, मधुर भाव का आस्वादन तुमने नहीं किया है, मधुर भाव का एकमात्र उपास्य व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण हैं।

"स्वयं भगवान् कृष्ण सर्वज्ञ सर्वाश्रय।
विशुद्ध निर्मल प्रेम सर्व रसमय॥
विदग्ध चतुर धीर रसिक शेखर।
सकल सद्‌गुण वृन्द रत्न रत्नाकर।
मधुर चरित्र कृष्णेर मधुर विलास।
चातुर्य्य वैदग्ध्ये करे येंहो लीलारास॥

उन श्रीकृष्ण का आश्रय ग्रहण करो श्रीकृष्ण की उपासना व्यतीत मधुर रस का आस्वादन कोई नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार श्रीप्रभु के मुखारविन्द से मधुर रसीय भजन की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में विभिन्न वार्त्ता सुनकर मुरारि का मानसिक परिवर्त्तन हुआ। एवं मुरारि कहे थे—"प्रभु! मैं आपका दास हूँ, आज्ञावह हूँ, आप का आदेश पालन प्राण विसर्ज्जन कर भी मैं करूँगा॥"

मुरारि मन ही मन उस विषय का चिन्तन करतः निज भवन में चले गये थे। रात्रि में उनकी निद्रा नहीं आई, मन में निरन्तर वह प्रसङ्ग उद्वेलित हो रहा था, निज उपास्य देवता 'रघुनाथ को छोड़ना पड़ेगा,' यह सोच कर मन अस्थिर हो गया, अवशेष में रघुनाथ को उद्देश कर कहे थे " हे रामचन्द्र! में कैसे तुम्हारे चरणों को छोड़ूँ? उससे मेरी मृत्यु आशु हो" इस प्रकार समस्त रात्रिको विलापकर अति वाहित किये थे। पश्चात् अति प्रत्यूष में उठकर प्रभु के भवन में उपस्थित हुये थे। उस समय श्रीगौराङ्ग शय्यात्याग नहीं किये थे, सुतरां दर्शनाशा से अपेक्षा

करने लगे । प्रभु, वहिर्वाटिका में आने से ही मुरारि उनके शीतल चरणों में निपतित होकर क्रन्दन कर निवेदन किये थे—

"रघुनाथ पाये मुञि वेचियाछों माथा ।
छाड़िते ना पारों राम पाङ बड़ व्यथा ।।

श्रीरघुनाथ चरण छाड़न ना याय ।
तोमा आज्ञा भङ्ग हय कि करों उपाय ।
ताते मोरे एइ कृपा कर दयामय ।
तोमा आगे मृत्यु हउक याउक संशय ।।"

मुरारि की मुखोक्ति को सुनकर प्रभु अतिशय सुखी हुये थे । उनके कमल नयन युगल जल से परिपूर्ण हो गये, उन्होंने मुरारि को उठकर प्रगाढ़ आलिङ्गन किया, बाद में कहा,—"साधु मुरारि ! तुम ही धन्य हो, तुम्हारे तुल्य भक्त जगत में विरल है । तुम्हारा भजन ही प्रकृत सुदृढ़ है, जो कि, मेरा कथन से भी विचलित नहीं हुआ, उपास्य के प्रति सेवक की प्रीति वैसी ही एकान्त वाञ्छनीय है । स्वयं प्रभु यद्यपि चरण छोड़ाना चाहते हैं, तथापि प्रकृत सेवक छोड़ नहीं सकते हैं । तुम्हारी इष्ट निष्ठा को जगत् में दर्शाने के निमित्त ही छोड़ने के निमित्त अनुरोध एवं लोभ प्रदर्शन मैं ने किया था, किन्तु तुम तो श्रीराम किङ्कर साक्षात् हनुमान् हो, तुम कैसे छोड़ सकोगे ? जो भी हो मेरा उद्देश्य सुसिद्ध हुआ है, तुम श्रीराम चन्द्र का एक निष्ठ भक्त हो, यह प्रमाण हो गया, सम्प्रति सुनो, तुम्हें श्रीरघुनाथ को छोड़ना नहीं पड़ेगा, जैसा भजन करते रहते हो, वैसा ही करो, एक निष्ठ भक्ति का पुरस्कार स्वरूप मेरी कृपा से तुम्हारे हृदय में व्रजीय मधुर रस की स्फूर्त्ति होगी ।।"

परम करुण श्रीगौर हरि की कृपा से मुरारि किस प्रकार मधुर रसास्वादनोपयोगी,हृदय प्राप्त किये थे— उसका निदर्शन तदीय पदावली में सुस्पष्ट है ।

सुहइ ।

सखि हे केन निठुराइ मोहे

जगते करिल दया, दिया सेइ पद छाया,
वञ्चल ए अभागिरे काहे ॥ ध्रु॥
गौर प्रेमे सँपि प्राण जिउ करे आनचान,
स्थिर हैया रइति नारि घरे।
आगे यदि जानिताम पीरिति ना करिताम,
याचिया ना दितु प्राण परे ॥
आमि झुरि यार तरे से यदि ना चाय फिरे
एमन पीरिते किवा सुख।
चातक सलिल चाहे बजर क्षेपिले ताहे,
याय फाटि याय किना बुक ॥
मुरारि गुपत कय पीरिति सहज नय
विशेषे गौराङ्ग प्रेमेर ज्वाला।
कुल मान सब छाड़ चरण आश्रय कर,
तबे से पाइवा शचीर बाला।!

एतद्व्यतीत अनेक पद मुरारि कृत हैं, मुरारि के जीवन चरित्र में अनेक घटना हैं, जिसका उल्लेख श्रीचैतन्य चरितावली में है।

अप्रतिम दैन्यमय मुरारि थे, श्रीमन्महाप्रभु पुरुषोत्तम क्षेत्र में जबनिवास करने लगे थे तब मुरारि नवद्वीपमें रहते थे,एवं रथयात्रा उपलक्ष्य में भक्त वृन्द के सहित श्रीक्षेत्र गमन करते थे—श्रीकृष्ण दास कबिराज कृत श्रीचैतन्यचरितामृत में लिखित है—

"मुरारि गुप्त शाखा प्रेमेर भाण्डार।
प्रभुर हृदय द्रवे शुनि दैन्य यार ॥
प्रति ग्रह ना करेन ना लन काहार धन।
आत्म वृत्ति करि करे कुटुम्ब भरण ॥
चिकित्सा करेन यारे हइया सदय।
देह रोग भवरोग दुइ तार क्षय।"

श्रीचैतन्य भागवत में उक्त है—

शुष्क काष्ठ द्रवे शुनि गुप्तेर क्रन्दन।
विशेषे द्रविला सब भागवत गण ॥

मुरारिर प्रति सब वैष्णवेर प्रीत ।
सर्वभूते कृपालुता मुरारि चरित ॥
मुरारिर प्रभाव बलिते शक्ति कार ।
मुरारि वल्लभ प्रभु सर्व अवतार ॥

प्रस्तुत ग्रन्थ चतुर्थ प्रक्रम में सम्पूर्ण है, ग्रन्थान्त में ग्रन्थ समप्ति का समयोल्लेख है—"१४३५ शकाब्दा में पूर्ण हुआ। किन्तु श्रीमन्महाप्रभु का सन्न्यास ग्रहण काल १४३१ शकाब्दा है उक्त समय का वृत्तान्त व्यतीत द्वादश वर्ष व्यापिनी गम्भीरा लीला का उल्लेख भी अन्तिम भाग में है, अतएव ग्रन्थ सम्पूर्ण तदनन्तर काल में होना ही समीचीन है।

हरिदासशास्त्री

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

सूचीपत्रम्

**

प्रथमः प्रक्रमः १–१०७

अवतारानुक्रमः प्रथमः सर्गः	१–७
श्रीनारदानुतापो नाम द्वितीयसर्गः	७–१३
नारदप्रश्नोनाम तृतीयः सर्गः	१३-२०
अवतारानुकरणं नाम चतुर्थः सर्गः	२१-२६
श्रीचैतन्याविर्भावो नाम पञ्चमः सर्गः	२७-३२
बाल्य क्रीड़ायां जन्मादि लीला वर्णनं नाम षष्ठः सर्गः	३३-३९
बाल्य क्रीड़ायां सप्तमः सर्गः—	४०-४७
जगन्नाथमिश्रसंसिद्धि र्नामाष्टमः सर्गः	४८-५३
श्रीलक्ष्म्युद्वाहेऽधिवास प्रसङ्गो नाम नवमः सर्गः	५४-६१
वैवाहिको नाम दशमः सर्गः	६२-६९
श्रीलक्ष्मी विजयोत्सवो नाम एकादशः सर्गः	७०-७५
श्रीशची शोकापनोदनं लक्ष्मी सर्गगमन नाम द्वादशः सर्गः	७६-८२
श्रीविष्णुप्रिया विबाहो श्रीसनातन सान्त्वनं नाम त्रयो दशः सर्गः	८३-८८
श्रीविष्णुप्रिया विवाहो नाम चतुर्दशः सर्गः	८९-९४
श्रीमदीश्वर पुरीदर्शनं नाम पञ्चदशः सर्गः	९५-१००
गयागमनं नाम षोड़शः सर्गः	१०१-१०७

द्वितीयः प्रक्रमः १०८–१९२

भाव प्रकाशो नाम प्रथमः सर्गः	१०८-११४
चैतन्यावतार वर्णने वराहावेशो नाम द्वितीयः सर्गः	११५-१२१
मेघ निवारणं नाम तृतीयः सर्गः	१२२-१२७
नदी मज्जनं नाम चतुर्थः सर्गः	१२८-१३४
श्रीवासस्याध्यात्मचर्चा निरासो नाम पञ्चमः सर्गः	१३५–१४१
भक्तानुग्रहो नाम षष्ठः सर्गः	१४२-१४६

भक्तानुग्रहो नाम सप्तमः सर्गः	१४७-१५४
अवधूतानुग्रहो नाम अष्टमः सर्गः	१५५-१६०
भक्तपूजा ग्रहणं नाम नवमः सर्गः	१६१-१६८
नृत्य विलासो नाम दशमः सर्गः	१६९-१७७
जाह्नवी पतनं नामैकादशः सर्गः	१७८-१८२
महाप्रकाशाभिषेको नाम द्वादशः सर्गः	१८३-१८६
ब्रह्मशापवरोनाम त्रयोदशः सर्गः	१८७-१९१
बलभद्रावेशो नाम चतुर्दशः सर्गः	१९२-१९९
गोपीभाववर्णनं नाम पञ्चदशः सर्गः	२००-२०४
सर्वशक्तिप्रकाशो नाम षोड़शः सर्गः	२०५-२०९
मुरारिगुप्तशासनं नाम सप्तदशः सर्गः	२१०-२१३
सन्न्याससूत्रवर्णनं नामाष्टादशः सर्गः	२१४-२१९

तृतीयः प्रक्रमः २२०-३२०

कण्टकनगरनागरी वचनं नाम प्रथमः सर्गः	२२०-२२५
सन्न्यासाश्रमपावनं नाम द्वितीयः सर्गः	२२५-२३१-
राढ़देशभ्रमणं नाम तृतीयः सर्गः	२३२-२३५
श्रीअद्वैतवाटीविहारो नाम चतुर्थः सर्गः	२३६-२४३
दण्डभञ्जनं नाम पञ्चमः सर्गः	२४४-२४८
दक्षिणदेशभ्रमणं नाम षष्ठः सर्गः	२४९-२५४
श्रीविरजादर्शनं नाम सप्तमः सर्गः	२५५-२५८
महादेव दर्शनं नामाष्टमः सर्गः	२५९-२६६
शिबनिर्म्मालियग्रहणव्यवस्था नाम नवमः सर्गः	२६९-२७१
श्रीपुरुषोत्तम दर्शनं नाम दशमः सर्गः	२७२-२७८
श्रीमहाप्रसादमहिमा नामैकादशः सर्गः	२७९-२८३
सार्वभौमानुग्रहो नाम द्वादशः सर्गः	२८४-२८९
सार्वभौमसान्त्वनं नाम त्रयोदशः सर्गः	२९०-२९३
श्रीजियड़ नृसिंहप्रसङ्गो नाम चतुर्दशः सर्गः	२९४-२९९
श्रीपरमानन्दपुरी सङ्गोत्सवो नाम पञ्चदशः सर्गः	३००-३०५

श्रीजगन्नाथ दर्शनं नाम षोड़शः सर्गः ३०६-३११
देवानन्दानुग्रहो नाम सप्तदशः सर्गः ३१२-३१५
गौड़देशः भ्रमणानन्तरं श्रीगोपीनाथ दर्शनं नामाष्टादशः सर्गः ३१५-३२०

चतुर्थः प्रक्रमः ३२०–४३५

श्रीवृन्दावनगमनपूर्वकं काशीवासीतपनमिश्राद्युग्रहोनाम प्रथमः सर्गः ३२०-३२४
श्रीमथुरामण्डलदर्शनं नाम द्वितीयः सर्गः ३२४-३२८
द्वादशवनप्रसङ्गो नाम तृतीयः सर्गः ३२८–३३२
मथुरामण्डलघट्ट कूपादिदर्शनं नाम चतुर्थः सर्गः ३३२-३३६
सेतु बन्ध सरोवर प्रसङ्गोनाम पञ्चमः सर्गः ३३७-३४०
महावनादिदर्शनं नाम सष्ठः सर्गः ३४०-३४४
वस्त्रहरणादिलीलास्थली दर्शनं नाम सप्तमः सर्गः ३४४-३४८
श्रीगोवर्द्धनादिदर्शनं नामाष्टमः सर्गः ३४८-३५१
महारासस्थली दर्शनं नाम नवमः सर्गः ३५२-३५६
श्रीनिकुञ्जयमुनादिदर्शनं नाम दशमः सर्गः ३५६-३६१
अक्रूरगमनादिलीला श्रवणं नामैकादशः सर्गः ३६१-३६६
कंसबधादिसुदर्शनं नाम द्वादशः सर्गः ३६६-३७०
गोपानुग्रहोनाम त्रयोदशः सर्गः ३७१-३७४
श्रीवृन्दावनगमनानन्तरं श्रीनवद्वीपविहारे
श्रीगौरीदासानुग्रहोनाम चतुर्दशः सर्गः ३७५-३७८
श्रीवृन्दावनगमनानन्तरं श्रीनवद्वीपविहारश्रीपुरुषोत्तम दर्शनं
नाम पञ्चदशः सर्गः— ३७९-३८२
श्रीप्रतापरुद्रानुग्रहो नाम षोड़शः सर्गः ३८३–३८७
भक्तानुग्रहो नाम सप्तदशः सर्गः ३८८-३९१
नरेन्द्रसरोवरविहारो नामाष्टादशः सर्गः ३९२-३९९
श्रीमदद्वैतप्रभुकृतं श्रीगौराङ्ग कीर्त्तनं-
नामैकोनविंशतितमः सर्गः ३९६-४००

श्रीगुण्डिचामन्दिरविलासोनाम विंशतितमः सर्गः ४००-४०५

रामदासानुग्रहोनामैकविंशतितमः सर्गः ४०५-४१०

श्रीनित्यानन्दाद्वैतसङ्गोत्सवोनाम द्वाविंशतितमः सर्गः ४१०-४१५

श्रीनित्यानन्दविलासोनाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ४१५-४१९

भक्तमण्डलविलासो नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ४१९-४२४

श्रीकृष्णजन्मादिगोपीनाथदर्शनपर्य्यन्तकथनं नाम पञ्चविंशतितमः सर्गः ४२५-४२९

ग्रन्थविवरणं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ४३०-४३५

श्रीगौरगदाधरौजयतः

श्रीश्रीकृष्णचैतन्य-चरितामृतम्

श्रीमन् मुरारिगुप्तप्रणीतम्

प्रथमः सर्गः

स जयत्यतिशुद्धविक्रमः कनकाभः कमलायतेक्षणः
वरजानुविलम्बिसद्भुजो बहुधा भक्तिरसाभिनर्त्तकः ॥१॥
स जगन्नाथसुतो जगत्पति र्जगदादिर्जगदार्त्तिहा विभुः ।
कलिपापा कलिभारहारकोऽजनि शच्यां निजभक्तिमुद्वहन् ।२।
स नवद्वीपवतीषु भूमिषु द्विजवर्यैरभिनन्दितो हरिः ।
निजपित्रोः सुखदो गृहे सुखं निवसन् वेदषडङ्गसंहिताम् ॥३॥

अतिविशुद्धविक्रम, कमलनयन, आजानुलम्बितभुज भक्तिरसाभिनर्त्तक, कनककान्ति श्रीगौरसुन्दरकी जय हो ॥१॥

जगत्पति, जगदादि निखिल प्राणीनिकर के दुःखहन्ता, कलि-पापाचारजनित पृथिवी का भारापहारक श्रीजगन्नाथसुत श्रीगौर हरि, निज चरण कमल के भक्तिवितरण हेतु श्रीशचीदेवी से आविर्भूत हुये ॥२॥

विश्वम्भरसंज्ञक गौरहरि, नवद्वीपस्थ जनकजननी के आलय में द्विजवृन्दों के द्वारा अभिनन्दित होकर षड़ङ्ग वेदादि संहिता

(क)१९१७ तम सम्वत्सरे लिखितात् पुस्तकात् संशोधितम्

निपपाठ गुरोर्गृहे वसन् परिचर्य्याभिरतः शुचिव्रतः ।
स च विश्वम्भरसंज्ञको हरिर्युगधर्माचरणाय धर्म्मिणाम् ॥४॥
हरिकीर्त्तनमादिशत् स्मरन् पुरुषार्थाय हरेरतिप्रियम् ।
स गयासु पितृक्रियां चरन् हरिपादाङ्कितभूमिषु स्वयम् ॥५॥
निजसंस्मृतिमात्रसम्पदः पुलकप्रेमजड़ो बभूव ह ।
स तदा निजमेव मन्दिरं समगादाश्वरीरया गिरा ॥६॥
भक्तवर्गसुखवेष्टितः प्रभुः प्रेमपाकपरिपूर्णविग्रहः ।
हरिकीर्त्तनसत्कथासुखं मुमुदे दानवसिंहमर्दनः ॥७॥
अथास्य कोर्त्तिश्रवणामृतंसतामुदारकोर्त्तेः श्रुतिभिःपिपासुभिः
विगाहितुं श्रीयुतसत्कथांशुभामुवाह हर्षाश्रुविलोललोचनः ८

अध्ययन के निमित्त गुरुगृह में निवास किये थे, अनन्तर वर्णाश्रमीओं के सद्धर्माचरण के निमित्त यथाविधि गुरुपरिचर्य्या में रत होकर पवित्र चरित्र श्रीगौरहरि षड़ङ्ग वेदादि का अध्ययन किये थे ३।४।।

श्रीहरि के अतिप्रिय श्रीहरिनाम संकीर्त्तन को ही परम पुरुषार्थ रूप में उपदेश कर श्रीहदिपादपद्मलाञ्छितगयाक्षेत्र में पितृश्राद्धानुष्ठान सम्पन्न करने के निमित श्रीगौरहरि गमन किये थे ॥५॥

गयाधाम गमनानन्तर निज प्रेम सम्पत्ति की स्मृति उद्बुद्ध होनेसे श्रीगौरहरि के पुलकायित वपु प्रेमरससे जड़ीभूत हो गया था। आप सत्वर श्रीमन्दिर में प्रत्यावर्त्तन किये थे ॥६॥

भक्त वर्गसमुपवेष्टित, एवं प्रेम पाक परिपूर्ण विग्रह दानवसिंह मर्दन, प्रभु श्रीगोरहरि, श्रीहरिकोर्त्तन सुधारसास्वादन में विभोर हुये थे ॥७॥

अनन्तर हर्षाश्रुविलोचन प्रभु, सज्जनगण मनोहारि श्रुति मधुर हृत्कर्ण रसायन विश्वपावन श्रीकृष्ण कीर्त्तिसुधा में आप्लुत

१। समुपवेष्टितः (क) २। परिपूरित देहः (क)

भक्तः श्रीवासनामा द्विजकुलकमलप्रोल्लसच्चित्रभानुः
प्राहेदं श्रीमुरारिं त्वमिह वद हरेः श्रीचरित्रं नवीनम् ।
तस्याज्ञामाकलय्य प्रकटकरपुटैस्तं नमस्कृत्य भूयः
श्रीमच्चैतन्यमूर्त्तेः कलिकलुषहरां कीर्त्तिमाह स्वयं सः ॥९॥
अथ स चिन्तयामास वैद्यसूनुर्मुरारिकः ।
कथं वक्ष्यामि बह्वर्थां चैतन्यस्य कथां शुभाम् ॥१०॥
यद्वक्तुं नैव शक्नोति वाचस्पतिरपि स्वयम् ।
तथापि वैष्णवादेशं कर्तुं युक्तं मतिर्मम ॥११॥
निर्मला भाति सततं कृष्णस्मरणसम्पदा ।
वैष्णवाज्ञा हि फलदा भविष्यति न चान्यथा ॥१२॥

होकर परम मङ्गलमय प्रेमप्रद श्रीकृष्णकथा सुधा में जगद्वासी को निमज्जित करवाने के निमित्त प्रयत्न किये थे ॥८॥

द्विजकुलकमलोल्लासि विचित्र भानुस्वरूप भक्त प्रबर श्रीवास पण्डित श्रीमुरारि के प्रति नवीन श्रीहरिचरित्र वर्णन करने के निमित्त निवेदन किये थे। अनन्तर श्रीमुरारि- श्रीवास की आज्ञा-को शिरोभूषण करतः कृताञ्जलि होकर पुनः पुनः नमस्कार कर कलिकलुषहर श्रीमन् चैतन्य मूर्त्ति की कीर्त्ति गाथाका वर्णन में स्वयं प्रवृत्त हुये थे ॥९॥

वैद्य सूनु मुरारि प्रथम चिन्तान्वित हुये थे–"मैं अति विस्तृत सर्व मङ्गलमय श्रीचैतन्य देव की लीलाकथाका बर्णन कैसे करूँ" ॥१०॥

यद्यपि श्रीचैतन्य चरित्र वर्णन में स्वयं वृहस्पति भी सक्षम नहीं हैं, तथापि वैष्णवादेश को सफल करने के निमित्त मैं सुनिश्चित प्रयत्न करूँगा ॥११॥

श्रीकृष्ण चरण स्मरण सम्पत्ति के द्वारा ही सर्वत्र स्वच्छलता सतत होती है, उससे ही वैष्णवाज्ञा फलीभूता होगी, अन्यथा असम्भव है ॥१२॥

इतुयक्त्वा वक्तुमारेभे भगवद्भक्तिवृंहिताम् ।
कथां धर्मार्थकामाय मोक्षाय विष्णुभक्तये ॥१३॥

नमामि चैतन्यमजं पुरातनं
चतुर्भुजं शंखगदाब्जचक्रिणम् ।
श्रीवत्सलक्ष्माङ्कितवक्षसं हरिं
सद्भालसंलग्नमणिं सुवाससम् ॥१४॥

वदामि किंचिद्भगवत्कथां सतां
हर्षाय किंचित्स्खलनं यदा भवेत् ।
तदात्र संशोधयितुं महत्तमाः
प्रमाणमेवात्र परोपकारिणः ॥१५॥

नवद्वीप इति ख्याते क्षेत्रे परमवैष्णवे ।
ब्राह्मणाः साधवः शान्ताः वैष्णवाः सत्कुलोद्भवाः ॥१६॥

इस प्रकार कथन के पश्चात श्रीमुरारि, विष्णुभक्त वृन्द को प्रोल्लसित करने के निमित्त धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षद भगवद्भक्ति परिपूरित श्रीभगवत् कथा का प्रारम्भ किये थे ॥१३॥

नित्य पुराणपुरुष चतुर्भुज, शङ्खचक्र धारी, श्रीवत्सकौस्तुभाङ्कित एवं उत्तम वसनान्वित श्रीचैतन्य हरि को नमस्कार करता हूँ ॥१४॥

सज्जन वृन्द को आनन्दित करने के निमित्त भगवत् कथा का कीर्त्तन करता हूँ। यदि उसमें त्रुटि विच्युति हो तो परोपकारि महद्गण उसका संशोधन–कृपा पूर्वक करेंगे ॥१५॥

नवद्वीप नामक परमवैष्णव धाम में सत्कुलोत्पन्न शान्त शास्त्रज्ञ, कर्मनिपुण शास्त्रार्थ निष्ठावान् महान् विष्णुभक्त ब्राह्मणगण निवास करते थे। तद्भिन्न अनेक चिकित्सक, शूद्र, एवं बणिक

महान्तः कर्म्मनिपुणाः सर्वे शास्त्रार्थपारगाः ।
अन्ये च सन्ति बहुशो भिषक्शूद्रबणिग्जनाः ॥१७॥
स्वाचारनिरताः शुद्धाः सर्वे विद्योपजीविनः ।
तत्र देवव्रताः सर्वे वैकुण्ठभवनोपमे ॥१८॥
श्रीवासो यत्र रेजे
हरिपदकमलप्रोल्लसन्मत्तभृङ्गः
प्रेमार्द्रोत्तुङ्गबाहुः
परमरसमदैर्गायतीशं सदोत्कः ।
गोपीनाथो द्विजाग्र्यः
श्रवणपथगते नाम्नि कृष्णस्य मत्तो-
ऽत्युच्चै रौति स्म भूयो
लयतरलकरो नृत्यति स्मातिवेलम् ॥१९॥
बालोद्यद्भास्कराभो
बुधजनकमलोद्बोधने दक्षमूर्त्तिः

निवास करते थे। वैकुण्ठ भवन तुल्य नवद्वीप में समस्त वर्ण के व्यक्ति निजोचित आचार सम्पन्न एवं शुद्ध चरित्र के थे, विद्योपजीवि गण एवं दैवतोजीविगण भी वहाँपर निवास करते थे ॥१६-१७-१८॥

श्रीहरिचरणारविन्द मकरन्द लोलुप गूढ़, प्रेमार्द्र चित्त निरवधि परम प्रेमविभोर श्रीहरि चरित्र कीर्त्तन परायण श्रीवास पण्डितवर्य जहाँपर निवास करते थे, द्विजाग्रणी श्रीगोपीनाथ भी वहाँपर निवास करते थे। श्रीहरिनामवर्ण जिन के कर्ण कुहर में प्रविष्ट होने से उद्वेलितचित्तहोकर जो उच्चैःस्वर से रोदन एवं लय तरल कर से नृत्य करते थे ॥१९॥

ईश्वर श्रीयुत अद्वैताचार्य भी वहाँपर विराजित थे। प्रातः-कालीन सद्योदित दिनकर के समान जिनकी अङ्ग कान्ति, बुधजन

कारुण्याब्धिर्हिमांशो-
रिव जनहृदयोत्तापशान्त्येकमूर्त्तिः ।
प्रेमध्यानातिदक्षो
नटनविधिकलासद्गुणाढ्यो महात्मा
श्रीयुक्ताद्वैतवर्य्यः
परमरसकलाचार्य्य ईशो विरेजे ॥२०

यत्र सर्वगुणवानतिरेजे चन्द्रशेखरगुरुर्द्विजराजः ।
कृष्णनामकर्षिताङ्गरुहः स प्रस्खलन्नयनवारिभिरार्द्रः॥२१॥
यत्र नृत्यति मुनौ हरिदासे दासवत्सलतया जगदीशः ।
खेचरैः सुरगणैः समहेशैर्लास्यमाशु परिपश्यति हृष्टः ॥२२॥
यत्र विष्णुपदसम्भवा सरिद्वेगवत्यतितरा करुणार्द्रा ।
स्पर्द्धया रविसुता सरयूणां या दधार कनकोज्ज्वलं हरिम्२३

रूप कमलों को उद्बुद्ध करने में निपुण, हिमांशु के तुल्य–जनगण के हृदय ताप प्रशमक, करुणासिन्धु, प्रेमध्यानातिदक्ष, नृत्य कला-विशारद, सद्गुणगणालङ्कृत, परम रसकलाचार्य-आप थे ॥२०॥

वहाँ पर सर्वगुणवान् द्विजराज गुरु चन्द्रशेखर विराजमान् थे । जिनके अङ्गरुह समूह कृष्ण नाम से आकृष्ट थे, एवं प्रस्खलित नयन-वरिके के द्वारा जो सतत आर्द्र थे ॥२१॥

वहाँ पर मुनि श्रीहरिदास मदोन्मत्त होकर नृत्य करने पर भक्तप्रिय प्रभु स्वयं नृत्य करते थे । एवं गगन में महेश के सहित देवगण हृष्टहोकर उक्त नृत्य दर्शन करते थे ॥२२॥

वहाँ करुणार्द्र अति वेगवती विष्णुपद सम्भूता जाह्नवी प्रवाहित होती है, जिन्होंने सरयू एवं यमुना के सहित स्पर्द्धा करके ही कनकोज्ज्वल कान्ति मण्डित श्रीहरि को धारण किया है ॥२३॥

जगन्नाथस्तस्मिन् द्विजकुलपयोधीन्दुसदृशो-
ऽभवद्वेदाचार्य्यः सकलगुणयुक्तो गुरुसमः ।
स कृष्णाङ्घ्रिध्यानप्रबलतरयोगेन मनसा
विशुद्धः प्रेमार्द्रो नवशशिकलेवाशु ववृधे ।।२४।।

इति श्रीचैतन्यचरिते महाकाव्ये प्रथम प्रक्रमे अवतारानुक्रमः
प्रथमः सर्गः

उक्त नवद्वीप में द्विजकुलपयोधि के इन्दु सदृश वेदाचार्य्य–वृहस्पति तुल्य सकल गुणयुक्त; श्रीकृष्ण ध्यान विधौत हृदय, प्रेमपरि प्लुतान्तः करण जगन्नाथ नामक विप्रवर उत्पन्न हुयेथे, नवशशी कला के समान जिनकी कान्ति वर्द्धित होती थी ।।२४।।

इति श्रीचैतन्यचरिते महाकाव्ये प्रथम प्रक्रमे अवतारानुक्रमः
प्रथमः सर्गः

द्वितीयः सर्गः

अथ तस्य गुरुश्चक्रे सर्वशास्त्रार्थवेदिनः ।
पदवीमिति तत्त्वज्ञः श्रीमन्मिश्रपुरन्दरः ।।१।।
तमेकदा सत्कुलीनं पण्डितं धर्मिणाम्बरम् ।
श्रीमन्नीलाम्बरो नाम चक्रवर्त्ती महामनाः ।।२।।

अनन्तर गुरुदेवने सर्व शास्त्रार्थ निपुणता को देखकर उनको तत्त्वज्ञमिश्रपुरन्दर पदवी से विभूषित किया ।।१।।

एकदिन नीलाम्बर चक्रवर्त्ती नामक महामनाः ब्राह्मणने-धार्मिकाग्रगण्य सत्कुलीन पण्डित की अभ्यर्थना कर शचीनाम्नी स्वीय

समाहूयाददत् कन्यां शचीं स कुलकृत्शदः ।
तां प्राप्य सोऽपि ववृधे शचीमिव पुरन्दरः ॥३॥

ततो गेहे निवसतस्तस्य धर्मो व्यवर्द्धत ।
आतिथ्यैः शान्तिकैःशौचैर्नित्यकाम्यक्रियाफलैः ।४।

तत्र कालेन कियता तस्याष्टौ कन्यकाः शुभाः ।
बभूवुः क्रमशो दैवात्ताःपञ्चत्वं गताः शची ॥५॥

वात्सल्य-दुःखतप्तेन जगाम मनसा पतिम् ।
पुत्रार्थं शरणं श्रीमान् पितृयज्ञं चकार सः ॥६॥

कालेन कियता लेभे पुत्रं सुरसुतोपमम् ।
मुदमाप जगन्नाथो निधिं प्राप्ययथाऽधनः ॥७॥

कन्या का अर्पण उनको कर दिया। पुरन्दर भी कुलरक एवं शान्तिप्रद उक्त कन्या को प्राप्त कर शचीपति इन्द्र के समान शोभित हुये थे ॥३॥

उस समय से उनके गृह धर्म समूह निरन्तर वर्द्धित होने लगे थे। एवं अतिथिसत्कार, शान्तिकर्म, शुद्धिकर्म, नित्य काम्य कर्मानुष्ठान के द्वारा गृहधर्म समुज्ज्वल हुआ ॥४॥

कियत् काल के मध्य में शुभदर्शना उनकी अष्ट कन्या हुई थीं, एवं दैवक्रम से क्रमशः वे सब पञ्चत्व प्राप्त भी हुईं ॥५॥

वात्सल्य दुःख से सन्तप्त होकर शची ने मनसा श्रीहरिकी शरण ग्रहण किया, एवं श्रीमान् जगन्नाथ ने भी पितृयज्ञका अनुष्ठान किया ॥६॥

कियत् कालानन्तर देवपुत्रोपम पुत्ररत्न का लाभ उन्होंने किया। एवं अधनजन जिस प्रकार धन प्राप्त होने से आनन्दित होता है–जगन्नाथ भी उस प्रकार ही आनन्दित हुये थे ॥७॥

नाम तस्य पिता चक्रे श्रीमतो विश्वरूपकः ।
पठता तेन कालेन स्वल्पेनैव महात्मना ॥८॥
वेदांश्च न्यायशास्त्रञ्च ज्ञातः सद्योग उत्तमः ।
स सर्वज्ञः सुधीः शान्तः सर्वेषामुपकारकः ॥९॥
हरेर्ध्यानपरो नित्यं विषये नाकोरन्मनः ।
श्रीमद्भागवतरसास्वादमत्तो निरन्तरम् ॥१०॥
तस्यानुजो जगद्योनिरजो यज्ञे स्वयं प्रभुः ।
इन्द्रानुजो यथोपेन्द्रः कश्यपाददितेः सुतः ॥११॥
हरिकोर्त्तनपरां कृत्वा च त्रिजगतीं स्वयम् ।
उषित्वा क्षेत्रप्रवरे पुरुषोत्तमसंज्ञके ॥१२॥

पिता ने उस बालक का नाम श्रीमान् विश्वरूप रखा। महात्मा विश्वरूप ने भी स्वल्पकाल में ही वेद न्यायशास्त्र, प्रभृति शास्त्राऽध्यायन से विमल बुद्धि को प्राप्त किया। एवं वह शान्त, सुधी सर्वज्ञ होकर प्राणिमात्र के उपकारार्थ आत्मनियोग किया था ॥९॥

निरन्तर श्रीहरि ध्यान परायण होने के कारण—उनका मनः विषयासक्त नहीं हुआ, एवं निरन्तर श्रीमद्भागवतरसास्वादमत्त रहा ॥१०॥

उनका अनुज—जगद्योनि नित्य पुराणपुरुष स्वयंप्रभु—जिसप्रकार कश्यप अदिति से आविर्भूत होकर इन्द्र के अनुज उपेन्द्र नाम से अभिहित हुये थे, तद्रूप यहाँपर भी आत्मप्रकाश आप किये थे ॥११॥

एवं पुरुषोत्तमसंज्ञक क्षेत्र प्रवर में स्वयं निवासकर त्रिजगत् को श्रीहरि सङ्कीर्त्तनपरायण किये थे ॥१२॥

कृत्वा भक्तिं हरौ शिक्षां कारयित्वा जनस्य सः ।
श्रीवृन्दावनमाधुर्य्यमास्वाद्यास्वादयन् जनान् ॥१३॥
तारयित्वा जगत् कृत्स्नं वैकुण्ठस्थैः प्रसाधितः ।
जगाम निलयं हृष्टो निजमेव महर्द्धिमत् ॥१४॥
एतच्छ्रुत्वाद्भुतं प्राह ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
श्रीचैतन्यकथामत्तः श्रीदामोदरपण्डितः ॥१५॥
कथयस्व कथां दिव्यामद्भुतां लोकपावनीम् ।
यां श्रुत्वा मुच्यते लोकःसंसाराद्धोरकिल्विषात् ॥१६॥
श्रीकृष्णचरणाम्भोजे परमाः प्रेमसम्पदः ।
जायन्ते सर्व्वलोकस्य तद्वदस्व हरेः कथाम् ॥१७॥
कस्य हेतोः पृथिव्यां स जातः सर्व्वेश्वरो विभुः ।

श्रीकृष्णचैतन्यप्रभु–स्वयं श्रीहरिभक्ति का आचरणकर जनसमुदाय को श्रीहरिभक्ति शिक्षा ग्रहण कराये थे । एवं श्रीवृन्दावन माधुर्य्य का आस्वादनकर मनुष्यवृन्द को उसका आस्वादन कराये थे ॥१३॥

वैकुण्ठस्थशिक्षा के द्वारा मर्त्यलोकवासिजनगण को उद्धार कर आनन्दित मन से प्रेमसम्पत्ति परिपूरित निज धाम में प्रत्यावर्त्तन किए थे ॥१४॥

उक्त विवरण श्रवण कर ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, श्रीचैतन्य कथामत्त श्रीदामोदरपण्डित कहे थे ॥१५॥

दिव्य अद्भुत लोकपावनी कथा का कीर्त्तन आप करें। जिस का श्रवण से लोक,–घोर संसारक्लेश से मुक्त हो जायेंगे ॥१६॥

श्रीकृष्णचरणारविन्द में लोकों की पर प्रेमसम्पद् प्राप्ति होगी, अतः आप श्रीहरिकथा का कीर्त्तन करें ॥१७॥

किस निमित्त सर्व्वेश्वर विष्णु,–पृथिवी में अबतीर्ण हुये थे,

कृतं किमिह तेनैव जगतामीश्वरेण च ॥१८॥
वक्तुमर्हसि भद्राणि कर्माणि मङ्गलानि च ।
जगतां तापशान्त्यर्थं प्रेमार्थं सुमहात्मनाम् ॥१९॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य पण्डितस्य महात्मनः ।
उवाच वचनं प्रीतो मुरारिः श्रूयतामिति ॥२०॥
साधु ते कथयिष्यामि यथाशक्त्या द्विजोत्तम ।
संक्षेपाद्विस्तरान्नालं वक्तुं शक्नोति भार्गवः ॥२१॥
अथ नारदो धर्म्मात्मा वर्षे भारतसंज्ञके ।
वैष्णवाग्रचो महातेजाः पूर्णचन्द्रसमप्रभः ॥२२॥
कैलाशशिखराकारो मेखलावरभूषणः ।
ऐणचर्म्मधरो विष्णोरंशः सर्वजनप्रियः ॥२३॥

एवं इस जगत्में आपने कार्य्य क्या किया है ॥१८॥

महात्मावृन्द के प्रेम की प्राप्ति के निमित्त, एवं जगत् में शान्ति स्थापन हेतु भद्र मङ्गलमय कर्म निवह का कीर्त्तन आप करें ॥१९॥

महात्मा पण्डित श्रीस्वरूपदामोदर के वचन को सुन कर श्रीमुरारि पण्डित अति सन्तुष्ट होकर कहे थे–आप श्रीचैतन्यचरित श्रवण करें ॥२०॥

हे द्विजोत्तम ! मैं यथाशक्ति उत्तम रूप से श्रीचैतन्य चरित्र का कीर्त्तन करूँगा, वह भी संक्षेप से ही होगा, कारण विस्तृत रूप से श्रीचैतन्य चरित का कीर्त्तन करने में भार्गव सक्षम नहीं हैं ॥२१॥

एक समय वैष्णवाग्रगण्य, महातेजाः पूर्णेन्दु समकान्ति सम्पन्न, महात्मा नारद भारत संज्ञक वर्ष में आगमन किये थे ॥२२॥

आप कैलाश शिखर के समान शुभ्रवर्ण मेखला मण्डित थे, मृगचर्म्म धारण किये हुये थे, एवं विष्णु के अङ्ग से आविर्भूत होकर सर्वजन प्रिय थे ॥२३॥

सर्वेषामुपकाराय बभ्रामाकाश मण्डले ।
महतीं रणयन् प्रीतो हरिनाम प्रगायतीम् ॥२४॥
द्रक्ष्यामि वैष्णवं कुत्र तत्र वत्स्यामि साम्प्रतम् ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा ददर्श पृथिवीमिमाम् ॥२५॥
कलिना पापमित्रेण प्रथितामलपङ्किलाम् ।
गामेव म्लेच्छहस्तस्थां प्रचण्डकरशोषिताम् ॥२६॥
जनांश्च ददृशे तत्र पापव्याधिसमाकुलान् ।
परापवादनिरतान् शठान् ह्रस्वायुषः कृशान् ॥२७॥
राज्ञश्च पापनिपुणान् शूद्रान् स यवनान् खलान् ।
म्लेच्छान् विकर्म्मनिरतान् प्रजासर्वस्वहारकान् ॥२८॥

प्राणीमात्र को उपकृत करने के निमित्त आनन्द चित्त से श्रीहरिनाम गान परायण महती वीणा वादन करते करते आकाश मण्डल में विचरण कर रहे थे ॥२४॥

आप चिन्ता कर रहे थे कि—जहाँ कहीं वैष्णव दृष्ट हो, मैं वहाँ पर ही निवास करूँगा, इस प्रकार चिन्ता करते करते आपने मनसे इस पृथिवी को देखा ॥२५॥

पापमित्र कलि के द्वारा पृथिवी पाप पङ्क से लिप्त हा गई है, स्वेच्छाचार तथा उच्छृङ्खलजनगण के प्रचण्ड कर से शोषित भी हो रही है ॥२६॥

वहाँ के निवासी जनगण को भी आपने देखा—जो कि- पाप एवं व्याधि से ग्रस्त थे, परविद्वेष परायण थे, कपट आचरण क्षीणायुः एवं कृश थे ॥२७॥

राजन्य वर्ण को भी आप ने देखा—वे लोग पापपरायण थे, शूद्र, यवन, म्लेच्छ वर्ग को भी देखा, वे लोक—खल, विकर्म्मनिरत एवं प्रजा का सर्वस्व अपहरणकारी थे ॥२८॥

शास्त्रज्ञानपि साधूनां निन्दकानात्ममानिनः ।
एतान् बहुविधान् दृष्ट्वा चिन्तयामास नारदः ॥२६॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
श्रीनारदानुतापो नाम द्वितीयः सर्गः

तृतीयःसर्गः

कलेः प्रथमसन्ध्यायां निमग्नेयं वसुन्धरा ।
सर्वेषां पापदग्धानां हरिनामरसायनः ॥१॥
तारकोऽयं भवत्येव वैष्णवद्वेषिणं विना ।
आत्मसम्भाविता ये च ये च वैष्णवनिन्दकाः ॥२॥

वे सब आत्माभिमानी, निन्दक, शास्त्रज्ञ साधुवृन्द की अवज्ञा करने वाले थे, इस प्रकार बहुविध विश्रृङ्खलता को देखकर श्रीनारद मन ही मन चिन्ता किये थे ॥२६॥

इति श्रीचैतन्यचरिते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
श्रीनारदानुतापो नाम द्वितीयः सर्गः

तृतीयः सर्गः

वसुन्धरा, कलियुग की प्रथम सन्ध्या में पापपङ्क में निमग्ना होगई, समस्त पापदग्ध व्यक्तियों की ताप शान्ति के निमित्त श्रीहरिनाम ही एकमात्र रसायन है ॥१॥

यह श्रीहरिनाम, वैष्णवविद्वेषियों को छोड़कर सब का उद्धारक है, जो सब व्यक्ति अभिमानी हैं, मन्दबुद्धिसम्पन्नता के कारण-

ये कृष्णनाम्नि देहेषु निन्देयुर्मन्दबुद्धयः।
तेऽनित्या इति वक्ष्यन्ते तेषां निरय एव हि ॥३॥
अत्र किं स्यादुपायोऽयमिति निश्चित्य शुद्धधीः।
वैकुण्ठाख्यं परं धाम जगाम करुणानिधिः ॥४॥

अथ त्रिविदच्चैः परिगीयमानं
ददर्श वैकुण्ठमखण्डधिष्ण्यम्।
स्वतेजसा ध्वस्तरजःसमूहं
दिशां दशामापगुणात्परांमुनिः ॥५॥

मधुव्रतानां निवहैर्हरेर्यशः
प्रगीयमानं कमलावलीषु।
विराजितं रत्नतटाभिराम-
वापीभिरामुक्तलतासुगन्धिभिः ॥६॥

श्रीहरिनाम के प्रति विद्वेषपरायण होते हैं, वे लोक, उक्त समस्त वस्तु को अनित्य कहते हैं, उन सब की निरय प्राप्ति सुनिश्चित है ॥३॥

इस विषय में उपाय क्या हो सकता है ? इस प्रकार कारणान्वेषण हेतु निर्णय कर शुद्ध बुद्धि करुणानिधि, मुनि परमधाम वैकुण्ठ को गये थे ॥४॥

अनन्तर मुनिने वेदत्रय के द्वारा सङ्कीर्त्तित, अखण्डधिष्ण वैकुण्ठ को देखा, जो निज कान्ति के द्वारा रजः तमः समूह को विनष्ट कर रहा था, समस्त प्रकार से त्रिगुणातीत अवस्था में उन्नीत था ॥५॥

वहाँपर कमलावली में मधुव्रतगण निरन्तर श्रीहरि के यशोगान करते रहते हैं, वापीसुमूहके तट समूह-अभिराम रत्न मण्डित एवं प्रफुल्लित वल्लीसमूह के कुसुमसुगन्ध से सुरभित हैं ॥६॥

माणिक्यगेहैत्र वड़भीभिरन्वितं
गजेन्द्रमुक्तावलिभूषिताभिः ।
सावर्त्तवैः शाखिभिरन्वितं खगै
र्विकूजितं चन्द्रशिलापथाढ्यम् ॥७॥

तत्र श्रिया जुष्टमजं पुरातनं
लसत्किरीटद्युतिरञ्जिताकम् ।
विकाशिदिव्याब्जजितेक्षणं लसत्
सुधाकराराधितसन्मुखोल्लसम् ॥८॥

लसन्महाकुण्डलगण्डशोभितं
सुकम्बुकण्ठं कनकोज्ज्वलांशुकम् ।
कृष्णं चतुर्भिः परिघोपमैर्भुजै-
र्नीलाद्रिश्रृङ्गं सुरपादपैरिव ॥९॥

जहाँ माणिक्य मण्डित गृहसमूह—मनोरम बड़भि के द्वारा सुशोभित हैं, एवं गजेन्द्र मुक्तावलिसमूह के द्वारा भूषित हैं, मनोरम कल्पवृक्ष के शाखासमूह आवर्त्तयुक्त हैं, खगनिकर वहाँपर मनोरम स्वीय कूजन के द्वारा मुखरित कर रहे हैं, वहाँ के पथसमूह चन्द्रकान्तशिलानिचय से सम्पन्न हैं ॥७॥

वहाँपर लक्ष्मी कर्त्तृक सुसेवित अज पुरुष को आपने देखा, जिन की अलकावली देदीप्यमान किरीटद्युति से रञ्जित थी, एवं सुधाकर विनिन्दित उन के मुखारवृन्द प्रसन्न मुद्रा से उल्लसित था ॥८॥

मनोरम कुण्डलों के द्वारा जिन के गण्डस्थल सुशोभित हैं, सुकम्बुकण्ठ, एवं कनक के समान उन के परिधेय वसन है। परिघ के समान भुजचतुष्टय से आप सुशोभित हैं, उससे प्रतीत होता था कि

विराजमानं कनकाङ्गदादिभि-
र्मुक्तावलीभिर्वरहेमसूत्रैः
सकिङ्किणीजालनिबद्धचेलो-
ल्लसन्नितम्बं वरपादपङ्कजम् ॥१०॥

तदीयपादाब्जसनोज्ञगन्ध-
माघ्राय हर्षाश्रुतनूरुहोद्‌गमैः ।
विसंज्ञ एवाशु पपात भूमौ
स दण्डवत् कृष्णसमीपतो मुनिः ॥११॥

ततः प्रसार्य्याशु करं कृतज्ञो
रत्नांगुरीभिन्ननखप्रभं प्रभुः ।
मुदा स्पृशन्मूर्द्धनिमुनेर्मनोहरं
बभाष ईषत्स्मितशोभितानन: ॥१२॥

नीलाद्रि शृङ्ग-कल्पवृक्षसमूह से सुशोभित हैं। उन श्रीकृष्ण का दर्शन मुनि ने किया ॥९॥

कनकाङ्गद, मुक्तावलीहेमसूत्र के द्वारा उनका श्रीअङ्ग सुशोभित था, एवं किङ्किणी जालनिबद्ध वसन के द्वारा उनका नितम्बदेश शोभित था, मनोहर चरणपङ्कज की शोभा से भक्तमन समाकृष्ट हो रहा था ॥१०॥

उन के चरणारविन्द के मनोहर गन्धघ्राण से मुनि हर्षाश्रु एवं पुलकायितवपुः हो गये थे। एवं विभोर होकर भूमितल में श्रीकृष्ण के चरणों में दण्डवतप्रणति पूर्वक निपतित हो गये ॥११॥

उस के बाद कृतज्ञ प्रभु श्रीकृष्ण ने तत्काल रत्नाङ्गुरीयक द्वारा सुशोभित कर कमलों को प्रसारित कर हर्ष से मुनि के मस्तक को स्पर्श किया एवं ईषत् स्मित शोभितानन से मनोहर सम्भाषण किया ॥१२॥

स्वायम्भुवोत्तिष्ठ मुने महात्मन्
यन्नो वदस्यद्य करोमि तत्ते।
ममैव कालोऽयमुपागतः स्वयं
युगेषु धर्म्माचरणाय धर्म्मिणाम् ॥१३॥
ततः समुत्थाय महर्षिसत्तमं
महत्तमैकान्तपरायणो हरिः।
समादिदेशासनमाशु तत् तस्मै
तस्मिन्निविष्टो मुनिराज्ञया हरेः ॥१४॥
अथान्वपृच्छद्भगवान् मुने कथं
संप्राप्तवान् मामिह किं तवेप्सितम्।
पूर्णस्य कार्य्यं करवाणि साधो
परोपकाराय महद्विचेष्टितम् ॥१५॥
इत्थं सतोयाम्बुदतुल्यघोषं
वचोऽमृतं कृष्णदयामृताब्धेः।

हे मुने ! हे स्वायम्भुव ! हे महात्मन् ! आज आप जो कुछ कहेंगे, मैं वही करूँगा। मेरा वह समय आगया है, जिस समय मुझको युग में धर्मियों का धर्माचरण करना है ॥१३॥

दण्डवत्प्रणति अवस्था से महर्षिसत्तम मुनि को महत्तमैकान्त परायणहरि ने उठाकर तत्काल आसन प्रदान किया, मुनि ने भी श्रीहरि की आज्ञा से आसन ग्रहण किया ॥१४॥

अनन्तर भगवान् ने पूछा, मुने ! क्यों आप यहाँपर आए हैं ? आप का ईप्सित क्या है ? हे साधो ! मैं पूर्णकाभी कार्य्य सम्पन्न करूँगा कारण,– परोपकार के निमित्त ही महत् की निखिल चेष्टा होती हैं ॥१५॥

इस प्रकार कृष्णदयामृताब्धि से मेघमन्द्र अमृततुल्य वाणी

उवाच पूर्णस्मितवेक्षया हरे-
र्नमामि लोकान् परिपाहि दुःखितान् ॥१६॥
क्षितिः क्षिणोत्यदच समाकुला विभो
जनस्य पापौघयुतस्य धारणात् ।
जनाश्च सर्वे कलिकालदष्टाः
पापे रतास्त्यक्तभवत्प्रसङ्गाः ॥१७॥
तान् पाहि नाथ त्वदृते न तेषा-
मन्योऽस्ति पाता निरयात्तु सद्गतिः ।
एवं विचार्य्य कुरु सर्वलोक-
नाथ स्वयं सद्गतिरीश नान्यः ॥१८॥
इत्थं समाकर्ण्य मुनेर्वचो हरि-
र्विदन्नपि प्राह किमाचरिष्ये ।

को सुनकर एवं श्रीकृष्णकी स्मितमुद्रायुक्तप्रसन्नताको जानकर मुनिने प्रणामकर कहा—दुःखसंन्तप्तलोकसमूहका परिपालन आप करें ॥१६॥

हे विभो ! पापपरायणजनसमूहको धारणकर क्षिति निरन्तर क्षीण हो रही है, जननिकर पाप रूप कलिकालदोषग्रस्त हैं, पापाचरणरत हैं, एवं भगवत् प्रसङ्ग रहित हैं ॥१७॥

हे नाथ ! उनसब की रक्षा आप करें, आप का छोड़ उनसब का रक्षक कोई नहीं है । हे सर्वलोकनाथ ! हे ईश ! उसप्रकार विचार कर मङ्गल विधान आप करें, आप व्यतीत उनसबोंका अन्य आश्रय नहीं है ॥१८॥

श्रीहरिने मुनिके बचन को एकाग्रमनसे सुनकर एवं जानकर भी कहा; इस विषय में कचा करना है? किस उपायसे शान्ति

केनाप्युपायेन भवेद्धि शान्ति-
स्तद्ब्रूहि तं प्राह पुनः स्वभूसुतः ॥१६॥
स्वयं सुशीतः शतचन्द्रमा यथा
भूदेववंशेऽप्यवतीर्य्य सत्कुले।
वात्स्ये जगन्नाथसुतेति विश्रुतिं
समाप्नुहि त्वं कुरु शं धरण्याः ॥२०॥
रामादिरूपैर्भगवन् कृतं हि यत्
पापात्मनां राक्षसदानवानाम्।
बधादिकं कर्म्म न चेह कार्य्यं
मनो नराणां परिशोधयस्व ॥२१॥
तानासुरं भावमुपागतान् हि
यदा हनिष्ये क्व तदास्ति लोकः।
एवं व्यवस्य स्वधियात्मनो यशः
प्रख्याहि लोकाः सुखिनो भवन्तु ॥२२॥

स्थापित होगी ? आप इस का निर्द्धारण करें। उक्त कथन को सुनकर स्वयम्भुसुतने पुनः कहा ॥१९॥

आप सत्कुलसम्पन्नभूदेव वंश में सुशीतल शतचन्द्रमाकेसमान अवतीर्ण होकर जगन्नाथसुत नाम से विदित हो जावें, एवं धरणी का कल्याण करें ॥२०॥

हे भगवन् ! रामादि रूप में अवतीर्ण होकर पापात्मा राक्षस दानवों के बधादिरूप जो कार्य्य आपने किया था, इस अवतार में उस प्रकार कार्य्यआप न करें। किन्तु मनुष्यों के मनका संशोधन उत्तम रूप से करें ॥११॥

असुर भावसम्पन्न व्यक्तियों की हत्या करने पर लोकों की स्थिति ही नहीं होगी। इस प्रकार निश्चय कर निज यशः का

तत्रैव रुद्रेण मुनिप्रवीराः
कर्तुं हि साहाय्यमवातरिव्यन्
तथेति तं प्राह हरिः सुरर्षिं
सोऽपि प्रणम्याशु जगाम हृष्टः ॥२३॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे नारदप्रश्नो नाम
तृतीयः सर्गः

बिस्तार आप करें, जिस से समस्त लोक सुखी वनगे ॥२२॥

वहाँ पर ही रुद्र के सहित मुनिप्रवरगण की सहायताके निमित्त अवतीर्ण होंगे, श्रीहरि ने सुरर्षिको कहा, सुरर्षि भी आनन्दित होकर सद्य श्रीहरि को प्रणाम कर चलेगये ॥२३॥

इति श्रीचैतन्यचरितेमहाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
नारदप्रश्नोनाम
तृतीयः सर्गः

चतुर्थः सर्गः

अथ श्रुत्वा तु तत्सर्वं श्रीदामोदरपण्डितः ।
उवाच परमप्रीतः कथ्यतां नृहरेः कथाम् ॥१॥
के के तत्रावतारेषु स्ववतीर्णा महीतले ।
अवतारश्च कतिधा तान् वदस्वानुपूर्वशः ॥२॥
इति श्रुत्वा द्विजाग्रचस्य वचनं श्रीमुरारिकः ।
उवाच परमप्रीत्या श्रूयतामिति सादरम् ॥३॥
अथ ते कथयाम्यन्यत् स्वांशावतरणं हरेः ।
शुद्धभक्ततयाख्यातान् भक्तानीश्वररूपिणः ॥४॥
आदौ जातो द्विजश्रेष्ठः श्रीमाधवपुरी प्रभुः ।
ईश्वरांशो द्विधा भूत्वाऽद्वैताचार्य्यश्च सद्गुणः॥५॥

अनन्तर समस्त वृत्तान्त श्रवणकर परमानन्दितचित्तसे श्रीदामोदरपण्डितने कहा, नृहरि की कथा का वर्णन आप करें ॥१॥

उक्त अवतार समय में कौन कौन व्यक्ति अवतीर्ण हुये थे, एवं अवतार भी कितने प्रकार हुये थे, उसका वर्णन आनुपूर्वीक आप करें ॥२॥

द्विजाग्रणी के वचन को सुनकर श्रीमुरारिपण्डित—हृष्ट होकर सादर पूर्वक कहे थे, श्रवण करें ॥३॥

मैं श्रीहरि के अंशावतारों का वर्णन करूँगा, जिन की गणना शुद्ध भक्तवृन्द में है ॥४॥

सर्वप्रथम द्विजश्रेष्ठ प्रभु श्रीमाधवपुरी आविर्भूत हुये थे, अनन्तर ईश्वरांश द्विधाभूत होकर सद्गुणालङ्कृत श्रीअद्वैताचार्य आविर्भूत हुये ॥५॥

तयोः शिष्योऽभवद्वेशचन्द्रांशुश्चन्द्रशेखरः ।
स आचार्य्यरत्न इति ख्यातो भुवि महायशाः ॥६॥
श्रीनारदांशजातोऽसो श्रीमत्श्रीवासपण्डितः ।
गन्धर्वांशोऽभवद्वैद्यः श्रीमुकुन्दः सुगायनः ॥७॥
श्रीमत्श्रीहरिदासोऽभून्मुनेरंशः शृणुष्व तत् ।
कथितं नागदष्टेन ब्राह्मणेन यथा पुरा ॥८॥
आदौ मुनिवरः श्रीमान रामो नाम महातपाः ।
द्राविड़े वैष्णवक्षेत्रे सोऽवात्सीत् पुत्रवत्सलः ॥९॥
तस्य पुत्रेण तुलसीं प्रक्षाल्य भाजने शुभे ।
स्थापिता सा पतद्भूमावप्रक्षाल्य पुनश्च ताम् ॥१०॥
पित्रेऽददात् पुनः सोऽपि श्रीरामाख्यो महामुनिः ।
ददौ भगवते तेन जातोऽसौ यवने कुले ॥११॥

उनदोंनों के शिष्य–चन्द्रांशु चन्द्रशेखर महायशस्वी हुये; जिन को आचार्य्यरत्न नाम से सब कहते थे ॥६॥

श्रीनारदमुनि के अंश में श्रीमत् श्रीवास पण्डित हुये । गन्धर्वके अंश में वैद्य सुगायक श्रीमुकुन्द आविर्भुत हुये ॥७॥

श्रीमत हरिदास, मुनि के अंश में उत्पन्न हुये । प्राचीनगाथा है कि नागदष्ट ब्राह्मण जिस प्रकार उद्भूत हुये थे ॥८॥

श्रीमान् राम नामक मुनिवर प्रथम आविर्भूत हुये थे, वह पुत्रवत्सल मुनिवर द्राविड़ वैष्णव क्षेत्र में निवास करते थे ॥९॥

उनके पुत्रने तुलसी प्रक्षालन पूर्वक उत्तम पात्र में स्थापन किया था, किन्तु वह तुलसी भूमि में गिरगई, ब्राह्मण के पुत्रने उस तुलसी को प्रक्षालन न करके पिता राम को दिया, महामुनि श्रीराम ने उस तुलसी का अर्पण श्रीभगवान् को कर दिया, उससे उनका जन्म यवन कुलमें हरिदासनामसे हुआ ॥१०।११॥

स धर्म्मात्मा सुधीः शान्तः सर्वज्ञानविचक्षणः ।
ब्रह्मांशोऽपि ततः श्रीमान् भक्त एव सुनिश्चितः ॥१२॥
अवधूतो महातेजा नित्यानन्दो महत्तमः ।
बलदेवांशतो जातो महायोगी स्वयं प्रभुः ॥१३॥
न तस्य कुलशीलानि कर्म्माणि वक्तुमुत्सहे ।
अपि वर्षशतेनापि वृहस्पतिरपि स्वयम् ॥१४॥
वक्तुं नेशेऽपरे किंवा वयं हि क्षुद्रजन्तवः ।
श्रीकृष्णद्वितीयश्चापि गौराङ्गप्राणवल्लभः ॥१५॥
अन्ये च शतशो जाता देवाश्च मुनिपुङ्गवाः ।
पृथिव्यामंशभावेन तान्न संख्यातुमुत्सहे ॥१६॥
अथावतारो द्विविधः पुरुषस्य प्रकीर्त्तितः ।
युगावतारः प्रथमः कार्य्यार्थेऽपरसम्भवः ॥१७॥

सर्व शास्त्रविचक्षण, शुद्ध, शान्त, ब्रह्मांशहोनेपरभी उत्तम भक्त थे ॥१२॥

महातेजा, अवधूत महत्तम श्रीनित्यानन्द थे, श्रीबलदेवके अंश से समुत्पन्न स्वयं प्रभु महायोगी थे ॥१३॥

वृहस्पति भी उनके कुलशील कर्मका वर्णन शतवर्षमें भी नहीं कर सकते हैं ॥१४॥

हमसब तो क्षुद्र जन्तु हैं, आप एवं श्रीकृष्णके द्वितीय विग्रह प्राणवल्लभ श्रीगौराङ्गके प्रिय थे ॥१५॥

अपर अनेक मुनिश्रेष्ठ एवं देवगण निजनिज अंशसे उत्पन्न हुये थे, उन सबका वर्णन करनेमें मैं अक्षम हूँ ॥१६॥

अनन्तर अवतारका विवरण कहता हूँ, अवतार द्विविध हैं, प्रथम युगावतार होते हैं, अपर कार्य्य हेतु अवतीर्ण होते हैं ॥१७॥

युगावतारा: कथ्यन्ते ये भवन्ति युगे युगे ।
धर्म्मं संस्थापयन्ति ये तान् शृणुष्व यथाक्रमम् ॥१८॥
सत्ये युगे ध्यान एकः पुरुषस्यार्थसाधकः ।
तदर्थेऽवतरत् शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटाधरः ॥१९॥
सहस्रचन्द्रसदृशः सदा ध्यानरतो मुनिः ।
सर्वेषामेव जन्तूनां ध्यानाचार्य्यो बभूव ह ॥२०॥
त्रैतायां यज्ञ एवैको धर्म्मः सर्वसाधकः ।
तत्र यज्ञः स्वयं जातः स्रुक्स्रुवादिसमन्वितः ॥२१॥
याज्ञिकैर्ब्राह्मणैः सार्द्धं यज्ञभुक् स जनार्द्दनः ।
यज्ञमेवाकरोज्जिष्णुर्जनान् सर्वानशिक्षयत् ॥२२॥
द्वापरे तु युगे पूजा पुरुषार्थाय कल्प्यते ।
इति ज्ञात्वा स्वयं विष्णुः पृथुरूपो बभूव स ॥२३

युगयुग में धर्म संस्थापन हेतु जो अवतीर्ण होते हैं, क्रमशः उनसब का वर्णन श्रवण करें ॥१८॥

सत्य युग में पुरुष का अर्थसाधक एकमात्र ध्यान ही था, तज्जन्य-चतुर्बाहु जटाधर अवतीर्ण हुये थे ॥१९॥

सहस्र चन्द्रसदृश सदा ध्यानरत मुनि थे, समस्त प्राणियों का ध्यानाचार्य्य आप थे ॥२०॥

त्रेतायुग में एकधर्म ही सर्वार्थसाधक था, उस समय यज्ञ स्वयं स्रुक्स्रुवादि युक्त हो कर आविर्भूत हुये थे ॥२१॥

याज्ञिकब्राह्मणगणों के सहित–यज्ञभुक् जनार्दन निरन्तर यज्ञानुष्ठान किये थे, एवं जिष्णु होकर समस्त जनों को शिक्षा प्रदान किये थे, ॥२२॥

द्वापरयुग में पूजा ही पुरुषार्थ के निमित्त प्रसिद्ध है, यह जानकर स्वयं विष्णु पृथुरूप में आविर्भूत हुये थे ॥२३॥

पूजाञ्चकारः धर्म्मात्मा लोकानाञ्चानुशासनम् ।
कारयामास पूजायां सर्वेषामभवन्मनः ॥२४॥
कलौ तु कीर्त्तनं श्रेयो धर्म्मः सर्बप्रकारकः ।
सर्बशक्तिमयः साक्षात् परमानन्ददायकः ॥२५॥
इति निश्चित्य मनसा साधूनां सुखमावहन् ।
जातः स्वयं पृथिव्यान्तु श्रीचैतन्यो महाप्रभुः ॥२६॥
कीर्त्तनं कारयामास स्वयं चक्रे मुदान्वितः ।
युगावतारा एते वै कार्य्यार्थे चापरान् शृणु ॥२७॥
मात्स्ये तु वेदोद्धारणं कौर्मे मन्दारधारणम् ।
वाराहे धारणं भूमेर्नारसिंहे विदारणम् ॥२८॥
चक्रे दनुजराजस्य वामने भुवनश्रियम् ।
जिग्ये तु भार्गवः क्षौणीं जित्वा राज्ञः सुदुर्मदान् ॥२९॥

धर्मात्मा पृथुने लोकानुशासन का प्रवर्त्तन कर पूजापद्धति का प्रचलन किया था, एवं समस्त व्यक्तिओंका मनोयोगाकर्षण उक्त पूजा में किया था ॥२४॥

कलियुग में सर्वधर्मोपकारक कीर्त्तन ही श्रेयस्कर है, यह सर्वशक्तिमय साक्षात् परमानन्द दायक है ॥२५॥

इस प्रकार निश्चयकर सज्जनों को सुखी करने के निमित्त श्रीचैतन्यमहाप्रभु स्वयं अविर्भूत हुये ॥२६॥

स्वयं कीर्त्तन कर अपर को भी कीर्त्तन करवाये थे, यह सब युगावतार हैं, कार्य्य हेतु जो अवतीर्ण होते हैं, उनसब का वर्णन करता हूँ ॥२७॥

मात्स्य में वेदोद्धरण, कौर्म में मन्दार धारण, वराह अवतार में भूमि का धारण, नरसिंहावतार में हिरण्यकशिपु का उदर विदारण किया ॥२८॥

वामनावतार में भुवन को शोभित किये थे, भार्गव होकर–

ददौ गां ब्राह्मणायैव विष्णुर्लोकैकतारणः ।
श्रीरामे रावणं हत्वा यशसापूरितं जगत् ।।३०।।
श्रीमत्कृष्णावतारे तु भुमेर्भारावतारणम् ।
स्वमेवहरिस्तत्र सर्वशक्तिसमन्वितः ।।३१।।
बौद्धे तु मोहनं चक्रे वेदानां भगवान् परः ।
म्लेच्छानां निधनञ्चैव कल्किरूपेण सोऽकरोत् ।।३२।।
एवं विधान्यनेकानि बहूनि बहुरूपिणः ।
काय्‍‍र्यावतारा नृहरेः कथिताः परमर्षिभिः ।।३३।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
अवतारानुकरणं नाम चतुर्थः सर्गः

सुदुर्मदराजन्यवर्ग को पराजितकर पृथिवीपर अधिकारस्थापन किये थे ।।२६।।

विष्णुलोकप्राप्तिके निमित्त ब्राह्मणगणको पृथिवी दान किये थे, श्रीरामावतार में रावणको मारकर यशसे जगत्को पूर्ण किये थे ।।३०।।

श्रीमत्कृष्णावतारमें भूमिका भारापनोदनहेतु सर्वशक्ति समन्वित स्वयं श्रीहरि ही आर्विभूत हुये थे, बुद्ध अवतार में लोकों की बुद्धिको आवृतकर उपधर्म का प्रवर्त्तन किये थे, कल्किरूप में म्लेच्छों को विनष्ट किए थे ।।३२।।

इस प्रकार अनेक रूप कार्य्य सम्पादनहेतु हरि अवतीर्ण होते रहते हैं, एकरूप आप होकर भी बहुरूपी हैं, इस रीतिसे परमर्षिगणोंने श्रीहरि के कार्य्यावतारों का वर्णन किया है ।।३३।।

इति श्रीकृष्णचैतन्य चरितामृते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
अवतारानुकरणं नाम चतुर्थः सर्गः

पञ्चमः सर्गः

★

भृणुष्वावहितं ब्रह्मन् चैतन्यस्यावतारकम् ।
नवीनं जगदीशस्य करुणावारिधेर्विभोः ॥१॥
गते देवर्षिवर्य्ये तु स्वाश्रमे भगवान् परः ।
जगन्नाथस्य विप्रर्षेर्मनस्याविशदच्युतः ॥२॥
तेनाहितं महत्तेजो दधार समये सती ।
एतस्मिन्नन्तरे साध्वी शची पतिपरायणा ॥३॥
लेभे गर्भं हरेरंशं गङ्गेव शाम्भवं शुभा ।
तस्यास्तेजोऽतिवबृधे शुक्लपक्षे यथा शशी ॥४॥
तां दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां तप्तचामोकरप्रभाम् ।
श्रिया युक्तो जगन्नाथो मुमुदे हृष्टमानसः ॥५॥

हे ब्रह्मन् ! करुणावारिधि विभु जगदीश का चैतन्य नामक अभिनवजन्मावतारचरित्रका श्रवण अवहित होकर करें ॥१॥

देवर्षिवर्य्य आश्रमको चले जानेपर परमपुरुष भगवान् अच्युत श्रीजन्नाथविप्रके मन में प्रविष्ट हुये थे ॥२॥

उससे उन्होंने महत्तेजका धारण किया, उस समय साध्वी पतिपरायणा शचीने तेज को धारण किया ॥३॥

मङ्गलमयी शची गङ्गा की भांति श्रीहरि के अंश को गर्भमें प्राप्त किया । उनका तेज, शुक्लपक्ष के शशी के समान वर्द्धित होने लगा ॥४॥

तप्त सुवर्ण के समान कान्तिविशिष्ट रूपसम्पन्न शचीको देखकर पुण्यात्मा श्रीजगन्नाथ अतिशय आनन्दित हुये थे ॥५॥

अथ तां तादृशीं दृष्ट्वा देवा ब्रह्मादयोऽपरे ।
गन्धर्वा अमरा ये च ये च सेन्द्रा नभोगताः ॥६॥
कृताञ्जलिपुटा हर्षात् साश्रुकण्ठविलोचनाः ।
तुष्टुवुर्मुदिताः सर्वे प्रणामानतकन्धराः ॥७॥
नमामि त्वां सदागर्भामदितिं जननीं हरेः ।
चन्द्रार्काग्निप्रभागर्भां सत्त्वगर्भां धृतिं क्षमाम् ॥८॥
अद्वेषगर्भां संसिद्धिं वेदगर्भां स्वयं हरेः ।
देवकीं रोहिणीञ्चैव यशोदां सर्वथाभुवाम् ॥९॥
तं वै विभर्षिगर्भे त्वं यो यज्ञं प्रथयिष्यति ।
कीर्त्तनाख्यं महापुण्यं यद्‌यज्ञैर्नोपपद्यते ॥१०॥
कीर्त्तनं नृहरेः श्रुत्वा निमिषार्द्धेन या भवेत् ।
प्रीतिरस्मादृशां सा तु कोटियज्ञैर्भवेन्न हि ॥११॥

अनन्तर शचीदेवीको उस प्रकार देखकर ब्रह्मादि देववृन्द गन्धर्वगण, इन्द्रके सहित अपरापर नभोगत देववृन्द आनन्दविभोरतासे प्रणत एवं नतकन्धर होकर कृताञ्जलिपूर्वक हर्षसे स्तव करने लगे ॥६।७॥

श्रीहरि जननी सदागर्भा,अदिति रूपिणी, चन्द्रार्काग्निप्रभागर्भा सत्त्वगर्भा, धृति क्षमा, अद्वेषगर्भा, संसिद्धिरूपा, स्वयं हरिकी प्रकाशिका वेद स्वरूपा देवकी, रोहिणी, यशोदारूपा नित्य स्वरूपाको प्रणाम हमसब करते हैं ॥८।९॥

जो कीर्त्तनाख्यमहापुण्ययज्ञका स्थापन करेगा, जिसका लाभ यज्ञादि अनुष्ठानसे नहीं होता है, आपने उनको निज गर्भ में धारण किया है, निमेषार्द्ध श्रीहरिकीर्त्तन श्रवणसे जो प्रीति हमसबकी होती है, वह प्रीति कोटि यज्ञानुष्ठानसे भी नहीं होगी ॥१०।११॥

अहो महच्चं पुरा दत्तममृतं हरिणा स्वयम् ।
समुद्रमन्थनं कृत्वा ततः कोटिगुणाधिकम् ॥१२॥
रसं पश्याम एवात्र शृण्वन्तः श्रीहरेर्यशः ।
मोक्षमप्यनृतं चेतो मन्यते कीर्त्तनाद्धरेः ॥१३॥
एवमुक्त्वा ततो देवाः सेन्द्रा जग्मुः प्रणम्य ताम् ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा गायन्तः श्रीहरेर्यशः ॥१४॥
स्वां पुरीं श्रीपतेरंशो जातो भुव्यतिहर्षितः ।
कलेर्भाग्यं प्रशंसन्तो नृत्यन्तः प्रेमविह्वलाः ॥१५॥
ततः पूर्णे निशानाथो निशीथे फाल्गुने शुभे ।
काले सर्वगुणोत्कर्षे शुद्धगन्धवहान्विते ॥१६॥
मनःसु देवसाधूनां प्रसन्नेषु च शीतले ।
स्वर्नद्याः शुद्धसलिले जाते जातः स्वयं हरिः ॥१७॥

अहो ! पूर्वकालमें श्रीहरिने स्वयं ही समुद्रमन्थनकर अमृत प्रदान मुझको किया था । उससे भी कोटिगुणाधिक आनन्द है–श्रीहरि यशःश्रवणमें, श्रीहरिनामसङ्कीर्त्तनको प्राप्तकर चित्त मोक्षका समादर नहीं करता है ॥१२।१३॥

उस प्रकार कहकर श्रीब्रह्माको अग्रणीकर इन्द्रके सहित देवगण माताको प्रणामकर श्रीहरियश का गान करते करते निजस्थान को चले गये ॥१४॥

भूतलमें श्रीहरिका आविर्भाव होनेसे देवगण कलिके भाग्यकी प्रशंसा करते करते प्रेमविह्वल होकर नृत्य करने लगे ॥१५॥

अनन्तर मङ्गलमयफाल्गुनमासमें पूर्णचन्द्रउदित हुआ, सर्वगुण युक्तकाल समागत हुआ, एवं समीरणने पुष्पगन्धोंसे दिक् विदिक्को व्याप्त करदिया ॥१६॥

देव एवं साधुगणोंके मनः प्रसन्न होनेसे एवं गङ्गा शीतलशुद्ध सलिल से परिपूर्ण होनेपर स्वयंहरि आविर्भूत हुये ॥१७॥

तं विकाशिकमलेक्षणं लसत् पूर्णचन्द्रवदनं कनकाभम् ।
तेजसा वितिमिरा दिशः स्वयं कारयन्तमुपलभ्य सुतं सः॥१८

प्रीतिसागररसस्य न पारं प्राप पद्मनिधिना यथाऽधनः ।
श्रीजगन्नाथमिश्रपुरन्दरःप्रेमगद्गदमुखं सदादधे ॥१९॥

तस्य जन्मसमयेऽनुशशाङ्कं राहुरग्रसदलं त्रपयैव ।
कृष्णपद्मवदनेन निर्ज्जितः प्राविशत् सुररिपोर्मुखं विधुः ॥२०॥

तत्र पुण्यसमये मनुजानां कीर्त्तनं नरहरेः कृतं जनैः ।
पूजनं सपरिजाह्नवीजले स्नानदानमघमाऽर्जनं शुचि ॥२१॥

जहृषुः शूरगणाः समहेन्द्राः पद्मसम्भवमहेशपुरोगाः ।
अप्सरोभिरतिनृत्यपराभि-र्नायकाश्च सुमनांसिववर्षुः॥२२॥

विकसित कमलेक्षण कनकाभ, पूर्णचन्द्रवदन, निजकान्तिसे दिक् समूहको वितिमिरकारी पुत्रको प्राप्तकर अधनजन धनप्राप्त करनेसे जिसप्रकार आनन्दितहोता है, उस प्रकार मिश्र जगन्नाथ पुरन्दरका चित्त आनन्दसमुद्रमें निमग्न होगया, एवं उनकी वाणीभी प्रेमसे गदगदायमान होगई ॥१८।१९॥

उनके जन्मसमयमें अर्थात श्रीकृष्णपद्मवदनसे विधु अपनेको निर्जित मानकर लज्जासे सुररिपुके मुखमें प्रविष्ट होगया, राहुने भी शशाङ्क को ग्रासकर लिया ॥२०॥

उस पुण्यसमयमें श्रीहरिकीर्त्तनपरायण सकलजननिकर पूजन, स्नान दान अघमार्जन करने लगे ॥२१॥

पद्मसम्भव एवं महेशको अग्रणीकर महेन्द्रके सहित देवगण आनन्दित होगये, अति नृत्यपरायण अप्सरागणके सहित गन्धर्व नायकगण कुसुम विकीरण करने लगे ॥२२॥

नीलाम्बरचक्रवर्त्ती जन्मना तस्य हर्षितः ।
आजगामाश्रमं तूर्णं जामातुः सर्वशास्त्रवित् ॥२३॥
जगन्नाथं समाहूय शचीं सम्बोधयन् सुधीः ।
दौहित्रजन्मकालज्ञ इदं बचनमब्रवीत् ॥२४॥
अये पुरुषसिंहोऽयं जातः प्रोच्चे वृहस्पतौ ।
असौ सर्वस्य लोकस्य पाता नित्यं भविष्यति ॥२५॥
सुशीलः सर्वधर्म्माणामाश्रयो न्यासिनां वरः ।
प्रीतिदः सर्वभूतानां पूर्णामृतकरो यथा ॥२६॥
समुद्धर्त्ता सदैवायं पितृमातृकुलद्वयम् ।
एवमुक्ते द्विजे तस्मिन् सर्वे प्रमुदिता जनाः ॥२७॥
माता हर्षमतीवाप श्रुत्वा तत् पितृभाषितम् ।
वात्स्यश्चकार पुत्रस्य जातकर्ममहोत्सवम् ॥२८॥

पुत्ररत्न उत्पन्न होनेसे अतिहर्षितहोकर सर्वशास्त्रवित् नीलाम्बरचक्रवर्त्ती सत्वर जामाताके घरमें आगये ॥२३॥

जगन्नाथको बुलाकर एवं शचीको सम्बोधन करके दौहित्रजन्म कालज्ञ सुधीव्यक्तिने वक्ष्यमाण बचन बोला ॥२४॥

अये ! यह पुरुषसिंह उत्पन्न हुआ है, उच्चस्थानमें वृहस्पति बालकके लग्नमें है, यह बालक सर्वलोक रक्षक होगा ॥२५॥

सुशील, समस्तधर्मोंका आश्रयस्वरूप न्यासिश्रेष्ठ बालक होगा एवं पूर्णचन्दके समान समस्त प्राणियोंको प्रोतिद होगा ॥२६॥

पितृ-मातृकुलद्वयका उद्धारक यह बालक होगा, द्विज उसप्रकार कहनेपर समस्तजन आनन्दित हुये थे ॥२७॥

माता, पिताके वचनको सुनकर अतीव आनन्दित हुईं, एवं पुत्रका जातकर्म महोत्सव भी उन्होंने किया ॥२८॥

ताम्बूलं चन्दनं माल्यं गन्धं प्रादात् द्विजातये।
क्रमेणोत्थानकर्मादिमङ्गलानि चकार सः ॥२९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते महाकाव्ये
श्रीचैतन्याविर्भावो नाम
पञ्चमः सर्गः

द्विजातिगणको ताम्बूल, चन्दन, माल्य, गन्ध प्रदान किया, एवं क्रमपूर्वक उत्थानिक मङ्गल कर्मका भी अनुष्ठान किया ॥२९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृतेमहाकाव्ये
श्रीचैतन्याविर्भावो नाम
पञ्चमः सर्गः

षष्ठः सर्गः

★

ततः कालेन कियता जानुचंक्रमणं शिशोः ।
दृष्ट्वा प्रहर्षमाप्तौ तौ दम्पती कलभाषिणः ॥१॥
शोणपद्माभवदने द्विजराजस्य रश्मयः ।
सुस्मिते भान्ति साधूनां मनोध्वान्तापहारिणः ॥२॥
पुरा विभर्त्त्यसौ विश्वमिति चक्रे पिता स्वयम् ।
श्रीमद्विश्वम्भर इति नाम तस्य सुशोभनम् ॥३॥
तप्तकाञ्चनगौराङ्गो लसत्पद्मायतेक्षणः ।
प्रभञ्जनाम्बरो रौप्यहारी मालालको हरिः ॥४॥
राकासुधाकरमुखः कलवागमृतान्वितः ।
मधुराकृतिरामुक्तकङ्कणाङ्गदभूषणः ॥५॥

षष्ठः सर्गः

अनन्तर कलभाषी शिशुका कियद्दिवसानन्तर जानुचंक्रमण को देखकर दम्पती अतिसय आनन्दित हुये, ॥१॥

शोणपद्माभ वदनमें द्विजराजचन्द्रमाकी रश्मिके समान सुस्मितसे साधुजनोंके मनोध्वान्त विनष्ट हुआ ॥२॥

प्राचीनकालमें इन्होंने विश्वका पालन किया है, अतः स्वयं पिताने अतिसुशोभन बालक का नाम विश्वम्भर रखा ॥३॥

तप्तकाञ्चनगौराङ्ग, कमलनयन, प्रभञ्जनवसन, रौप्यहार विभूषित, कुसुमशोभितचिकुर, पूर्णचन्द्रविनिन्दितवदन, अमृतनिन्दित कलवाणीयुक्त मधुराकृति, मुक्तकङ्कणाङ्गदभूषण, हिङ्गुलरञ्जित

भङ्गहिङ्गुलरक्ताब्जकरपादतलः शुचि ।
ववृधे कलया नित्यं शुक्लपक्ष इव द्विजराट् ॥६॥
ततः कालेन शोणाभ्यां पादाभ्याममितद्युतिः ।
अटन् विरहजं तापं मेदिन्याः संजहार सः ॥७॥
तीर्थभ्रमणशीलस्य द्विजस्यान्नं जनार्द्दनः ।
भुक्त्वा तं स्मारयमास नन्दगेहकुतूहलम् ॥८॥
वयस्यैर्बालकैः सार्द्धं विहरन्शुष्कपल्लवैः ।
आहताः शिशवः सर्वे विचक्रुः पुरतो मुदा ॥९॥
भुवि तिष्ठन् पदैकेन जानुनान्यस्य जानुकम् ।
पस्पर्श मर्कटीं लीलां कुर्वन् मायार्भको हरिः ॥१०॥
एकदा धर्त्तुमात्मानमुद्यतां जननीं रुषा ।

चरणकमल–हस्तकमल, शुचि शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान श्रीगौरहरि नित्य क्रमसे वर्द्धित होने लगे ॥४।५।६॥

अनन्तर यथा समय शोणवर्णविनिन्दित चरणकमल के द्वारा अमितद्युति हरि चलकर मेदिनीका विरहजनित तापको विदूरित किये थे ॥७॥

जनार्दन, तीर्थभ्रमणशीलविप्र का अन्नग्रहणकर उनको नन्दगृह कुतूहल स्मरण कराये थे ॥८॥

वयस्य बालकवृन्दके सहित विहरण करते करते शुष्कपल्लव-द्वारा हर्षसे परस्परको आघातकर समस्त बाल्यलीला करने लगे थे ॥९॥

मायार्भकहरि एक चरणद्वारा भूमिको स्पर्शकर अपर जानुके द्वारा अपर जानुको स्पर्शकर मर्कट लीलाकर बाल्यचपलताविस्तार किए थे ॥१०॥

एकदिन रोषान्वित जननी बालक को पकड़ने के निमित्त

वीक्ष्य कोपपरिपूर्णो भाजनानि बभञ्ज सः ॥११॥
पुरा भग्ने च भाण्डे यं यशोदा पशुरज्जुभिः ।
बबन्ध वेपिता तस्य भयाद्वीक्ष्य मुखं शची ॥१२॥
उपर्युपरिविन्यस्तत्यक्तमृद्भाण्डसंहतौ ।
उपविश्याशुचौ देशे मातुरग्रे जहास सः ॥१३॥
तं दृष्ट्वा सा शची प्राह त्यज तात जुगुप्सितम् ।
स्थानं शुद्धं पुनः स्नात्वा ममाङ्कारोहणं कुरु ॥१४॥
एवमुक्ते तु तां प्राह भगवान् सर्वतत्त्ववित् ।
दत्तात्रेयस्य भावैकपूर्णः सर्वज्ञपूरकः ॥१५॥
शृणु शुचिरशुचिर्वा कल्पनामात्रमेतत्
क्षितिजलपवनाग्निव्योमभिस्तं जगद्धि ।

उदचता होनेसे क्रुद्ध हरिने भाजन समूहको तोड़दिये ॥११॥

भाण्डसमूह को तोड़ डालनेपर यशोदा जिस प्रकार पशु बन्धन रज्जुसे कृष्णको बंधी थी उस प्रकार शची बालक को बंधकर एवं पश्चात बालक के मुखको देखकर भयविह्वला हो गई थी ॥१२॥

अशुचि परित्यक्त मृद्भाण्ड समूहको उपर्य्युपरिस्थापनकर उसके ऊपर में वैठकर बालक माताके सम्मुखमें हँसने लगा ॥१३॥

उक्त आचरणरत बालक को देखकर शची वोली,: हे तात ! जुगुप्सित स्थान का परित्याग करो, पुनर्वार स्नान कर शुद्ध हो जाओ और मेरा अङ्कारोहण करो ॥१४॥

जननी उस प्रकार कहनेपर दत्तात्रेयभाव पूर्ण सर्वज्ञपूरक सर्वतत्वबित् बालकभगवान्ने माताको कहा ॥१५॥

जननी ! सुनो, शुचि एवं अशुचि–कल्पनामात्र है । जागतिक वस्तुसमूह, क्षिति पवनाग्नि व्योमके द्वारा रचित हैं, श्रीहरिने स्वीय एक पादविभूति रूप शक्तिके द्वारा समस्त वस्तुतत्व का विस्तार

वितितविभवपूर्वार्द्धं तपादाब्ज एको
हरिरिह करुणाब्धिर्भाति नान्यत् प्रतीहि ॥१६॥
अतः पवित्र एवास्मि नापवित्रः कथञ्चन ।
जानीहि मातर्नान्यां त्वं शङ्कां कर्त्तुमिहार्हसि ॥१७॥
एवमुक्ते सुते सा तं करे संगृह्य सत्वरा ।
आनीय स्नापयामास स्वर्णदीस्वच्छवारिभिः ॥१८॥
अथ कतिपये काले मुक्तमृद्भाण्डसंहतौ ।
उपविष्टं सुतं वीक्ष्य शची वाग्भिरताड़यत् ॥१९॥
अपवित्रे निषिद्धेऽपि स्थाने त्वं मन्दधीः कथम् ।
तिष्ठसीति वचः श्रुत्वा मातुः क्रोधसमन्वितः ॥२०॥
श्रीमद्विश्वम्भरः प्राह मूढ़े नास्त्यशुचि क्वचित् ।
उक्तं मयैतत् पूर्वं ते तत् किं मां त्वं विगर्हसि ॥२१॥

किया है, उन करुणाब्धि हरि व्यतीत वस्तुसमूहमें अपरभेद दर्शन करना उचित नहीं हैं ॥१६॥

हे मातः शङ्का न करो, मैं पवित्र हूँ किसी प्रकार से अपवित्र मैं नहीं हूँ, सत्य जानो ॥१७॥

पुत्रके वचनको सुनकर जननी हाथ पकड़कर बालक को ले आई, और स्वर्नदीके स्वच्छ वारि के द्वारा बालक को नहलाई ॥१८॥

अनन्तर कुछ समय अतीत होनेपर परित्यक्त मृत्तिका भाण्ड समूह के ऊपर उपविष्ट बालक को देखकर शची बोली ॥१९॥

निषिद्ध अपवित्र स्थानमें मन्दबुद्धि बालक तुम क्यों बैठा है? जननी की वाणीको सुनकर श्रीमद्विश्वम्भर असन्तुष्ट होकर बोले— मातः! यहाँ कहीं अशुचि नहीं है। मैंने पहले ही कहा था, अतः मुझको क्यों तिरस्कार कर रही हो? ॥२०।२१॥

इत्युक्त्वा वदने तस्या इष्टकं प्राहिणोत् रुषा ।
तदाघातेन व्यथिता मूर्च्छिता निपपात सा ॥२२॥
तदा सर्वाः सदागत्य स्त्रियस्तां शीतलैर्जलैः ।
सिसिचुः स्म तदा तत्र हरिर्मानुषकर्मकृत् ॥२३॥
आगत्य प्ररुरोदाशु मातर्मातरिति स्वयम् ।
श्रीहस्तं तन्मुखे न्यस्य सर्वदुःखापहारकम् ॥२४॥
ततः प्रबुद्धा सा सद्यः क्रोड़े कृत्वा सुतं शची ।
मुमोद वत्सलातीव पुत्रस्नेहातिविह्वला ।२५॥
ततो जगद्गुरुं प्राह काचिद्धर्षपरायणा ।
परिहासपरा मात्रे नारिकेलफलद्वयम् ॥२६॥
समानीय प्रयच्छास्यै तदा सुस्था भविष्यति ।
न चेत् मरिष्यति तदा किमुपायं करिष्यसि ॥२७॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा मातुरङ्कात्त्वरान्वितः ।
निर्गत्यानीय स ददौ नारिकेलफलद्वयम् ॥२८॥

यह कहकर क्रुद्ध होकर एक इष्टक निक्षेप किया, उसके आघात से शची मूर्च्छित होकर गिर गई ॥२२॥

उस समय महिलावर्ग वहाँपर सत्वर आकर जल सिञ्चन करने लगीं, मनुष्याचरणरत हरि उस समय वहाँ आकर रोने लगगये। एवं सर्वदुखापहारक श्रीहस्त का स्थापन मुखमें किये ॥२३।२४॥

अनन्तर अतीव पुत्रस्नेहातिविह्वला शचीने सद्य प्रबुद्ध होकर पुत्रको अङ्कमें स्थापन किया ॥२५॥

पश्चात् हर्षपरायणा एक महिला जगद्गुरुको परिहास छलसे बोली, नरियलफलद्वय यदि लाकर माताको देते हो तब जननी सुस्थ होगी, अन्यथा मरजावेगी, तब कया करोगे ॥२६।२७॥

उससमय वाणी को सुनकर माताके अङ्कसे उठकर सत्वर

तत्कालपातनाम्बुयुक्तवृन्तयुगं हरिः ।
तद्दृष्ट्वा विस्मिताः प्रोचुःकुतः प्राप्तं त्वया फलम् ॥२९॥
ततो हुङ्कृतिभिः सर्वा बारयित्वा महामनाः ।
वत्सगोत्रध्वजो मात्रे ददौ स्मेरमुखाम्बुजम् ॥३०॥
अथान्यच्छृणु वीर्य्याणि विचित्राणि महात्मनः ।
लोकोत्तराणि साधूनि मायिनः परमात्मनः ॥३१॥
रात्रौ कदाचित् संसुप्ता शची पूर्णां जनैरिव ।
पुरिमालक्ष्य संविग्ना क्रोड़स्थं स्वसुतं शची ॥३२॥
शङ्किता प्रेषयामास पतिगेहे त्वरान्विता ।
पूजितं पथि देवैश्च श्रीमद्विश्वम्भरं हरिम् ॥३३॥

पथि प्रयातस्य सुतस्य पादयोः
सुरिक्तयोर्नूपुरनिस्वनं मुहुः ।

नारिकेलफलद्वय,—हरि ले आये थे ॥२८॥

महिला बोली, सद्यः निपातित फलद्वय तुम्हें कहाँ मिला? २९॥

वचन सुनकर हरिने हुङ्कार पूर्वक कहा, किसीसे न कहना । इस प्रकार कहकर हँसमुख बालकने माताको नारिकेल द्वय प्रदान किया ॥३०॥

अनन्तर महात्माके अन्य विचित्र प्रभावपूर्ण विवरण श्रवण करो, जो छद्मवेशी परमात्मा का उत्तम चरित्र है ॥३१॥

एकदिन रात्रिमें शची पुत्रको अङ्कमें लेकर संसुप्ता रही, उससमय उन्होंने देखा मानवों से पुर परिपूर्ण होगया । उससे शङ्कित होकर क्रोड़स्थ बालक को शचीने पिताके घरमें प्रेरण किया, गमन समयमें श्रीविश्वम्भर हरिकी अर्चना देवगणों ने की ॥३२।३३॥

बालक जब जा रहाथा, उस समय उसके चरणों में आभूषण नहीं था, किन्तु उससे मुहुर्मुहुः नूपुरनिस्वन होनेलगा । श्रवणकर शची

श्रुत्वा सशङ्कः किमिदं कुतः स्वनं
वात्स्यः शचीं प्राह शची च वात्स्यम् ।।३४।।
गते समीपं तनयेऽतिविस्मितो
दृष्ट्वा सुरक्ति सुतपादपङ्कजम् ।
कृतः श्रुतं नूपुरमञ्जुलस्वनं
सुतं समालिङ्गच मुदं ययौ द्विजः ।।३५।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
बाल्यक्रीड़ायां जन्मादिलीलावर्णनं नाम
षष्ठः सर्गः

विस्मित होकर कहने लगीं, कहाँसे निस्वन आरहा है ? ।।२४।।

श्रीजगन्नाथ बालक को समीपागत देखकर अति विस्मित हुये थे, पुत्रके पदपङ्कजको भी उन्होंने रिक्त देखा एवं मञ्जुल नूपुर ध्वनिको सुनकर पुत्रको आलिङ्गनकर परमानन्दित हुये ।।३५।।

इति श्रीचैतन्यचरितेमहाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
बाल्य कीड़ायां जन्मादि लीलावर्णनं नाम
षष्ठः सर्गः

सप्तमः सर्गः

★

इति श्रुत्वा हरेः पादपङ्कजध्याननिर्वृतः ।
दामोदरः पर्य्यपृच्छद्धरेर्ज्येष्ठस्य सत्कथाम् ॥१॥
कथयस्व महत्ख्यातं विश्वरूपस्य तत्त्वतः ।
तच्छ्रुत्वा प्राह भो ब्रह्मन् श्रूयतां कथयामि ते ॥२॥
इत्युक्त्वा वक्तुमारेभे वैद्यो हृद्यां कथां शुभाम् ।
बलदेवांशकस्यापि विश्वरूपस्य पावनीम् ॥३॥
श्रीमत्श्रीविश्वरूपः सकलगुणनिधिः षोड़शाब्दोऽतिशुद्धः
प्रापाचार्य्यत्वमात्मश्रवणमननतः शक्तधीः प्रेमभक्तः ।

सप्तमः सर्गः

श्रीहरिके पादपङ्कजके नूपुरध्वनिवृत्तान्त को सुनकर स्वरूप दामोदरपण्डित श्रीहरिचरणकमलध्यान से आनन्दितचित्त होकर श्रीहरिके ज्येष्ठभ्राता का चरित्र को पूछे थे ॥१॥

उन्होंने कहाँ, श्रीविश्वरूपका तत्त्वतः महत्चरित्र का वर्णन आप करें, सुनकर पण्डित मुरारिने कहा,–हे ब्रह्मन् ! मैं वर्णन करता हूँ। आप श्रवण करें ॥२॥

इस प्रकार कहकर वैद्य, मनोहर श्रीबलदेवांश रूप श्रीविश्वरूप के पावनचरित्र को कहना प्रारम्भ करदिये ॥३॥

षोड़शवत्सर वयस्क अतिशुद्ध सकलगुणनिधि, श्रीमत् श्रीविश्वरूप थे, आचार्य्यवरण करने के पश्चात् यथावत् शास्त्र श्रवण मननसे प्रेमवान्भक्त हुये थे, आप सर्वज्ञ थे, एवं सर्वत्र उनका चित्त श्रीनरहरि

सर्वज्ञः सर्वदाऽसौ नरहरिचरणासक्तचित्तोऽतिहृष्टः
शान्तः सन्तोषयुक्तो जगति न रतिमान् वेदवेत्ता रसज्ञः ।।४।।
जनको विजने विचिन्त्य तत् तनयस्योद्वहनोचितां बधूम् ।
मनसा परिचिन्तयन् स्वयं बुबुधे तत् सकलं द्विजात्मजः।।५।।

स विश्वरूपः पितुरित्थमन्त-
श्चेष्टां विदित्वा सकलं तितिक्षुः ।
त्यक्त्वा गृहं स्वर्गनदीं प्रतीर्य्य
जग्राह सन्न्यासमशक्यमन्यैः ।।६।।
ततः पिता तत् परिश्रुत्य विह्वलो
माता च साध्वी विललाप दुःखिता ।
तावाहतुः पुत्रहितौ सुतो मे
सन्न्यासधर्म्मे निरतो भवत्विति ।।७।।

चरणों में आसक्त था । शान्त, सततसन्तुष्ट, आनन्दपूर्ण, वेदवेत्ता रसज्ञ एवं जगत्के प्रति वितृष्ण आप थे ।।४।।

पिताने एकान्तमें तनयके परिणय हेतु पुत्रके अनुरूप बधू संग्रहके निमित्त कर्त्तव्य बोध किया । द्विजात्मजने भी मनस्थ समस्त वृत्तान्त को जाना था ।।५।।

विश्वरूपने पिताकी समस्त आन्तरिक चेष्टाको जानकर समस्त विश्वको छोड़कर गङ्गाके तीरमें आकर उपस्थित हुआ, एवं अपर व्यक्तियों के पक्षमें जो अतिशय कठिन कार्य्य था उक्त सन्न्यासधर्म को अवलम्बन किया ।।६।।

पिताने तनयके उस कृत्य को सुना, एवं विह्वल अन्तःकरण से दुःखित हुआ, माताने भी दुःखिता होकर विलाप किया । अनन्तर दोनों ने पुत्रके मङ्गल हेतु कहा, पुत्र सन्न्यासधर्म में निरत हो ।।७।।

इत्याशिषस्तौ तनयाय दत्त्वा
मुनिव्रतौ धैर्य्यमुवाहतुः स्म ।
विषादमुत्सृज्य सुतं जगत्पतिं
क्रोड़े निधायाशु मुदं तदासतुः ॥८॥

ततो हरिः प्राह पितर्गतो मे
भ्राता भवन्तं परिहाय दूरम् ।
मयैव कार्य्या भवतश्च सेवा
मातुश्च नित्यं सुखमाप्नुहि त्वम् ॥९॥

इत्थं निशम्य स्वसुतस्य वाक्य-
मनल्पगम्भीरमनोज्ञमर्थवत् ।
आलिङ्ग्य तं हर्षजनेत्रवारिभि
रवाप मोदं जननी पिता च ॥१०॥

तदङ्गसंस्पर्शरसाभितृप्त-
गात्राणि नार्द्रा विदुरञ्जसापरम् ।
गता स्वयोगेन यथा सुयोगिनः
पश्यन्ति नेमं न परञ्च लोकम् ॥११॥

इस प्रकार दोनों ने आशिष प्रदानके पश्चात् मुनिव्रतावलम्बन कर धैर्य्य धारण किया, एवं विषाद को परित्यागकर जगत्पति पुत्रको अङ्कमें स्थापनकर परमानन्दित हुआ ॥८॥

अनन्तर श्रीहरिने पिताको कहा–पितः! भ्राता घर छोड़कर चलेगये हैं, मैं ही आप दोनों की यथारीति सेवा कार्य्य करूँगा ॥९॥ इस प्रकार निज तनयके मनोज्ञ अर्थवत् अनल्प गम्भीर वाक्य को सुनकर पितामाताने पुत्रको हर्षज नेत्रवारि के सहित पुत्रको आलिङ्गन किया, एवं अतिशय आनन्दानुभव किया ॥१०॥

तनयके गात्र संस्पर्श सुख से विभोर होकर जनकजननी अपर

पठन् पितुः सेवनयुक्तचेताः
क्रीड़ापरोबालकसङ्घमध्ये ।
क्रीड़न् वयस्यैः किल धूलिधूसरो-
न वेद किञ्चित् क्षुधितोऽपि भोजनम् ॥१२॥
कदाचिदालोक्य पिता स्वतन्त्रं
संभर्त्सयामास सुतं हितार्थी ।
पाठादिकञ्चैव विहाय सर्वं
क्षुधार्द्दितः क्रीड़सि बालकैर्वृतः ॥१३॥
ततो रजन्यां शयनावसाने
स्वप्नेऽवदत्तं द्विजवर्य्यमुख्यः ।
न किं सुतं त्वं बहुमन्यसे हि
किं वा पशुः स्पर्शमणिं न वेत्ति ॥१४॥

विषय विस्मृत होगये थे, जिस प्रकार सुयोगिगण निज योगानुष्ठान से स्वरूपावबोध करनेपर इहलोक परलोक विस्मृत होजाते हैं ॥११॥

पितृसेवारत बालक पिता के समीप में अध्ययनरत थे, एवं बालक वृन्द के मध्य में वयस्यों के सहित धूलिधूसर होकर क्रीड़ा विभोर होते थे, जिस से क्षुधा का भी अनुभव नहीं रहता था ॥१२॥

कदाचित् पिताने बालक को क्रीड़ा में आसक्त देखकर मङ्गल कामना से प्रेरित होकर बालक को भर्त्सन किया,-पढ़ना परित्याग कर एवं क्षुधार्दित होकर तुम सर्वदा बालकों के सहित खेलते रहते हो ॥१३॥

अनन्तर पिताने रात्रि काल में निद्रित अवस्था में एक स्वप्न देखा —"एक ब्राह्मणवर्य्य आकर कहरहे थे—"आप पुत्र को बहुमान देते नहीं हैं, आप जानते नहीं हैं, यह सामान्य बालक नहीं है, पशु जिस प्रकार स्पर्शमणिको नहीं जानता है, आपका आचरण भी

रत्नांशुकालङ्कृतदेहयष्टिः
किं वा न चाश्नाति तदंशुकानि ।
तमाह मिश्रो ह्यकुतोभयः स्वयं
नारायणश्चेद्भवतीह पुत्रः ॥१५॥

तथापि तत्ताड़नमेव धर्मं
इत्युक्तोविप्रोऽपि तमाह साधुः
इत्येवमुक्त्वा प्रययौ द्विजाग्र्यो
वात्स्यः प्रबुद्धः पुनराशशंस ॥१६॥

स्वप्नं निशम्याशु जनाः प्रहृष्टा
विश्वम्भरं पुरुषवर्य्यसत्तमम् ।
तं मेनिरे पूर्णमनोरथं मुदा
मेने पिता स्वं जननी च तुष्टा ॥१७॥

वैसा ही है, रत्नांशुक एवं अलङ्कारों से अङ्ग विभूषित न होने से ॥१४॥
अथवा भोजन न करने से भी बालक का अङ्ग असुन्दर एवं म्लान नहीं होता था। इस से मिश्रने समझा यह बालक–श्रीनारायण ही हैं ॥१५॥

तथापि पुत्र को अनुशासन में रखना ही पिता का धर्म है, अतः हितकर वचन उत्तम रूप से आप कहें" ब्राह्मणवर्य्य उस प्रकार कहकर चले जाने पर जगकर मिश्रने उक्त वृत्तान्त को सब के समक्ष में कहा ॥१६॥

जनगण मिश्र के प्रमुख स्वप्न वृत्तान्त सुनकर आनन्दित हुये, एवं विश्वम्भर को पुरुषश्रेष्ठ मानने लगे, जनक-जननी भी पुत्र को देखकर आनन्दित चित्त से पूर्ण मनोरथ हो गये ॥१७॥

ततः कदाचिन्निवसन् स्वमन्दिरे
समुद्यदादित्यकरातिलोहितः ।
स्वतेजसापूरितदेह आबभौ
उवाच मातर्वचनं कुरुष्व मे ॥१८॥
तथा ज्वलन्तं स्वसुतं स्वतेजसा
विलोक्य भीता तमुवाच विस्मिता ।
यदुच्यते तात करोमि तत्त्वया
वदस्व यत्ते मनसि स्थितं स्वयम् ॥१९॥
तदित्थमाकर्ण्य वचोऽमृतं पुन-
स्तां प्राह मात र्न हरेस्तिथौ त्वया ।
भोक्तव्यमाकर्ण्य वचः सुतस्य सा
तथेति कृत्वा जगृहे प्रहृष्टवत् ॥२०॥
निवेदितं पूगफलादिकं यत्
द्विजेन भुक्त्वा पुनरब्रवीत्ताम् ।

एकदिन माता निज मन्दिर में अवस्थित थी, उस समय उदित आदित्यकिरण के समान कान्तिमाला से गृह को उद्भासित करते हुये बालक ने माता को कहा मा ! मैं जो कुछ कहूँ आप उसको करें ॥१८॥

निजाङ्ग कान्ति से समुद्भासित पुत्र को देखकर माता भीता होकर कहने लगी, हे तात ! जो तुम कहोगे मैं वही करूँगी, तुमने जो कुछ मनस्थ किया है, कहो ॥१९॥

जननी के वचन को सुनकर पुत्रने कहा—हे मातः ! श्रीहरि-वासर में भोजन ग्रहण न करना, पुत्र के कथन को माताने आनन्द चित्त से मान लिया ॥२०॥

ब्राह्मण के द्वारा समर्पित फलादि नैवेद्य भोजन करने के बाद

ब्रजामि देहं परिपालयस्व
सुतस्य निश्चेष्टगतं क्षणार्द्धम् ॥२१॥
इत्युक्त्वा सहसोत्थाय दण्डवच्चापतद्भुवि ।
विश्वम्भरं गतं दृष्ट्वा माता दुःखसमन्विता ॥२२॥
स्नापयामास गाङ्गेयैस्तोयैरमृतकल्पकैः ।
ततः प्रबुद्धः सुस्थोऽसौ भूत्वा स न्यवसत् सुखी ॥२३॥
तेजसा सहजेनैव तच्छ्रुत्वा विस्मितोऽभवत् ।
जगन्नाथोऽब्रवीच्चैनां दैवीं मायां न विद्महे ॥२४॥
इति श्रुत्वा कथां दिव्यां प्राह दामोदरद्विजः ।
किमिदं कथितं भद्र स्वयं कृष्णो जगद्गुरुः ॥२५॥
जातः कथं व्रजामीति पालयस्व सुतं शुभे ।
इति मात्रे कथं प्राह ह्येतन्मे संशयो महान् ॥२६॥

श्रीहरिने माता को कहा, मा ! मैं जारहा हूँ, शरीर का पालन करना- इस प्रकार कहकर निश्चेष्ट हो गया, एवं क्षणार्द्ध काल पर्य्यन्त उस अवस्थामें रहा ॥२१॥

उस प्रकार कहने के बाद सहसा उठकर वह दण्डवत् भूतल में गिर गया। विश्वम्भर चलागया मानकर मा, दुःखी हुई, और अमृत विनिन्दित गङ्गा जल से स्नपन कराने लगी, पश्चात् पुत्र, प्रबुद्ध होकर सुस्थ हुआ एवं सुख पूर्वक अवस्थान किया ॥२२-२३॥

वह बालक तेज से परिपूर्ण था, श्रीजगन्नाथमिश्र, वृत्तान्त को सुनकर परम विस्मित हुये एवं बोले दैवीमाया की गति को जानने में मैं असमर्थ हूँ ॥२४॥

श्रीदामोदरपण्डित, उक्त दिव्य कथा को सुनकर बोले हे भद्र ! आपने यह कया कहा, जब जगत्गुरु श्रीकृष्ण ही आविर्भूत हुये, तब

किं माया जगदीशस्य तद्वक्तुं त्वमिहार्हसि ।
हरेश्चरित्रमेवात्र हिताय जगतां भवेत् ॥२७॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते महाकाव्ये
प्रथमप्रक्रमे बाल्यक्रीड़ायां
सप्तमः सर्गः

माता को उन्होंने कैसे कहा कि,–'बालकके शरीर का पालन करो, मैं जारहा हूँ ? उस विषय में मेरा महान् संशय है, यह कया जगदीश्वर की माया है, आप यथार्थ रूप से वर्णन करें, श्रीहरि चरित्र जगत् के कल्याण निमित्त ही होता है ॥२५-२६-२७॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृतेमहाकाव्ये
प्रथमप्रक्रमे बाल्य क्रीड़ायां
सप्तमः सर्गः

अष्टमः सर्गः

★

इति श्रुत्वा वचस्तस्य चिन्तयित्वा विचार्य्य च ।
नत्वा हरिं पुनः प्राह शृणुष्व सुसमाहितः ॥१॥
जनस्य भगवद्ध्यानात् कीर्त्तनात् श्रवणादपि ।
हरेः प्रवेशो हृदये जायते सुमहात्मनः ॥२॥
तस्यानुकारं चक्रे स तत्तेजस्तत्पराक्रमम् ।
दधाति पुरुषो नित्यमात्मदेहादिविस्मितः ॥३॥
भवेदेवं ततः काले पुर्नवाहचो भवेत्ततः ।
करोति सहजं कर्म्म प्रह्लादस्य यथा पुरा ॥४॥

अष्टमः सर्गः

उक्त कथन को सुनकर चिन्तन एवं विचार कर श्रीमुरारिने श्रीहरि को नमन कर सुसमाहित चित्त से पुनर्बार बोला ! श्रवण करें ॥१॥

श्रीभगवद्ध्यान कीर्त्तन चरित्रादि श्रवण से महात्मा के हृदय में श्रीहरि प्रविष्ट होते हैं ॥२॥

श्रीहरि, उसका ही अनुकरण करते हैं, आत्मविस्मित होकर पुरुष श्रीहरि का पराक्रम को धारण करता है ॥३॥

अतएव पुनर्बार समय में ज्ञान प्रकट होता है,—उससे पुनर्बार स्वाभाविक कर्मसमूह निष्पन्न होगा। प्राचीन काल में प्रह्लाद के आविर्भाव के समय भी श्रीहरिने वैसा ही किया था ॥४॥

तादात्म्योऽभूत्तोयनिधौ पुनर्देहस्मृतिस्तटे ।
एवं हि गोपसाध्वीनां तादात्म्यं सम्भवत् क्वचित् ॥५॥
ईश्वरस्तस्य संशिक्षां दर्शयंस्तच्चकार ह ।
लोकस्य कृष्णभक्तस्य भवेदेतत्स्वरूपता ॥६॥
यथात्र न विमुह्यन्ति जना इत्यभ्यशिक्षयन् ।
भक्तदेहो भगवतो ह्यात्मा चैव न संशयः ॥७॥
कृष्णः केशिबधं कृत्वा नारदायात्मनो यशः ।
तेजश्च दर्शयामास ततो मुनिवरो भुवि ॥८॥
पपात दण्डवत्तस्मिन् स्थाने शतगुणाधिकम् ।
फलमाप्नोति गत्वा तु वैष्णवो मथुरां पुरीं ॥९॥
एवं रामो जगत्‌योनिर्विश्वरूपमदर्शयत् ।
शिवाय पुनरेवासौ मानुषीमकरोत् क्रियाम् ॥१०॥

समुद्र के तटमें तादात्म्य होकर थे, एवं पुनर्वार देह स्मृति भी हुई थी, इस प्रकार ही किसी समय गोप सुन्दरियों के सहित तादात्म्य भी होता है ॥५॥

ईश्वर उस शिक्षा का प्रवर्त्तन करते हैं, एवं दर्शाते रहते हैं कि कृष्णभक्त के सहित कृष्ण की एकात्मता है ॥६॥

लोक प्राकृत बुद्धि से मुग्धता को प्राप्त न करें—इस प्रकार शिक्षा का विस्तार करने के निमित्त दर्शाते हैं—भक्त देह ही भगवान् का जीवन है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥७॥

कृष्ण ने केशिबध करने के पश्चात् निज तेज एवं यश का प्रदर्शन नारद के समक्ष में किया था, उससे मुनिबर नारद, दण्डवत् भूतलमें गिर गये थे, और उसस्थान भी पवित्र हो गया, यहाँ पर वैष्णवगण गमन कर शतगुणाधिक फल लाभ करते हैं, यह ही मथुरा पुरी है ॥८-९॥

पुनः शृणुष्व भो ब्रह्मन् चैतन्यस्य कथां शुभाम् ।
यच्छ्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यो मुच्यते भवबन्धनात् ॥११॥
गुरोर्गृहे वसन् जिष्णुर्वेदान् सर्वानधीतवान् ।
पाठयामास शिष्यान् स सरस्वतीपतिः स्वयम् ॥१२॥

तत्पितापि महाभागो वेदान्तादीन् पठन् सुखी ।
ततश्च पुनरायातो जगन्नाथो द्विजर्षभः ॥१३॥
दैवयोगेन तस्याभूज्ज्वरः प्राणापहारकः ।
अतस्तं तादृशं दृष्ट्वा सह मात्रा स्वयं हरिः ॥१४॥
जगाम जाह्नवीतीरे निजभक्तैः समावृतः ।
श्रीमान् विश्वम्भरो देवो हरिकीर्त्तनतत्परैः ॥१५॥

इस प्रकार रामने भी जगन्मङ्गल के निमित्त विश्वरूप का प्रदर्शन किया था, एवं पुनर्वार मनुष्योचित आचरण भी समस्त कार्य्य में किया ॥१०॥

हे ब्रह्मन् ! पुनर्वार श्रीचैतन्यदेव की भुवन पावनी कथा का श्रवण आप करें, जिस का श्रवण श्रद्धासे करने पर मानव भव बन्धन से मुक्त हो जायेगा ॥११॥

स्वरस्वती पति श्रीगौरहरि गुरुगृहमें निवास कर वेदादि शास्त्राध्ययन यथावत् किये थे, अनन्तर शिष्यवर्ग को यथारीति अध्यापन कराये थे ॥१२॥

इस प्रकार उन्होंने न्याय वेदान्तादि शास्त्राध्यायन में मनः संयोग किया था, एकदिन द्विजश्रेष्ठ श्रीजगन्नाथ मिश्र का दैवसंयोग से प्राणापहारक ज्वर उत्पन्न हुआ। हरिने उस अवस्था को देखकर श्रीहरि कीर्त्तन तत्पर भक्तवृन्द के सहित पिता को गङ्गातीर में ले गया ॥१३-१४-१५॥

अथ तस्य पदद्वयं हरिः
पितुरालिङ्गच सगद्गदस्वरम् ।
अवदत् पित्तराशु मां प्रभो
परिहाय क्व भवान् गमिष्यसि ॥१६॥
इति वागमृतं सुतस्य सः
श्रवणाभ्यां परिपीय सादरम् ।
अवदद्रघुनाथपादयो-
स्तव सम्यक् सुसमर्पणं कृतम् ॥१७॥
गगने सुरवर्य्यसंहतौ
स महेन्द्रे समुपस्थिते दिवा ।
हरिसंकीर्त्तनतत्परे जने
द्युनदीतोयगतो द्विजोत्तमः ॥१८॥
परिहाय तनूं दिवौकसां
रथमास्थाय ययौ हरेः पुरीम् ।

अनन्तर जनक के चरणद्वय को आलिङ्गन कर गद्गद स्वरसे श्रीविश्वम्भरने कहा, पितः! आप सत्वर मुझ को छोड़कर कहाँ जा रहे हैं? १६॥

पुत्र के अमृत विनिन्दित बचन को सुनकर पिताने बोला, श्रीरघुनाथ के पादपद्ममें मैंने तुम को समर्पण किया ॥१७॥

अनन्तर गगनमें महेन्द्र के सहित देववृन्द उपस्थित होने पर एवं भक्तगण हरिकीर्त्तन तत्पर होने से द्विजोत्तम स्वर्नदीमें निर्वाण प्राप्त किये थे ॥१८॥

तनु को परित्याग कर गगन विहारियों के रथारूढ़ होकर श्रीहरि धाम को आप चले गये, महात्मागण के शरीर नित्यसिद्ध होने

नित्यसिद्धशरीरोऽपि महात्मा
लोकहिताचरणाय यथासुखम् ॥१९॥
अथ सिद्धिगतं पतिं शची
परिदीना विललाप दुःखिता ।
चरणे विनिपत्य स प्रभोः
कुररीव प्रमदागणावृता ॥२०॥
पितरं विलपतो मुहुर्द्दशो-
रपतद्वारिझरो दयानिधेः ।
गजमौक्तिकहारविभ्रमं
विदधद्वक्षसि लक्षणं बभौ ॥२१॥
अथ बन्धुजनैः प्रशान्तितः
परिणामोचितसत्क्रियां प्रभुः ।
अकरोत् परिवेदनान्वितो
विधिदृष्ट्या सकलां सहद्विजैः ॥२२॥

पर भी लोक हिताचरण के निमित्त स्वानन्दचित्त से शरीर ग्रहण करते हैं ॥१९॥

अनन्तर सिद्धि प्राप्त पति के चरणोंमें पतित शची, महिलागण परिवृत होकर कुररी के समान विलाप करने लगीं ॥२०॥

उस विलाप को देखकर दयानिधि का हृदय विगलित हो गया एवं नयनों से वारि बिन्दु निर्गत होकर उनके वक्षःस्थल को गज मौक्तिक हार से विभूषित कर दिया ॥२१॥

अनन्तर बन्धु जनों के प्रबोध वाक्यों से प्रबोधित होकर प्रभुने परिणामोचितक्रियानिष्पन्न हेतु मनो निवेश किया, एवं रोदन करते करते द्विजवृन्दों के सहित यथाविधि अन्तिम संस्कार क्रिया का समाधान किया ॥२२॥

विमना इव सञ्चितैर्धनैः
पितृयज्ञं पितृवत्सलोऽकरोत् ।
द्विजपूजनसत्क्रियां क्रमाद्
विदधे तां स धरादिभाजनैः ॥२३॥
इति यो वदति प्रभोः पितु-
र्दिवसंस्थानमतन्द्रितो नरः ।
लभते द्युनदीं हरेः पुरीं
परिहायाशु मलं स गच्छति ॥२४॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
जगन्नाथमिश्रसंसिद्धिर्नाम
अष्टमः सर्गः

पितृवत्सल प्रभुने शोकाक्रान्त हृदय से सञ्चित धनों से पितृ यज्ञानुष्ठान किया, एवं दानमानादि के द्वारा क्रमश यथोचित द्विज पूजनसत्क्रिया का समाधान भी किया ॥२३॥

इस रीति से जो जन श्रीप्रभु के पितृ वियोग कृत्य का वर्णन अतन्द्रित होकर करता है, उसकी गङ्गाप्राप्ति होती है, परन्तु निर्मलान्तःकरण होकर वह सत्वर श्रीहरिधामगमन भी करता है ॥२४॥

इति श्रीकृष्णचैतन्य चरितामृते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
जगन्नाथमिश्रसंसिद्धि र्नाम
अष्टमः सर्गः

नवमः सर्गः

ततः पपाठ स पुनः श्रीमान् श्रीविष्णुपण्डितात् ।
सुदर्शनात् पण्डिताच्च श्रीगङ्गादासपण्डितात् ॥१॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ विद्यां ये पण्डितमहत्तमाः ।
तेषां महोपकाराय तेभ्यो विद्यां गृहीतवान् ॥२॥
लोकशिक्षामनुचरन् मायामनुजविग्रहः ।
ततः पठन् पण्डितेषु श्रीमत्सुदर्शनेषु च ॥३॥
सतीर्थैः प्रहसन् विप्रैर्हसद्भिः परिहासकम् ।
उवाच वङ्गजैर्वाक्यै रसज्ञः सस्मिताननः ॥४॥
ततः कालेन कियताचार्य्यस्य वनमालिनः ।
जगाम पुर्य्यां तं द्रष्टुं कौतुकात् प्रणतस्य सः ॥५॥

नवमः सर्गः

अनन्तर श्रीगौरहरि,-श्रीमान् श्रीविष्णुपण्डित, श्रीसुदर्शनपण्डित एवं श्रीगङ्गादासपण्डित के निकट से विद्याध्ययन किये थे ॥१॥

जो सब पण्डितवृन्द, ब्राह्मणवृन्द को विद्यादान करते थे, उन सब को उपकृत करने के निमित्त विद्याध्ययन किये थे ॥२॥

मायामनुज विग्रह श्रीगौरहरि, लोक शिक्षा प्रवर्त्तन के निमित्त श्रीमत् सुदर्शनपण्डितवर्य्य से पाठ ग्रहण किये थे ॥३॥

रसज्ञ प्रहसिताानन प्रभु सतीर्थ विप्रवर्ग के सहित हास्यपरिहास छल से पूर्ववङ्गीय भाषा का अनुकरण करते थे ॥४॥

कियद्दिवस के अनन्तर श्रीप्रभु आचार्य्य श्रीवनमालीपण्डित को संदर्शन करने के निमित्त उनके निवासस्थान में उपस्थित हुये थे,

आभास्य गच्छताचार्य्यं हरिणा दद्दशे पथि ।
वल्लभाचार्य्यदुहिता सखीजनसमावृता ।।६।।
स्नानार्थं जाह्नवीतोये गच्छन्ती रुचिरानना ।
दृष्ट्वा तान् तादृशीं ज्ञात्वा मनसा जन्मकारणम् ।।७।।
तस्या जगाम निलयं तमेव स्वजनैः सह ।
श्रीमान् विश्वम्भरो देवो विद्यारसकुतूहली ।।८।।
अपरेद्युः पुनस्तत्र वनमाली द्विजोत्तमः ।
आचार्य्यःश्रीहरेर्गेहमागत्य प्रणमन् शचीम् ।।
उवाच मधुरां वाणीं श्रीमद्विश्वम्भरस्य ते ।।९।।
सुतस्योद्वाहनार्थाय कन्यां सुरसुतोपमाम् ।
वल्लभाचार्य्यवर्य्यस्य वरयस्व यदीच्छसि ।।१०।।

नमस्कारसम्भाषण प्रभृति सद्व्यवहार के पश्चात् प्रत्यागमन के समय पथिमध्य में सखिजन समावृता वल्लभाचार्य्य दुहिता का दर्शन श्रीहरि ने किया ।।५-६।।

रूचिरानना वल्लभदुहिता जाह्नवी सलित में अवगाहनस्नान के निमित्त जा रही थी, उससमय उनको देख कर उभय के मनमें पूर्व स्मृति जग उठी थी ।।७।।

विद्यारस कुतूहली श्रीमान् विश्वम्भरदेव निज जनों के सहित उन के निवासस्थल में उपस्थित हुये थे ।।८।।

अपर एकदिन आचार्य्य श्रीवनमालीपण्डित श्रीहरि के घर में उपस्थित होकर श्रीशचीदेवी को प्रणाम कर मधुर वाणी कहे थे, "श्रीमद् विश्वम्भर के परिणयानुरूप देव कन्या के समान वल्लभाचार्य की कन्या है, यदि आप मनोनीत करें तो उक्त सम्बन्ध का अनुमोदन करें ।।९-१०।।

एतत् श्रुत्वा शची प्राह बालोऽसौ मम पुत्रकः ।
पित्रा विहीनः पठतु तत्रोद्योगो विधीयताम् ॥११॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्या नातिहृष्टमना ययौ ।
आचार्य्यो दृष्टवांस्तत्र पथि कृष्णं मुदान्वितम् ॥१२
भगवांस्तं प्रणम्याशु समालिङ्गच सुनिर्भरम् ।
क्व भवानद्य गन्तासि पप्रच्छ मधुरं वचः ॥१३॥
स आह मातुश्चरणं तव दृष्ट्वा समागतः ।
निवेदितं मया तस्यै तवोद्वाहाय तत्र सा ॥१४॥
श्रद्धां न विदधे तेन विमनाः संव्रजाम्यहम् ।
इत्युक्तेनोत्तरं दत्त्वा प्रहस्य प्रययौ हरिः ॥१५॥
आगत्य स्वाश्रमं प्राह मातरं किं त्वयोदितम् ।
आचार्य्याय वचः सोऽपि विमनाः पथि गच्छति ॥१६॥

यह सुन कर श्रीशची बोलीं, पितृहीन मेरा बालक जिस प्रकार विद्याध्ययन करने में सक्षम हो, वैसा ही आप उद्योग करें ॥११॥

यह सुन कर आचार्य्य वनमालीने विमनाः होकर प्रत्यावर्त्तन करते समय पथ में प्रसन्न वदन श्रीकृष्ण को देखा ॥१२॥

भगवान् उनको प्रणाम आलिङ्गन के द्वारा आप्यायित कर मधुर वाणी से पूछे थे, आप आज कहाँ से आरहे हैं ? १३॥

आचार्य्य ने कहा,–आपके मातृ चरण दर्शन कर मैं आरहा हूँ, मैं उनको आपके उद्वाह वृत्तान्त निवेदन भी किया ॥१४॥

किन्तु आपने उसको महत्त्व नहीं दिया, तज्जन्य ही मैं विमनाः होकर प्रत्यावर्त्तन कर रहा हूँ, इस प्रकार कहकर स्मितमुद्रा से आचार्य्य चले जाने पर श्रीहरिने स्वाश्रम में आकर मा को निवेदन किया, मा ! आपने आचार्य्य को क्या कहा ? जिससे आचार्य्य विमनाः होकर जा रहे थे ॥१५-१६॥

कथं न तस्य सम्प्रीतिः कृता मातः प्रियोक्तिभिः ।
एतज्ज्ञात्वा सुतस्याशु मतमाप्तजनं पुनः ॥१७॥
आचार्य्यं त्वरया नेतुं प्रेषयामास सा शुभा ।
आचार्य्यं सहसागत्य नमस्कृत्य ब्रवीदिदम् ॥१८॥
कथमीश्वरि मामाज्ञामकरोत्तद्ब्रवीतु मे ।
संप्रहृष्टो वचः श्रुत्वा भवत्याः सन्निधावहम् ॥१९॥
एवमुक्ते ततः प्राह तं शची यत्त्वया वचः ।
उद्वाहार्थं तु कथितं तत् कर्त्तुं त्वमिहार्हसि ॥२०॥
त्वं सुहृद्वत्सलोऽतीव सुतस्य स्वयमेव तत् ।
पुरा प्रोक्तं स्नेहवशात्तत्र त्वां किं वदाम्यहम् ॥२१॥

मा ! आपने आचार्य्य के वचन से सन्तोष प्राप्त क्यों नहीं किया ? यह सुनकर शची पुत्र के स्वाभिप्राय को जान गईं एवं आप्तजन को भेजकर सत्वर आचार्य्य को निज समीप में लेआने के निमित्त आचार्य्य के घर में भेजी थी, आचार्य्य भी सहसा शची के निकट उपस्थित होकर उनको नमस्कार कर इस प्रकार कहे थे 'हे ईश्वरि ! मुझको आदेश करें, जो आप का अभीप्सित हो, मैं आप का सन्देश प्राप्त कर परम सन्तुष्ट हूँ, एवं आप के सान्निध्य में उपस्थित हूँ ॥१७-१८-१९॥

प्रत्युत्तर में शची बोली, आपने पुत्रके परिणय के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव किया था, उसको सफल करने के निमित्त उद्योग आप करें '॥२०॥

आप सुहृद हैं, बालक के प्रति अतीव प्रीति आपकी है, आपने हितच्छु होकर स्वयं ही उद्वाह का प्रस्ताव किया है, यह आपका स्नेह परिपूर्णहृदय का ही द्योतक है, इस विषय में अधिक कहना क्या है ? २१॥

एतत् श्रुत्वा वचस्तस्याः प्राहाचार्य्यो नमन् वचः ।
ईश्वरि त्वद्वचो नित्यं करोमि शिरसा वहन् ॥२२॥
इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र वल्लभो मिश्रसत्तमः ।
यत्र तिष्ठति तत्रैव सोऽप्युद्यम्य त्वरान्वितः ॥२३॥
दिदेशासनमानीय स्वयमेव यथाविधि ।
मिश्रः पप्रच्छ विनयादाचार्य्यं वनमालिनम् ॥२४॥
ममानुग्रह एवात्र तवागमनकारणम् ।
अन्यद्वास्ति कियत्कार्य्यं तदाज्ञां कर्त्तुमर्हसि ॥२५॥
एवमुक्ते ततः प्राहाचार्य्यः शृणु वचो मम ।
मिश्रः पुरन्दरसुतः श्रीविश्वम्भरपण्डितः ॥२६॥

आचार्य्य के कथन को सुनकर आनन्दित चित्त से आदेश को अभिनन्दित किया, एवं कहा, हे ईश्वरि ! मैं आपके आदेश को सतत मस्तक में स्थापन कर पालन करूँगा ॥२२॥

इस प्रकार कहते हुये आचार्य्य मिश्र सत्तम वल्लभ के निवास स्थान को चले गये, एवं उक्त वृत्तान्त को निवेदन किये, आचार्य्यने सम्भ्रम से सत्वर उठकर उनका स्वागत किया, एवं यथाविधि आसन प्रदान कर मधुर सम्भाषण पूर्वक उपवेशन कराया । अनन्तर मिश्रने विनय पूर्वक वनमाली द्विजोत्तम को कहा ॥२३-२४॥

मदीय भवन में अनुग्रहनिबन्धन ही आपका शुभगमन हुआ है, अथवा अपर किञ्चित् कार्य्य भी है ? उस विषय में आप आज्ञा करें ॥२५॥

आचार्य्य वल्लभ की वाणी को सुनकर श्रीवनमाली आचार्यने कहा—मेरा निवेदन आप श्रवण करें, मिश्रपुरन्दरपुत्र श्रीमान् विश्वम्भर पण्डित हैं, आपकी कन्या का समुचित बर वह ही हैं, निखिल

स एव तव कन्याया योग्यः सद्गुणसंश्रयः ।
पतिस्तेन वदाम्यद्य देहि तस्मै सुतां शुभाम् ॥२७॥
तत् श्रुत्वा वचनं तस्य मिश्रः कार्य्यं विचार्य्य च ।
उवाच श्रूयतां भाग्यवशादेतद्भविष्यति ॥२८॥
मया धनविहीनेन किञ्चिद्दातुं न शक्यते ।
कन्यकैव प्रदातव्या तत्राज्ञां कर्त्तुमर्हसि ॥२९॥
यदि वा मे हरिः प्रीतो भगवान् दुहितुर्भवेत् ।
तदैव मे संभवति जामाता पण्डितोत्तमः ॥३०॥
रत्नेन मुक्तासंयोगो गुणेनैव यथा भवेत् ।
तथा भवद्गुणेनैवानयोर्योगो भविष्यति ॥३१॥

सद्गुणालङ्कृत होने के कारण वह ही आप की कन्या का अत्युत्तम पति के योग्य हैं, अतः मैं सम्प्रति निवेदन कर रहा हूँ, आप उनको कन्या सम्प्रदान हेतु मनस्थ करें ॥२६-२७॥

प्रस्ताव को सुनकर मिश्रने करणीय विषय में विचार किया, एवं बोला, श्रवण करें, इस प्रकार सम्बन्ध का सुयोग, भाग्यवश से ही होता है ॥२८॥

किन्तु मैं धनविहीन हूँ, कुछ भी यौतुक प्रदान करने में मैं सक्षम नहीं हूँ, केवल कन्या का सम्प्रदान ही मैं कर सकता हूँ, इस विषय में आप की अभिरुचि जैसी हो आप आदेश करें ॥२९॥

यदि श्रीहरि, मेरे प्रति एवं मेरी कन्या के प्रति सन्तुष्ट हैं, तब ही पण्डितोत्तम जामाता मेरा होगा ॥३०॥

रत्न के सहित मुक्ता संयोग जिस प्रकार गुण से ही होता है, उस प्रकार आपके गुण से ही उनदोनों का योग्य संयोग निष्पन्न होगा ॥३१॥

इत्युक्ते परमप्रीत आचार्य्यः प्राह सादरम् ।
भवद्विनयवात्सल्यात् सर्वं सम्पद्यते शुभम् ॥३२॥
इत्युक्त्वा पुनरागम्य सर्वं शच्यै न्यवेदयत् ।
आचार्य्यो गौरचन्द्रस्य विवाहानन्दनिर्वृतः ॥३३॥
एतत्सर्वं संविदित्वा सुतं प्रोवाच सा शची ।
समयोऽयं कुरुष्वात्र तात वैवाहिकं विधिम् ॥३४॥
तत् श्रुत्वा वचनं मातुर्विमृष्य मनसा हरिः ।
आज्ञां तस्याः पुरस्कृत्य द्रव्यानाशु समाहरत् ॥३५॥
ततो वैवाहिके काले मङ्गले सद्गुणाश्रये ।
सर्वेषामेव शुभदे मृदङ्गपणवाहते ॥३६॥
भूदेवगणसंङ्घस्य वेदध्वनिनिनादिते ।
दीपमालापताकाद्यैरलङ्कृतदिगन्तरे ॥३७॥

आचार्य्यवल्लभ के वचन से परम प्रीत होकर आचार्य्य वनमाली ने आदर पूर्वक कहा, आप के बिनय वात्सल्य से समस्त शुभकार्य्य सत्वर सुसम्पन्न होगा ॥३२॥

इस प्रकार कहकर आचार्य्य वनमाली पुनर्बार श्रीशची के निकट प्रत्यागमन पूर्वक समस्त वृत्तान्त निवेदन कर गौरचन्द्र के विवाहानन्द प्रसङ्ग से विभोर हो गये ॥३३॥

यह सब सुनकर शची पुत्र को बोली, हे तात ! वैवाहिक विधि के निमित्त समय का निर्णय करो ॥३४॥

माता के आदेश प्राप्त कर श्रीहरिने विचार पूर्वक आज्ञानुसार वैवाहिक कृत्योपयोगी द्रव्य समूह संघटन किया ॥३५॥

अनन्तर सर्व सद्गुणालङ्कृत शुभद मृदङ्गादिवाद्य यन्त्र निनादित मङ्गलमय मुहूर्त्त उपस्थित हुआ, भूदेववृन्द की वेदध्वनि से परिणय वासर मुखरित हुआ, दीप माला, पताका प्रभृति के द्वारा

देवदार्वगुरूशीरचन्दनादि प्रधूपिते ।
अधिवासं हरेश्चक्रे विवाहं द्विजसत्तमाः । ३८॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
श्रीलक्ष्म्युद्वाहेऽधिवासप्रसङ्गो नाम
नवमः सर्गः

समस्तदिक् सुशोभित हुआ, एवं देवदारु अगुरु उशीर चन्दन प्रभृति के सुगन्धित धुप से उक्त स्थल आमोदित होने पर द्विज सत्तमवृन्द, श्रीहरि के शुभ परिणयोत्सव का अधिवासअनुष्ठान प्रारम्भ किये थे ॥३६-३७-३८॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृतेमहाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
श्रीलक्ष्म्युद्वाहेऽधिवासप्रसङ्गो नाम
नवमः सर्गः

दशमः सर्गः

ततो द्विजेभ्यः प्रददौ मुहुर्मुहुः
पूगानि माल्यानि च गन्धवन्ति ।
सचन्दनं गन्धमनन्यसौरभं
जनाश्च सर्वे जहृषुर्जगुर्मुदा ॥१॥

स वल्लभोऽभ्येत्य सुमङ्गलैर्द्विजै-
र्नरैश्च भूदेवपतिव्रतादिभिः ।
जामातरं गन्धसुगन्धिमाल्यैः
शुभाधिवासं विदधे समच्चर्य तम् ॥२॥

अथ प्रभाते विमलेऽरुणेऽर्के
स्वयं कृतस्नानविधिर्यथावत् ।
हरिः समभ्यच्चर्य पितॄन् सुरादीन्
नान्दीमुखश्राद्धमथाऽकरोद्द्विजैः ॥३॥

अनन्तर द्विजवृन्द को पुनः पुनः सुगन्ध माल्य चन्दन गुवाक् प्रभृति प्रदान किया, उससे समस्त जनगण आनन्दित चित्त से साधुवाद करने लगे ॥१॥

पश्चात् श्रीवल्लभाचार्य्य, भव्य ब्राह्मणवृन्द के सहित आगमन पूर्वक ब्राह्मणोचितमाङ्गलिककर्माचरण किये थे, एवं जामाता को सुगन्धिमाल्य चन्दन के द्वारा विभूषित कर शुभाधिवास किये थे ॥२॥

अनन्तर प्रभात कालीन विमलदिनकर अरुणिमा मण्डित होने से यथाविधि श्रीहरिने स्नान किया, एवं पितृ देवता प्रभृति की समर्च्चना करके द्विजवृन्दों के द्वारा नान्दीमुख श्राद्ध का अनुष्ठान किया ॥३॥

ततो द्विजानां यजुषां सुनिस्वनै-
मृंदङ्गभेरी पटहादिनादितैः ।
बराङ्गनावक्त्रसरोजमङ्गलो-
ज्ज्वलस्वनैरावबृधे महोत्सवः ॥४॥
शची सुसंपूज्य कुलस्त्रियं मुदा
तत्रागतान् बन्धुजनांश्च सर्वशः ।
उवाच किं भर्त्तृविहीनया मया
कर्त्तव्य एवात्र भवद्विधैः स्वयम् ॥५॥
स्वमातुरित्थं करुणान्वितं वचो
निशम्य तातं परितप्तचित्तः ।
मुक्ताफलस्थूलतराश्रुविन्दून्
उवाच वक्षःस्थलहारविभ्रमान् ॥६॥
निरीक्ष्य पुत्रं करुणान्वितं शची
सुविस्मिता प्राह पतिव्रताभिः ।

पश्चात् द्विजवृन्दों के सुस्वर वेदध्वनि के सहित मृदङ्ग भेरी पटह प्रभृतिके निनाद एवं वराङ्गनावक्त्र सरोज से विनिःसृत माङ्गलिक निःस्वनके द्वारा वैवाहिक महोत्सव सुशोभित हुआ ॥४॥

शचीने स्वानन्द चित्त से कुलोस्त्रियों की अर्चना की, एवं वैवाहिक महोत्सव में समागत बन्धुवर्ग को सम्मानित किया, एवं निवेदन किया,—मैं असौभाग्यवती हूँ, अतएव आपसब स्वयं ही माङ्गलिक वैवाहिक कृत्य को सुसम्पन्न करें ॥५॥

माता की सकरुण वाणी को सुनकर पुत्र का हृदय विगलित होगया, जनक का स्मरण कर चित्त परितप्त हुआ, एवं स्थूलमुक्ताफल सदृश स्वच्छ अश्रुविन्दु से वक्षःस्थल मुक्तामाला की भाँति सुशोभित होगया ॥६॥

पितः कथं मङ्गलकर्मणि स्वय-
ममङ्गलं वारि विमुञ्चसे दृशोः ॥७॥
स मातुरित्थं वचनं निपीय
पितृस्मृतिश्वासमलीमसाननः ।
मातुः समीपं प्रतिवाचमाददे
नवीनगम्भीरघनस्वनं यथा ॥८॥
धनानि वा मे मनुजाश्च मात-
र्न सन्ति किं येन वचः समीरितम् ।
त्वयाद्य दीनेन पराश्रयं यतः
पिता ममादर्शनतामगादिति ॥९॥
त्वयैव दृष्टा द्विजसज्जनेभ्यः
सुपूगपूर्णानि च भाजनानि ।
वारत्रयं दातुमनन्यसारं
सर्वाङ्गसंलेपनयोग्यगन्धम् ॥१०॥

सुविस्मिता शची पुत्र को करुणाविगलितान्तःकरण से उपस्थित देखकर पतिव्रता सीमन्तिनी गणों के सहित बोली, हे तात ! मङ्गल कर्म में अमङ्गल स्वरूप निज नयन नीर वर्जन क्यों करते हो ? ७॥

जननी के वचन को सुनकर पितृस्मृति उद्दीप्त होने से सुदीर्घश्वासने मुखमण्डल को कालिमावृत करदिया, कियत् क्षणानन्तर आपने नवीन गम्भीर घन निस्वन के द्वारा माता के समीप में निवेदन किया ॥८॥

मा ! धन एवं जनशून्य मुझ को देखकर ही आपने उस प्रकार कहा, पिता का अदर्शन होने से आज क्या दीन के समान पराधीनता का अनुभव कर रही हैं ? ९॥

आपने ही देखा, द्विजप्रभृति सज्जनवृन्द को उत्तम पूगपूर्ण पात्र

अन्येषु योग्येषु च सुव्ययो यत्
तत्त्वं विजानासि यथा यथेष्टम् ।
अमर्त्त्यकार्य्येषु ममास्ति शक्ति-
स्तथापि लोकाचरितं करोमि ॥११॥
पित्रा विहीनोऽहमगाधशक्ति-
स्तथापि मातुर्वचसा दुनोमि ।
इतीरितं तस्य निशम्य माता
तं शान्तयित्वा मधुरैर्वचोभिः ॥१२॥
प्रसाधनैरंशुकरत्नयुग्मै-
र्विभूषयामासुरनर्घचमाल्यैः ।
श्रीगौरचन्द्रं जगदेकबन्धुं
स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरं स्मयेन ॥१३॥
सचन्दनैरागुरुसारगन्धैः
समालिपत् पुत्रमदीनश्रद्धा ।

समूह का प्रदान तीन तीनबार किया गया है, एवं सर्वाङ्ग लेपनयोग्य गन्धद्रव्य का प्रदान भी हुआ है ॥१०॥

अपर कार्य्य समूह सम्पादन के निमित्त यथेष्ट सामग्री विद्यमान है, लोकोत्तर कार्य्य करने की शक्ति होनेपर भी मैं लोकाचार का ही अनुसरण करता हूँ ॥११॥

मैं सामर्थ्य समन्वित हूँ, तथापि पितृविहीन हूँ, इस प्रकार माताका कथन मुझको दुःखी बनाता है। बालक का कथन को सुन कर माताने बालक को मधुर वचनों से सान्त्वना प्रदान किया ॥१२॥

एवं उत्तम वसन भूषण प्रसाधन माल्य प्रभृति के द्वारा जगदेक बन्धु श्रीगौरचन्द्र को विभूषित किया ॥१३॥

परमोदार माताने चन्दन अगुरु प्रभृति गन्धसार के द्वारा

तदा कुमाराः पृथिवीसुराणां
समागतानां पुरुषर्षभं शुभे ॥१४॥
तस्मिन् क्षणेव वल्लभमिश्रवर्य्यः
कार्य्यं पितॄणामथ देवतानाम् ।
समाप्य कन्यां वरहेमगौरीं
विभूषितामाभरणैः स चक्रे ॥१५॥
ततो द्विजानानयने वरेण्यान्
वरस्य संप्रेषितवान् समेत्य ।
ऊचुश्च ते मङ्गलपूर्वमाशु
शुभाय यात्रां कुरु सामघोषैः ॥१६॥
स्वयं हरिर्विप्रवरस्य सज्जनै-
र्मनुष्ययानैर्जयनिस्वनैर्ययौ ।
प्रदीप्तदीपावलिभिर्निकेतनं
मिश्रस्य हेमं शिखरं शिवो यथा ॥१७॥

बालक के अङ्गमें अनुलेपन किया, उस समय समागत ब्राह्मण बालकों को भी तदुचित सम्मानित किया॥१४॥

उस समय श्रीवल्लभमिश्रबर्य्यने भी पितृदेवाराधन के अनन्तर निज हेमगौरी कन्या को विविध आभरण के द्वारा विभूषित किया॥१५॥

उसके बाद बर को समानयन करने के निमित्त वरेण्य द्विजवृन्द को एकत्र कर प्रेरणा किया, आप सबने वेदमन्त्र पाठ पूर्वक यात्रा कार्य्य को अनुमोदन किया ॥१६॥

स्वयं श्रीहरि, विप्रबर एवं सज्जनवृन्द के सहित मनुष्ययान में आरोहण कर जय जय ध्वनि के द्वारा महादेव के समान दीपावली परिशोभित शिखरोपम मिश्र निकेतन के अभिमुख में यात्रा प्रारम्भ किये थे ॥१७॥

ततोऽभिगम्याश्रममात्मनो नयन्
मिश्रः स्वयं तं वरयाम्बभूव ।
पाद्यार्घदिना गन्धवरांशुमाल्यै-
र्धूपैस्तथैवागुरुसारयुक्तैः ॥१८॥

बभौ वरः पूर्णनिशाकरप्रभो
जितस्मरस्मेरमुखेन रोचिषा ।
प्रतप्तचामीकररोचिषा लसत्-
सुमेरुशुद्धोज्ज्वलदेहयष्टिः ॥१९॥

करद्वयेनाङ्गदकङ्कणाङ्गुरी-
विराजितेनाब्जतलाभिशोभिना ।
अनल्पकल्पद्रुममाशु चक्रे
लताश्रितानामभिलाषदो हरिः ॥२०॥

सुतां समानीय निशाकरप्रभां
प्रभाविनिध्वस्ततमःसमग्राम् ।

अनन्तर श्रीहरि, परिजन वृन्दों के सहित मिश्रभवन में उपस्थित होने पर मिश्रने उनको स्वयं बरण किया, एवं पाद्य अर्घ्य सद्गन्ध माल्य धूप दीप प्रभृति के द्वारा यथोचित सम्मान प्रदर्शन किया ।।१८।।

पूर्ण शशधर के समान प्रभु शोभित हुये थे, तप्तसुवर्ण विनिन्दित अङ्गकान्ति के द्वारा सुमेरु के समान शुद्ध उज्ज्वल देह सुशोभित हुआ । आप स्मित प्रसन्न वदनसे विराजित थे ।।१९।।

श्रीहरि के करद्वय में अङ्गद कङ्कन अङ्गुरी प्रभृति से सुशोभित थे, एवं अनल्प कल्पवृक्षसमूह जिस प्रकार वल्ली समूहको आश्रय देकर शोभित होते हैं, तद्वत् श्रीहरि भी आश्रित गणों के अभिलाषप्रद होगये ।।२०।।

स्वीय कान्ति के द्वारा तमोराशि को विदूरित कर सुशोभित

स्वलङ्कृतां साधुददौ जगद्गुरोः
पादे विरेजेऽथ तयोरभिक्षा ॥२१॥
तयोर्मुखेन्दुः समरोज्ज्वलश्रिया
सरोहिणीचन्द्रसमः सुशोभाम् ।
पुपोषतुः पुष्पचयैरसिञ्चतां
परस्परं तौ हरपार्वतीव ॥२२॥
अथोपविष्टे कमलाधिनाथे
लक्ष्मीश्च तत्रोपविवेश ह्रीयुता ।
पुरस्ततोऽभ्येत्य शुचिः समाविश-
द्दातुं स कन्यां विधिना विधानवित् ॥२३॥
यस्यांघ्रिपद्मे विनिवेद्य पाद्यं
प्रजापतिः प्राप जगत्सिसृक्षाम् ।
तत्रैव पाद्यं विदधे स वल्लभो
नखद्युतिध्वस्ततमःसमूहे ॥२४॥

चन्द्र के समान कान्ति समुज्ज्वल अलङ्कृत कन्या को लाकर श्रीजगद्गुरु के श्रीचरणों में मिश्र ने उत्तम रूप से समर्पण कर दिया, उससे उभय की अतीव अभिक्षा हुई ॥२१॥

उभय के मुखेन्दु की कान्तिने रोहिणी संयुक्त चन्द्रमा की कान्ति को पराजित कर दिया, प्रियवर्ग के पुष्पवर्षण से सुमण्डित होकर बरबधू—हरपार्वती के समान शोभित हुये ॥२२॥

अनन्तर कमलाके सहित कमलाधिनाथ बरासन में लज्जान्वित होकर सुखोपविष्ट होनेपर विधानवित् मिश्र हर्षाप्लुत चित्त से विधि पूर्वक कन्या सम्प्रदान हेतु आयोजन किये थे ॥२३॥

जिन के पादपद्म में पाद्य प्रदान कर प्रजापति ने जगत्सृजन करने की शक्ति प्राप्त की, नखर द्युति के द्वारा तमोराशि—विनाशक उन चरण कमलों में मिश्रने पाद्य अर्पण किया ॥२४॥

यस्मै महेन्द्रोऽधिनृपासनं ददौ
सरत्नसिंहासनकम्बलावृतम् ।
तस्मै स कौशेयसुविष्टरासनं
ददौ निपीतं बरपीतवाससे ॥२५॥
क्रमेण सोऽर्घ्यादिकमेव कर्म-
विधानतो हर्षतनूरुहोद्गमैः ।
कृत्वा कृतज्ञः प्रददौ हरेः करे
कन्यां समुत्सृज्य सरोजलोचनाम् ॥२६॥
ततो निवृत्तेऽतिमहोत्सवे शुभे
लक्ष्मीं समादाय निजां पुरीं ययौ ।
विश्वम्भरो विश्वभरार्त्तिहा विभू-
र्मनुष्ययानैर्मनुजाभिनन्दितः ॥२७॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
वैवाहिको नाम दशमः सर्गः

जिनको महेन्द्र ने सरत्न सिंहासन प्रदान किया था, उन पीताम्बर विभूषित श्रीहरि को मिश्रने मनोरम कौशेय आसन प्रदान किया ॥२५॥

क्रमपूर्वक अर्घ्य प्रभृति प्रदान पूर्वक हर्षपुलक मण्डित मिश्रने सरोजलोचना कन्यादान श्रीहरि करकमलों में किया ॥२६॥

अनन्तर शुभ परिणय महामहोत्सव यथाविधि सुसम्पन्न होने पर विश्वार्त्ति विदूरितकारी विभु विश्वम्भर—मनुष्यवृन्दों के द्वारा अभिनन्दित होकर मनुष्यवाहितयान से लक्ष्मी समन्वित होकर निज भवन के ओर प्रस्थान किये थे ॥२७॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्येप्रथमप्रक्रमे
वैवाहिको नाम दशमः सर्गः

एकादशः सर्गः

ततः शची द्विजस्त्रीभिः कृत्वा सुमहदुत्सवम् ।
स्नुषां प्रवेशयामास निजगेहे सभर्त्तृकाम् ॥१॥
ब्राह्मणेभ्यो ददावन्नं गन्धं माल्यं सभक्तितः ।
अन्येभ्यः शिल्पिमुख्येभ्यो नटेभ्यः प्रददौ धनम् ॥२॥
ततो वसन् शुभे गेहे सकुटुम्बः सुखी प्रभुः ।
रराज नभसि स्वच्छे नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥३॥
लक्ष्मीनारायणदृष्टिमात्रे सर्वशुभानि हि ।
आजग्मुः श्रीशचीगेहे स्वभाग्यख्यापनाय च ॥४॥
ततो गृहाश्रमे स्थित्वा धनार्थं प्रययौ दिशि ।
पूर्वस्यां सज्जनैः सार्द्धं देशान् कुर्वन् सुनिर्म्मलान् ॥५॥

एकादशः सर्गः

अनन्तर शचीदेवीने महिला वर्ग के सहित तत्कालोचित सुमहोत्सव किया, एवं बरबधु का गृहप्रवेश करवाया ॥१॥

भक्ति पूर्वक ब्राह्मणवृन्द को गन्ध माल्य मिष्टान्न प्रभृति प्रदान किया, एवं शिल्पनट प्रभृति को धनदान किया ॥२॥

स्वच्छ गगनमें नक्षत्रनिकर के सहित चन्द्रमा के समान प्रभु कुटुम्बगणों के सहित सानन्द से निवास किये थे ॥३॥

श्रीलक्ष्मीनारायण की दृष्टिमात्र से ही समस्त सौभाग्य उपस्थित हुये थे, प्रतीत होता था कि–सौभाग्य समूह निज सौभाग्य ख्यापन के निमित्त ही श्रीशचीगृहमें आये थे ॥४॥

गृहस्थाश्रम में कियत्काल अवस्थानानन्तर श्रीप्रभु पूर्वदेश को

यं यं देशं ययौ जिष्णुराकापतिनिभाननः ।
तत्र तत्रैव तत्रस्था जना दृष्ट्वा मुदान्विताः ॥६॥
पश्यन्तो वदनं तस्या तृप्तिवारिधिपारगाः ।
न बभूवुः स्त्रियश्चोचुः कस्यायं शुद्धदर्शनः ॥७॥
मात्रास्य केन पुण्येन धृतो गर्भे नरोत्तमः ।
असौ विजितकन्दर्पो दृष्टपूर्वो न हि क्वचित् ॥८॥
पत्नीत्वमस्य प्राप्ता का चिराराधितशङ्करा ।
असौ नारायणः सैव लक्ष्मीरेव न संशयः ॥९॥
एवं बहुविधां वाचां श्रुत्वा तत्र जनेरिताम् ।
आकर्ण्यार्द्रदृशा तेषां प्रीतिं तन्वन् ययौ हरिः ॥१०॥

अलङ्कृत करने के निमित्त स्वजनवृन्द के सहित यात्रा किये थे ॥५॥

चन्द्रानन श्रीप्रभु जिस जिस देश को यात्रा के च्छल से अलङ्कृत कर गमन करते थे, उस उस देश के जनगण आनन्दित होकर अतृप्त नयनों से श्रीप्रभु के वदनकमल को देखते थे, एवंस्त्रीगण कहती थीं, शुभदर्शन पुरुषका आविर्भाव किस सौभाग्यवती के पुण्य से हुआ है ॥६-७॥

नरश्रेष्ठ को माता ने किस पुण्य से गर्भमें धारण किया, यह निज रूपशशी से कन्दर्प को भी पराजित कर रहा है, इस रूपलावण्य परिपूरित व्यक्ति का दर्शन कदापि किसीने नहीं किया है ॥८॥

चिरदिन शङ्कराराधन के द्वारा किस कन्याने इनको पतिरूपमें प्राप्त करने का सौभाग्य को प्राप्त किया है, निश्चय ही वह कन्या लक्ष्मी स्वरूपिणी है, कारण यह व्यक्ति साक्षात् नारायण हैं, इसमें संशय नहीं ॥९॥

तत्रत्य जनगण के प्रमुख से बहुविध आलाप को सुनकर एवं प्रसन्नदृष्टि से उनसब को प्रीति मण्डित कर श्रीहरि वहाँ से प्रस्थान किये थे ॥१०॥

पद्मावतीनदीतीरे गत्वा स्नात्वा यथाविधि ।
तत्रावसत् साधुजनैः पूजितः श्रद्धयान्वितैः ॥११॥
गङ्गातुल्या पावनी सा बभूव सुमहानदी ।
पद्मावती महावेगा महापुलिनसंयुता ॥१२॥
कुम्भीरैर्मकरैर्मीनैर्विद्युचद्भिरिव चञ्चलैः ।
शोभिता सज्जनावासविराजितमहत्तटा ॥१३॥
विश्वम्भरस्नानधौतजलौघाघहरा शुभा ।
महातीर्थतमा साभूत्तत्तीरे निवसन् हरिः ॥१४॥
महात्मनां सुपुण्यानां कुर्वन्नयनयोः सुखम् ।
मुमोद मधुहातीव साधुदर्शनलालसः ॥१५॥
दयालुरनयत् स्वामी मासान् कतिपयान् विभुः ।
पाठयन् ब्राह्मणान् सर्वान् विद्यारसकुतूहली ॥१६॥

यात्रारत श्रीप्रभु पद्मावती नदीतीर में उपस्थित होकर यथाविधि स्नानादि करतः श्रद्धान्वित सज्जनवृन्द के सहित वहाँपर निवास करने लगे ॥११॥

उससे पद्मावती नदी श्रीगङ्गा के समान पवित्रा हो गई, सुमहानदी पद्मावती महावेगवती महापुलिन संयुता रही एवं कुम्भीर मकर मीन प्रभृति के द्वारा परिपूर्णा रही, उसके विस्तृत तट सज्जन वृन्द के वास से सुशोभित रहा ॥१२-१३॥

विश्वम्भर के स्नान से वह नदी सर्वपाप प्रणाशिनी महातीर्थ रूपमें परिणता हुई ॥१४॥

उसके तीरदेश में निवास कर श्रीहरि, सुकृति सम्पन्न महात्मा द्वय के नयनानन्द भाजन हुये थे एवं जनगण अतीव आनन्द से उनको निरीक्षण कर सुखी होते थे ॥१५॥

दयालु समर्थ विभुने कतिपय मास वहाँपर अतिवाहित किया,

अथ लक्ष्मी र्महाभागा पतिप्राणा धृतव्रता ।
शच्याः शुश्रूषणं चक्रे पादसम्वाहनादिभिः ॥१७॥
देवतानां गृहे लेपमार्ज्जनस्वस्तिकादिकम् ।
धूपदीपादिनैवेद्यं माल्यं प्रादात् सुसंस्कृतम् ॥१८॥
तस्याः सा सेवया वाण्या सौशील्येन च कर्म्मणा ।
अतीव सुचिरं प्रीता शची पूर्त्तिममन्यत ॥१९॥
बधूं सुतस्यान्यतमां स्नेहोद्गततनूरुहा ।
कन्यामिव स्नेहवशाल्लालयन्ती स्वपुत्रवत् ॥२०॥
एवं स्थिता गृहे काले दैवादागत्य कुण्डली ।
अदशत् पादमूले तां लक्ष्मीमालक्ष्य सा शची ॥२१॥

एवं ब्राह्मणवृन्द को शास्त्राध्ययनसे सुखी करके विद्यारस कौतूहल को चरितार्थ किया ॥१६॥

पतिप्राणा पतिव्रता धृतव्रता महाभागा लक्ष्मीदेवी भी पादसम्वाहन प्रभृति मनोज्ञ आचरण के द्वारा शचीदेवी की परिचर्य्या में रत रही ॥१७॥

एवं देवगृह मार्जन, लेपन, स्वस्तिक निर्म्माण, धूपदीप नैवेद्य माल्य निर्माण कार्य्य सम्पादन भी करती रही ॥१८॥

लक्ष्मीदेवी के सौशील्य, सेवा, मधुर भाषण प्रभृति आचरण से शचीदेवी का अन्तःकरण प्रीति पूर्ण हुआ ॥१९॥

शचीदेवी, स्नुषा को देखकर पुलकाञ्चित हो ही जाती थीं, एवं निजकन्या के समान स्नेह से उसका पालनपोषण करती थीं॥२०॥

कियद्दिवसानन्तर दैवयोग से एकदिन कुण्डली ने बधू के चरणतल में दंशन किया, मा शची लक्ष्मी को तादृशी अवस्था में देखकर महाभीति युक्ता हो गई, सत्वर उन्होंने विष वैद्य के निकट

व्यजिज्ञपत् महाभीतियुक्ता जाङ्गलिकान् स्नुषाम् ।
समानीयाकरोद्यत्नं तद्विषस्य प्रमार्ज्जने ॥२२॥
शची मन्त्रैर्बहुविधैर्नाभूत्तद्विषमार्ज्जनम् ।
ततः कालकृतं मत्वा समानीय प्रयत्नतः ॥२३॥
जह्नुकन्यापयोमध्ये तुलसीदामभूषिताम् ।
कृत्वा बधूं सह स्त्रीभिश्चकार हरिकीर्त्तनम् ॥२४॥
आयाते विमले व्योम्नि गन्धर्वरथसङ्कुले ।
ब्रह्मादिभिर्योगसिद्धैर्गीयमाने सुमङ्गले ॥२५॥
महालक्ष्मी जगन्माता गन्तुं स्वप्रभुसन्निधौ ।
स्मृत्वा कृष्णपदाम्भोजं स्वर्नद्यां देहमत्यजत् ॥२६॥
ततो जगाम निलयं आत्मनश्च सुशोभनम् ।
इन्द्रादिभिरगम्यञ्च सर्वमङ्गलरूपकम् ॥२७॥

संवाद प्रेरण किया, एवं स्नुषा का विषापनोदन के निमित्त प्रयत्न किया ॥२१-२२॥

बहुविध मन्त्र तन्त्र द्रव्यादि प्रयोग से भी जब विषापनोदन नहीं हुआ तब उसे कालकृत ही है, यह उन्होंने माना ॥२३॥

तदनन्तर पुत्रबधू को तुलसी दाम से विभूषित करके श्रीहरि सङ्कीर्त्तन परायण सीमन्तिनीवृन्द के सहित गङ्गातीर में उपस्थित किया ॥२४॥

उस समय सुमङ्गल श्रीहरि कीर्त्तन होने लगा, देववृन्द गन्धर्व गणों के सहित गगन मण्डल में शोभित हुये, ब्रह्मादि देवगण सिद्धसमूह के सहित सुमङ्गल वेदध्वनि करने लगे ॥२५॥

जगन्माता महालक्ष्मी ने भी निज प्रभु सन्निधि को प्राप्त करने के निमित्त श्रीकृष्णचरण युगल का ध्यान कर स्वर्नदी में निज देह त्याग किया ॥२६॥

लक्ष्मीपरमया युक्ता लक्ष्मीर्लोकनमस्कृतम् ॥२८॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
श्रीलक्ष्मीविजयोत्सवो नाम
एकादशः सर्गः

अनन्तर इन्द्रादि देववृन्द का अगम्य सर्वमङ्गलरूप सुशोभन सर्वलोक नमस्कृत परमधाम में श्रीलक्ष्मी का प्रवेश हुआ ॥२७-२८॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृतेमहाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
श्रीलक्ष्मी विजयोत्सवो नाम
एकादशः सर्गः

द्वादशः सर्गः

अथ तां विललाप दुःखिता
स्वबधूं धर्म्मपरायणां शची ।
विगलन्नयनाम्बुधारया
स्तनयोः क्षालनमेव साकरोत् ॥१॥

अवदद्भुजगाधम त्वया
किमिदं कर्म्म दुरात्मना कृतम् ।
विकटैर्दंशनैः कथं न मा-
मदशस्त्वं हि विहाय मे स्नुषाम् ॥२॥

विनियुज्य बधूं निषेवने
मम पुत्रो गतवान् सुधार्मिकः ।
धनधान्यसमार्ज्जनाय मे
ह्यन्तेवासिजनैः सुसम्वृतः ॥३॥

अनन्तर शची दुःखिता होकर धर्मपरायणा बधू-वियोग से विलाप करने लगीं, एवं नयनाम्बुधारा से वक्षस्थल को आप्लावित करने लगीं ॥१॥

उन्होंने कही, हे भुजगाधम ! तुमने यह कया दौरात्म्यपूर्ण कार्य्य किया, मुझको छोड़कर मेरी स्नुषा को निज विकटदशन के द्वारा दंशन किया ॥२॥

मेरा सुधार्मिक पुत्र, मेरी परिचर्य्या के निमित्त बधू को विनियोग कर अन्तेवासिजननिकर के सहित धनोपार्ज्जन हेतु विदेश गमन किया है ॥३॥

तदिदं वदनं कथं स्नुषा-
परिहीना तनयस्य पश्यतु ।
इति विलप्य भृशं शुचाकुला
कुलवतीमपहाय समादिशत् ॥४॥
कुरु निजं कुलयोग्यसुसत्क्रिया-
मकरोत् स्वस्वजनस्त्वनन्तरम् ।
निजगृहं समगात् परिदेव-
लोलनयनयोः परिमुच्य जलं धनम् ॥५॥
स्वजनबन्धुभिराशु विरोदिता
स्थितवती सुखितेव चिरं शची ।
स्वस्य पुत्रवदनं स्मरती सा
कृष्णनामपरिपूर्णमुखासीत् ॥६॥
अथ कियद्दिवसात् परिहर्षितः
परमसाधुरेव निवेदितम् ।

पुत्र, स्नुषापरित्यक्त मेरा दर्शन कैसे करेगा ? इस प्रकार शोकाकुलित चित्त से अनेक समय पर्य्यन्त अतिशय विलाप करने के बाद पुत्रबधू की अन्त्येष्टि क्रिया को सम्पन्न करने के निमित्त स्वजन गण को शची ने आदेश किया ॥४॥

तुम सब निजकुलोचित सुसत्क्रिया का आयोजन करो; कहकर शचीदेवी घर में आकर नयनवारि विसर्जन कर रोदन करने लगीं ॥५॥

उनके रोदन से अभिभूत होकर परिजनवर्ग एकत्र होकर रोदन करने लगे थे, अनन्तर आप्तवर्ग की सान्त्वना से शची सुस्थिता होकर पुत्रवदन का स्मरण कर श्रीकृष्णनाम परायणा हो गईं ॥

कियत्कालानन्तर परमेश्वर पुत्र का आगमन रजत काञ्चन

रजतकाञ्चनचेलसमन्वितं
समनयत् स्वगृहं परमेश्वरः ॥७॥

अथ निरीक्ष्य शची सुतमागतं
सपदि पूर्णनिशाकरसम्प्रभम् ।
न मनसातितुतोष बहुव्यथां
हृदि वहन्त्यगमत् स्नुषयार्पिताम् ॥८॥

अथ निरीक्ष्य शचीं कमलेक्षणः
परिनिपत्य पदोः पदरेणुकम् ।
शिरसि संविदधे जननीमुखं
विमलिनं स निरीक्ष्य सुविस्मितः ॥९॥

स्मितसुधोक्षितया च गिरानघो
यदधिलब्धधनं सुसमर्पयन् ।
समवदद्वद मातरलं मुखं
विरसमेव तवाद्य कथं स्नुषा ॥१०॥

वस्त्रादि समन्वित होकर हुआ, पुत्रने हर्षसे मातृ चरणों में स्वोपार्जित सामग्रीयों को अर्पण किया ॥७॥

पूर्णसुधाकर सदृश पुत्रवदन को देखकर शची का मनः परम सन्तोषपूर्ण तो हुआ, किन्तु बधू के वियोग जनित दुःख भी उनके हृदय को उद्‌वेलित किया ॥८॥

कमलनयन प्रभु ने मातृ मुख का निरीक्षण कर श्रीचरणों में प्रणाम किया, अनन्तर श्रीचरणरेणु से मस्तक को विभूषित कर विषण्णवदना माता को देखकर आश्चर्य्यान्वित आप हो गये ॥९॥

सौम्यवदन प्रभु ने स्मित मुद्रा से सुधाविनिन्दित वचनों से माता को कुशलप्रश्न करने के बाद–समानीत सामग्रीसमूह का अर्पण

इति सुधावचसा मुदिता शची
बरबधूस्मृतिसन्नगिरावदत् ।
सकलमेव बधूकथनं हृदा
परिगलन्नयनाम्बुजविन्दुभिः ॥११॥

आशुचार्द्रदृशापि चाम्बिका
शोकहर्षपरिपूरितदेहः ।
इति निशम्य वचो मधुसूदनः
समवदत् करुणार्द्रदृशाम्बिकाम् ॥१२॥

आत्मगोपनबलैर्वचनैस्तद्
गोपयन् हि सकलं जगदीशः ।
श्रृणु यथेयमवातरदप्सरा
सुरबधूः पृथिवीमनु साम्प्रतम् ॥१३॥

किया, एवं कहा– मा ! आप मलिन वदन में क्यों हैं, पुत्रबधू का कुशल तो है ? १०॥

उस प्रकार सुधाविनिन्दित वचनों से शची आप्यायित होकर आनन्दिता तो हुई, किन्तु सहसा बधूवियोग स्मृति ने उनको अभिभूत कर दिया, एवं नयनयुगल अश्रुबारि से परिपूर्ण हो गये ॥११॥

जननी की अवस्था को देखकर एवं करुणा परिपूरित वाणी की सुनकर प्रभु का हृदय द्रवित हो गया, करुणाद्रनयनों से शोभित होकर आप जननी को कहने लगे ॥१२॥

शोकोद्वेलित हृदय को निजधैर्य्य से सुसंयत कर प्रभु ने कहा, मा ! सुनो, स्नुषा-स्वर्गीय अप्सरा अवतीर्ण हुई थी, वह सुरबधू सम्प्रति पृथिवी को छोड़कर निजधाम को चली गई ॥१३॥

मघवतः सदसीन्दुनिभाननां
स्खलितनृत्यपदां विधिना क्षणम् ।
समवलोक्य शशाप सुरेश्वरो
भव नरस्य सुतेत्यवधार्य्य तत् ॥१४॥

समपतत् पदयोरिति तां पुनः
सकलनाथबधू भव शोभने ।
पुनरिहाभिसुखं सुरदुर्ल्लभं
समनुभूय हरेः पदमुज्ज्वलम् ॥१५॥

वत गमिष्यसिगच्छ सुशोभने
सुरपतेर्वचसातिमुमोद सा ।
सुरनदीसलिले परिमुच्य तं
त्रिदशशापजपापमथागमत् ॥१६॥

मघवान् की सभा में एकदिन वह अप्सरा नृत्य के समय स्खलित चरणा हो गई थी, उस नृत्यविश्रृङ्खलगति को देखकर सुरेश्वर ने उसको शाप प्रदान किया–'तुम मर्त्त्यलोक में जाकर नर कन्यात्व को प्राप्त करो ॥१४॥

चरणयुगल में निपतित होकर अप्सरा ने अपराध क्षमापनहेतु अनुनय किया, उससे देवराज सन्तुष्ट होकर कहे थे– हे शोभने ! तुम मर्त्तलोक में जाकर जगत्पति की पत्नी बनोगी, अनन्तर श्रीहरि के पदाम्बुजयुगल की मधुरिमा आस्वादन करके पुनर्बार स्व स्थान को प्राप्त करोगी ॥१५॥

हें सुशोभने ! तुम जाओ, पुनर्बार तुम्हारा आगमन यहाँपर होगा" सुरपति के वचन को सुनकर अतीव आनन्दिता अप्सरा हुई, अनन्तर सुरनदी सलिल में आत्मविसर्जन उसने किया, एवं देवपति का शापज देह को प्राप्त किया ॥१६॥

किम्वा लक्ष्मीवद्धा जगदीश्वरी
निजप्रभुचरणाब्जमगात् स्वयम् ।
तदलमेव शुचा भवितव्यता
भवति कालकृतं सकलं जगत् ॥१७॥
इति निशम्य शची सुतस्य तद्-
वचनमिन्दुमुखस्य शुचं जहौ ।
प्रकटवैभवगोपनकारणं
मनुजभावधरस्य हरेस्ततः ॥१८॥
न खलु चित्रमिदं भगवान् स्वयं
सुरकथावचनं कृतवान् हि यत् ।

अथवा जगदीश्वर अवतीर्ण होने पर लक्ष्मी जिस प्रकार अवतीर्ण होती है, उस प्रकार जगदीश्वरी ने स्वयमाविर्भूत होकर लीलान्त में पुनर्बार श्रीप्रभु के श्रीचरण सान्निध्य को प्राप्त किया, अतः उसके निमित्त शोक करना व्यर्थ है, समस्त जगत् कालकृत भवितव्यता का ही अधीन हैं ॥१७॥

चन्द्रवदन निज पुत्रके वचन को सुनकर शची ने शोक को परित्याग किया, श्रीहरि, प्रकट वैभव को गोपन करने के निमित्त मनुष्य वेश में अनेक प्रकार विचित्र उपाय सृजन करते हैं ॥१८॥

यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है, स्वयं भगवान् ने ही देवलोक की वार्त्ता का कीर्त्तन किया, जिनकी कृपा से समर्थ होकर पितामह जगत्त्रय का सृजन करते हैं, विष्णु पालन करते हैं, एवं महादेव

यदनुभावरसेन पितामहः
सृजति हन्ति जगत्त्रयमीश्वरः ॥१६॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
श्रीशचीशोकापनोदनं लक्ष्मीस्वर्गगमनं
नाम द्वादशः सर्गः

संहार भी करते हैं ॥१६॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
श्रीशची शोकापनोदनं लक्ष्मीस्वर्गगमनं
नाम द्वादशः सर्गः

त्रयोदशः सर्गः

अथावसत् गृहे रम्ये मात्रा सज्जनबन्धुभिः ।
मुमोद च सुरैः सार्द्धं यथादित्या पुरन्दरः ॥१॥
ततः शची चिन्तयित्वा विवाहार्थं सुतस्य सा ।
काशीनाथं द्विजश्रेष्ठं प्राह गच्छस्व साम्प्रतम् ॥२॥
श्रीमत्सनातनं विप्रं पण्डितं धर्म्मिणां बरम् ।
बदस्व मम पुत्राय सुतां दातुं यथाविधि ॥३॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः काशीनाथद्विजोत्तमः ।
न्यवेदयत्तत् सकलं पण्डिताय महात्मने ॥४॥
गच्छ त्वं द्विजशार्दुल कर्त्तव्यं यत् प्रयोजकम् ।
समयं निर्णयं कृत्वा प्राहेष्यामो द्विजोत्तमम् ॥५॥

त्रयोदशः सर्गः

अनन्तर श्रीगौरहरि, अदिति एवं देववृन्द समन्वित पुरन्दर के समान जननी एवं सज्जनवृन्द के सहित रम्य भवनमें विराजित होकर गृहाश्रमोचित आचरण कर आनन्दित हुए थे ॥१॥

अनन्तर तनय के विवाहार्थ सोचकर शची द्विजश्रेष्ठ काशीनाथ को बोलीं, हे ब्रह्मन् ! आप धार्मिकश्रेष्ठ श्रीमत् पण्डित सनातनमिश्र के समीप में जाकर निवेदन करें- कि, आप मेरे पुत्रको स्वीय कन्या प्रदान करें ॥२-३॥

शची के वचन को सुनकर द्विजोत्तम काशीनाथ ने महाशय पण्डितवर्य्य को उक्त सकल वृत्तान्त निवेदन किया ॥४॥

द्विजवर काशीनाथ से सुसंवाद को सुनकर पण्डितवर्य्य ने कहा-

तच्छ्रुत्वा सकलं पत्न्या विमृष्य बन्धुभिः सह ।
कर्त्तव्यमेतन्निश्चित्य काशीनाथमथाब्रवीत् ।।६।।
श्रुत्वेत्थं वचनं तस्य समागम्य यथोदितम् ।
शच्यै न्ययेदयत् सर्वं ततः सा हर्षिताभवत् ।।७।।
ततः कालेन कियता पण्डितः श्रीसनातनः ।
शुद्धः स्वाचारनिरतो वैष्णवो लोकपालकः ।।८।।
दयालुरातिथेयश्च सुशीलः प्रियवाक् शुचिः ।
प्राहिणोद्ब्राह्मणं कञ्चित् समागत्यानमत् शचीम् ।।९।।
प्राह तां तव पुत्राय पण्डिताय महात्मने ।
सुतां सर्वेगुणैर्युक्तां रूपौदार्य्यसमन्विताम् ।।१०।।

हे द्विजवर ! आप का प्रस्ताव आनन्दपूर्ण है, कर्त्तव्यकार्य्य के निमित्त समय निर्णय आप करें, मैं भी समय निर्णय कर वहाँपर उपस्थित होने का प्रयत्न करूँगा ।।५।।

अनन्तर पण्डितवर ने पत्नी एवं आप्तवर्ग के सहित परामर्श कर कर्त्तव्य निश्चय किया, एवं काशीनाथ को अवगत करा दिया ।।६।।

पण्डितवर्य्य के प्रमुख से वचन को सुनकर काशीनाथ ने शचीदेवी को यथायथ वृत्तान्त को अवगत कराया, उसे सुनकर शची हर्षित हुई ।।७।।

कियत्कालानन्तर शुद्धकुलोत्पन्न, स्वधर्मपरायण, विष्णुभक्त, लोकपालक, दयालु, अतिथि पूजक, सुशील, मिष्टभाषी पवित्रहृदय श्रीमान् पण्डित सनातन ने एक ब्राह्मण को प्रेरण किया, ब्राह्मण आकर श्रीशचीदेवी को प्रणाम किये ।।८-९।।

अनन्तर निवेदन किये, 'हे साध्वि ! पण्डित श्रीसनातन, आप के महात्मापण्डित पुत्रको रूपौदार्य्य समन्वित सर्वगुणयुक्त स्वीय

दातुं प्रार्थयते साध्वि पण्डितः श्रीसनातनः ।
ततः प्रमुदिता साध्वी शची वाक्यमथाददे ॥११॥
ममैव सम्मता नित्यं सम्बन्धः सदगुणाश्रयः ।
कर्त्तव्यमेतन्नियतं शुभकालमथाह तम् ॥१२॥
ततो हृष्टो द्विजश्रेष्ठाऽवदन्मधुरया गिरा ।
विष्णुप्रिया पतिं प्राप्य तव पुत्रं श्रियन्वितम् ॥१३॥
यथार्थनाम्नी भवतु श्रीमद्विश्वम्भरः प्रभुः ।
तामुद्वाह्य यथा कृष्णो रुक्मिणीं प्राप्य निर्वृतः ॥१४॥
तथा निर्वृतिमाप्नोतु सत्यमेतद्वदामि ते ।
इति द्विजेन्द्रवचनं श्रुत्वा हर्षान्विता शची ॥१५॥
द्विजश्च गत्वा तत् सर्वं पण्डिताय न्यवेदयत् ।
ततो हर्षान्वितो भूत्वा पण्डितः श्रीसनातनः ॥१६॥

कन्या प्रदान हेतु प्रार्थना किये हैं' प्रस्ताव को सुनकर साध्वी शची प्रमुदिता होकर बोलीं ॥१०-११

इस प्रकार उत्तम सद्गुणाश्रय सम्बन्ध में मेरी सम्मति है, अतः शुभ कार्य्य सुसम्पन्न हेतु शुभ काल निर्णय आप करें ॥१२॥

सुनकर हर्षित द्विजश्रेष्ठ ने मधुर वाणी से बोला, 'श्रियान्वित आप के पुत्रको पति रूप में वरण कर विष्णुप्रिया निजनाम को सार्थक करेगी, श्रीमद् विश्वम्भर प्रभु भी विष्णुप्रिया के सहित परिणय सूत्र से आबद्ध होकर श्रीकृष्ण जिस प्रकार रुक्मिणी को उद्वाहकर आनन्दित हुये थे, उस प्रकार आनन्दित होंगे ॥१३-१४॥

'मैं सत्यकर कहता हूँ विवाह बन्धनसे उभय ही आनन्दित होंगे, सुनकर शची आनन्दिता हुईं ॥१५॥

द्विजने भी वहाँ से प्रस्थान कर पण्डित को सबकुछ निवेदन किया, उससे पण्डित श्रीसनातन अतीव हर्षित हुये ॥१६॥

सर्वद्रव्याद्यलङ्कारमाहरत् सत्वरं कृती ।
ततः स समयं ज्ञात्वाधिवासं कर्त्तुमुद्यतः ॥१७॥
ततो गणक आगत्य प्रोवाच विनयान्वितः ।
मयाभ्येत्य पथि मुदा श्रीमद्विश्वम्भरः प्रभुः ॥१८॥
दृष्टः पृष्टश्च भगवान्नधिवासस्तवानघ ।
विवाहस्याद्य किं तत्र विलम्बस्तात दृश्यते ॥१९॥
तच्छ्रुत्वा प्राह मां देवो राजत्स्मेरमुखाम्बुजः ।
कुतः कस्य विवाहस्ते विदितस्तद्वदस्व मे ॥२०॥
इति श्रुत्वा मया तस्य वचनं तव सन्निधौ ।
समागतं निशम्यैतद्यद्युक्तं तत् समाचर ॥११॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य गणकस्य सुदुःखितः ।
श्रीमत्सनातनो धैर्य्यमवलम्ब्याब्रबीद्वचः ॥२२॥

कृती सनातन ने सत्वर अनुष्ठानोचित समस्त द्रव्यों का समाहरण किया, एवं समय को जानकर शुभ अधिवास अनुष्ठान के निमित्त उद्यम किया ॥१७॥

अनन्तर गणक ने श्रीविश्वम्भर प्रभु को रास्ते में मिलकर विनीत वचन कहा– हे भगवन् ! हेअनघ ! मैंने आप का शुभ परिणयोत्सव हेतु अधिवास का आयोजन को देखा, एवं पूछा, अतः हे तात ! इस के निमित्त विलम्व कयों ? १८॥

यह सुनकर स्मित सोभित मुखाम्बुज प्रभु ने कहा, कहाँ किस का विवाह?जिसको आपने जाना है ? उस का वृत्तान्त कहें ॥१९-२०॥

इस प्रकार उनका वचन सुनकर मैं आपके समीप में कहरहा हूँ, इस में जो समुचित कर्त्तव्य हो आप करें ॥२१॥

गणके वचन को सुनकर श्रीसनातन अतिदुःखित तो हुये थे, किन्तु धैर्य्यावलम्बन कर प्रत्युत्तर में इस प्रकार कहे थे ॥२२॥

कृतं मयैतत्सकलं द्रव्यालङ्कारणानि च ।
तथापि तस्य न तत्रादरोभूद्दैवदोषतः ॥२३॥
ममात्र किं मया कार्य्यं नापराध्यामि कुत्रचित् ।
ततः सन्त्रस्तहृदया पत्नी तस्य शुचिव्रता ॥२३॥
कुलजा विष्णुभक्ता च पतिसेवापरायणा ।
अब्रबीद्दुःखिता दुःखयुक्तं पण्डितसत्तमम् ॥२५॥
पतिं पतिव्रता वाक्यं न करोति यदा स्वयम् ।
श्रीमद्विश्वम्भरो नात्रापराधो मे कथं भवान् ॥२६॥
दुःखितः किन्तु नास्माभिर्वक्तव्यं किञ्चिदण्वपि ।
कार्य्यमेतन्न कर्त्तव्यं त्यज दुःखं सुखी भव ॥२७॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा प्रियायाः प्रीतिमावहन् ।
उवाच बन्धुभिः सार्द्धमेतदेव सुनिश्चितम् ॥२८॥

मैंने परिणयोत्सवोपयोगि द्रव्य अलङ्कार समूह का संग्रह यथोचित रूप से किया है, इस में भी दैववश से उनका समादर नहीं हुआ ॥२३॥

मेरा कुछ अपराध नहीं है, इस समय मुझे कया करना है ? उस परिवेश को देखकर विष्णुभक्ता, शुचिव्रता, कुलजा, पतिसेवा परायणा, पत्नी सन्त्रस्त हृदय होकर पण्डित सत्तम पति को बोली ॥२४-२५॥

'यदि विश्वम्भर,– स्वयं इस वाकच का समादर नहीं करते हैं तब तो कोई अपराध नहीं हैं ? किन्तु इस विषय में हमसब को कुछ कहना नहीं हैं, यह कार्य्य करना है ? अथवा नहीं ? आप आधि को परित्याग करें एवं सुखी बनें ॥२६-२७॥

प्रिया के प्रीतिपरिपूरितवचन को सुनकर विप्र आनन्दित हुये, एवं बन्धुवर्ग के सहित आलोचना कर यह निश्चय भी किये ॥२८॥

नाकरोद् यदि विप्रेन्द्रो न करिष्याम एव हि ।
ततोऽसौ भगवान् ज्ञात्वा दुःखितौ द्विजदम्पती ॥१६॥
रोषेण लज्जायुक्तौ विष्णुभक्तौ विमत्सरौ ।
ब्रह्मण्यौ भगवान् देवस्तयो दुःखमवाहरत् ॥३०

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्येप्रथमप्रक्रमे
श्रीविष्णुप्रियाविवाहे श्रीसनातनसान्त्वनं
नाम त्रतोदशः सर्गः

हे विप्रेन्द्र ! यदि विश्वम्भर इस कृत्य का अनुमोदन नहीं करते हैं, तब मैं भी इसे नहीं करूँगा, अनन्तर भगवान् समझ गये कि, द्विजदम्पती इनके अपराध से अत्यन्त दुःखित हैं, विमत्सर, ब्राह्मण्य विष्णुभक्त, लज्जा, एवं रोषसे दुःखित हैं, अवगत होकर भगवान् उन दोनों का दुःखापनोदन किया ॥२६-३०॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
श्रीविष्णुप्रिया विवाहे श्रीसनातनसान्त्वनं नाम
त्रयोदशः सर्गः

चतुर्द्दशः सर्गः

ततश्च भगवान् कृष्णः करुणापरमानसः ।
तयोर्दुःखमनुस्मृत्य प्रापय्य निजब्राह्मणम् ॥१॥
वाण्या मधुरया विप्रमुखेन प्राकृतो यथा ।
अनुनीय तयोः कन्यामुद्वाहार्थं मनो दधे ॥२॥
ततः शुभे विलग्नेन्दुनक्षत्र शुभसंयुते ।
अधिवासदिने साधुविप्रसंघसमागते ॥३॥
मृदङ्गपणवाध्नाने वेदध्वनिनिनादिते ।
धूपदीपपताकाभिरलङ्कृतदिगन्तरे ॥४॥
स्वस्तिवाचनपूर्वं हि संपूज्य पितृदेवताः ।
अधिवासक्रियां चक्रे ब्राह्मणैः सह स प्रभुः ॥५॥

अनन्तर करुणामय भगवान् कृष्ण, उन दम्पती के दुःख को अनुस्मरण कर निज ब्राह्मण को भेजकर मधुरवाणी से विप्र के द्वारा अनुनय विनय को प्रकट किये थे, एवं उनकी कन्या के सहित परिणय सूत्र से आबद्ध होने के निमित्त निश्चय किये ॥१-२॥

अनन्तर शुभलग्न एवं चन्द्र नक्षत्र शुद्ध होने पर अधिवासदिन में साधु विप्र जनगण का समागमन हुआ, मृदङ्ग पणव प्रभृति वाद्य यन्त्र एवं वेदवाणी से विवाह वासर मुखरित हुआ, धूप दीप पताका प्रभृति के द्वारा विवाह वासर अलङ्कृत हुआ, उस समय प्रभु ने ब्राह्मणवृन्द के सहित स्वस्तिवाचण पूर्वक देवता की अर्च्चनाके अनन्तर अधिवास अनुष्ठान सुसम्पन्न किया ॥३-४-५॥

ततो ददौ द्विजातिभ्यः सज्जनेभ्यश्च चन्दनम् ।
गन्धताम्बूलमाल्यञ्च भूरि भूरियशा हरिः ॥६॥
तस्मिन् काले पण्डितार्य्यः श्रीयुतः श्रीसनातनः ।
अभ्ययाच्छ्रद्धया युक्तः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥७॥
ब्राह्मणान् विप्रसाध्वीश्च प्रेषयित्वा यथाविधि ।
कारयामास जामातुरधिवासं महात्मनः ॥८॥
स्वयं चक्रे स्वदुहितुरधिवासं यथाविधि ।
महानन्दरसे मग्नो नाविन्ददभववेदनाम् ॥९॥
अथापरदिने प्रातर्भगवान् जाह्नवीजलम् ।
अवगाह्याह्निकं कृत्वा प्रायत्साधुभिरन्वितः ॥१०॥
नान्दीमुखान् पितृगणान् संपूज्य सुसमाहितः ।
स्थितन्तं सहसाभ्येत्य द्विजपुत्रा महौजसः ॥११॥

तत्पश्चात् उन्होंने सज्जन एवं द्विजातिगण को माल्य चन्दन गन्ध द्रव्य एवं ताम्बूल प्रदान भूरि रूप में करके विपुल ख्याति लाभ किया ॥६॥

उस समय पण्डितवर्य्य श्रीसनातन, आनन्द एवं श्रद्धा परिपूरित होकर वहाँपर आगमन किये थे ॥७॥

अनन्तर ब्राह्मणवृन्द एवं साध्वीबृन्द को प्रेरणकर यथाविधि महात्मा जामाता का अधिवास अनुष्ठान करवाये थे ॥८॥

आपने स्वयं भी यथाविधि निज दुहिता का अधिवास किया, एवं महानन्द रस में निमग्न होकर भववेदना को परित्याग किया ॥९॥

अपरदिन प्रत्यूष में भगवान् विश्वम्भर जाह्नवी जल में अवगाहनस्नान के पश्चात् आह्निक कृत्यादि समापन के अनन्तर गृहागमन पूर्वक साधुवृन्द के सहित नान्दीमुखी श्राद्ध के द्वारा पितृवर्ग की अर्चना सुसमाहित चित्त से करके स्थित होने पर तेजस्वी ब्राह्मण

वस्त्रालङ्कारमालाभिर्गन्धाद्यैः समभूषयन् ।
श्रीमद्विश्वम्भरं देवं सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ।।१२।।
तस्मिन् क्षणे चकाराशु श्रीसनातनपण्डितः ।
वस्त्रालङ्कारमालाभिर्गन्धाद्यैः समलङ्कृताम् ।।१३।।
कन्यां वैवाहिकं कालं विदित्वा ब्राह्मणोत्तमान् ।
प्रेषयामास जामातुरादरानयनाय सः ।।१४।।
ततो गत्वा द्विजश्रेष्ठाः प्रोचुश्च विनयान्विताः ।
उद्वाहार्थं तव शुभः कालोऽयं समुपस्थितः ।।१५।।
विजयस्व शुभाय त्वं गमनाय मतिं कुरु ।
पण्डितस्य गृहे तस्य भाग्यं को वक्तुमर्हति ।।१६।।
तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणवचो भगवान् सादराननः ।
जयघोषैर्ब्रह्मघोषैर्मृदङ्गपटहस्वनैः ।।१७।।

तनयगण वस्त्रालङ्कार माल्य गन्ध द्रव्य प्रभृति के द्वारा उनको भूषित किये थे, उससे श्रीविश्वम्भरदेव अपूर्व कान्तिमाला से उज्ज्वल हो गये ।।१०-११-१२।।

उक्त शुभ मुहूर्त्त में श्रीसनातनपण्डित, वस्त्रालङ्कार माल्य गन्धादि के द्वारा अलङ्कृत स्वीय कन्या का वैवाहिक काल को अवगत होकर आदर पूर्वक जामाता को आनयन करने के निमित्त उत्तम ब्राह्मणवृन्द को प्रेरण किये थे ।।१३-१४।।

वहाँपर उपस्थित होकर विनय पूर्वक ब्राह्मणगण निवेदन किये थे—उद्वाह का शुभ मुहूर्त्त समुपस्थित है, आप शुभानुष्ठान के निमित्त जय युक्त होकर श्रीसनातनपण्डित के गृह में प्रस्थान करें। पण्डितवर्य्य की भाग्य महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ।।१५-१६।।

सादराननभगवान् ब्राह्मण के वचनों को सुनकर माता को प्रणाम पूर्वक जयघोष ब्रह्मघोष मृदङ्ग पणव वीणा पटह कांस्यादि

वीणापणवकांस्यादिनिस्वनैर्मुदितो ययौ ।
मातरं संप्रणम्याशु दोलारोहणपूर्वकम् ॥१८॥
दीपावलिभिरन्यैश्च नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।
शरच्चन्द्रांशुशुभ्रायां शिविकायां रराज सः ॥१९॥
सुवर्णगौरक्षीराब्धौ मेरुशृङ्ग इवापरः ।
जगन्मोहनलावण्यं व्यक्तीकृत्य स्वयं हरिः ॥२०॥
प्राप्तं जामातरं वीक्ष्य हर्षोत्फुल्लतनूरुहः ।
उद्यम्यानीय विधिना पाद्यमासनमादरात् ॥२१॥
दत्त्वा तं वरयामास वस्त्रस्रगनुलेपनैः ।
द्रुतकाञ्चनगौराङ्गं मालतीमाल्यवक्षसम् ॥२२॥
मेरुशृङ्गं यथा गङ्गा द्विधाधारासमन्वितम् ।
उद्यत्पूर्णनिशानाथवदनं पङ्कजेक्षणम् ॥२३॥

वाद्ययन्त्र निनाद से आनन्दित होकर दोलारोहण पूर्वक गमन किये थे ॥१७-१८॥

इस समय नक्षत्रराजिसे सुशोभित चन्द्रमा के समान दीपावलि से आप शोभित एवं शरत्चन्द्रांशु शुभ्रशिविका में विराजित थे ॥१९॥

स्वयं श्रीगौरहरि ने सुवर्ण गौर क्षीराब्धि में द्वितीयमेरुशृङ्ग के समान जगन्मोहन लावण्य को प्रकट किया ॥२०॥

जामाता को देखकर पुलकपरिपूरित वपु से उनको आदर पूर्वक आनयन कर विधि पूर्वक पाद्य आसन प्रभृति का समर्पण विप्र ने किया ॥२१॥

उक्त उपायन समूह का समर्पण के पश्चात् उन्होंने मालती माल्य शोभित द्रुतकाञ्चन गौराङ्ग को स्रक् वस्त्र अनुलेपन के द्वारा वरण किया ॥२२॥

गङ्गा की द्विधा धारा समन्वित मेरुशृङ्ग के समान सद्योदित पूर्णचन्द्र के तुल्य कमलनयन जामाता को देखकर प्रसन्न वदना श्वश्रु

दृष्ट्वा जामातरं श्वश्रुर्मुमोद सुस्मितानना ।
सा दीपैः स्वस्तिकैर्लाजैर्माङ्गल्यैस्तद्द्विजस्त्रियः ॥२४॥
चक्रुर्निर्म्मञ्छनं प्रीता जामातुर्हृद्यकोविदाः ।
परमानन्दसम्पूर्णाः कौतूहलसमन्विताः ॥२५॥
समानीय सुतां दिव्यां श्रीसनातनपण्डितः ।
न्यवेदयत् पादमूले जामातुः सुसमाहितः ॥२६॥
ततो जयजयैर्नादैर्विप्राणां वेदनिस्वनैः ।
नानावादित्रनिर्घोषैर्बभूव महदुत्सवः ॥२७॥
ववर्ष पुष्पैरन्योऽन्यं विष्णुर्विष्णुप्रिया च सा ।
साक्षादेव महानन्दोऽवततार स्वयं विभुः ॥२८॥
ततः स आसने शुभ्रे शुद्धास्तरणसंयुते ।
उपविष्टो महाबाहुर्हरिः सा च शुभा बधूः ॥२९॥
द्वारवत्यां यथा कृष्णो रुक्मिणी रुचिरानना ।
ववृधेऽथानयोः कान्तो रोहिणीशशिनोरिव ॥३०॥

आनन्दिता हुईं, एवं द्विज सीमन्तिनीगणों के स्वस्तिक लाज प्रभृति के द्वारा माङ्गलिक नीराजन भी उन्होंने की ॥२३-२४॥

प्रीतिपूर्णाचरणाभिज्ञा महिलावृन्द कौतूहल एवं आनन्दातिरेक से जामाता को निर्मच्छन कृत्य से आनन्दित किये ॥२५॥

श्रीसनातनपण्डित लोकोत्तर गुणसम्पन्न स्वीय कन्या को लाकर एकान्त मना होकर जामाता के चरणों में समर्पण कर दिये ॥२६॥

अनन्तर जय जय ध्वनि एवं विप्रवृन्द की वेदध्वनि से विविध वाद्य निस्वन से महामहोत्सव साफल्य मण्डित हुआ ॥२७॥

विष्णुप्रिया एवं विष्णु, परस्पर को पुष्पवर्षा से अभिनन्दित करने पर वहाँपर स्वयं विभु का महानन्द आविर्भूत हुआ था ॥२८॥

अनन्तर शुद्ध आस्तरण युक्त शुभ्र आसन में महाबाहु श्रीहरि

आगत्य विधिवत् कन्यामुत्सृज्य करपङ्कजे ।
दत्त्वा कृतार्थमात्मानं मेने स श्रीसनातनः ।।३१।।
ततो विवाहे निर्वृत्ते कृत्वा च सुमहोत्सवम् ।
आजगाम निजं गेहं सभार्य्यो जगतां गुरुः ।।३२।।
दृष्ट्वा तु तं क्षितिसुरैरभिनन्द्यमानं
बध्वा समं सपदि गेहमुपागतं सः ।
गेहप्रवेशनविधिं मुदिता चकार
साध्वीभिर्बन्धुरमुखी जननी मुरारेः ।।३३।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
श्रीविष्णुप्रियाविवाहो नाम
चतुर्द्दशः सर्गः

एवं शुभा बधू उपविष्ट हुये थे, उससे प्रतीत होता था कि– द्वारका में रुचिरानना श्रीरुक्मिणी के सहित श्रीकृष्ण उपविष्ट हैं, एवं रोहिणी के सहित रोहिणीपति चन्द्रमा विराजित हैं ।।२९-३०।।

इत्यवसर में श्रीसनातन वहाँपर आकर विधिवत् कन्या का समर्पण जामाता के करकमलों में करके अपनेको कृतकृतार्थ मानने लगे ।।३१।।

विवाह एवं तज्जनित सुमहोत्सव सुसम्पन्न होने पर जगत्गुरु भार्य्या के सहित निज गृह गमन किये थे ।।३२।।

जननी स्नुषा के सहित नन्दन को गृहागत देखकर ब्राह्मणवृन्द एवं पतिव्रता रमणीगणों के सहित हर्षचित्त से बरबधू का माङ्गलिक गृहप्रवेशानुष्ठान किये ।।३३।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृतेमहाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
श्रीविष्णुप्रिया विवाहो नाम
चतुर्द्दशः सर्गः

पञ्चदशः सर्गः

ततः पुरस्थैरभिनन्दितो हरि
र्वसन् गृहे ब्राह्मणवैद्यसज्जनान् ।
अपाठयल्लोकिकसत्क्रियाविधि
चकार कारुण्यविधानमद्भुतम् ॥१॥
वाचम्पतेर्वाग्मितया जहार
काव्यस्य काव्येन विधोः प्रियं सः ।
कान्त्या स्वयं भूमिगते सुरेशे
न्यस्तां पुनस्तां हरये ददुः किम् ॥२॥
सोऽध्यापयद्विप्रमहत्तमांस्तान्
ये पूर्वजन्मार्ज्जितपुण्यराशयः ।

अनन्तर पुरवासियों के द्वारा अभिनन्दित होकर श्रीगौरहरि ब्राह्मण वैद्य प्रभृति सज्जनगण के सहित गृहस्थाश्रम में निवास करतः यथाविधि शास्त्राध्ययन एवं सत्क्रिया का आचरण करुणापूर्वक किये थे ॥१॥

गौराङ्गदेव अपूर्वरूपलावण्यमण्डित हुये थे, वाग्मिता में वृहस्पति की एवं काव्य में शुक्राचार्य्य की प्रतिमा को समुज्ज्वल किये थे, कारण श्रीहरि अवतीर्ण होने से देवगण विद्यालाभ हेतु भूमण्डल में अवतीर्ण हुये थे ॥२॥

श्रीगौरहरि, उन समस्त विप्रवर्य्य को शास्त्राध्यापन किये थे, जिन्होंने जन्मान्तर में प्रभूत पुण्य अर्ज्जन किये थे, कारण वे सब

ब्रूमः कथं भाग्यवतां महद्‌गुणं
येषां स्वयं लोकगुरुर्गुरुर्भवेत् ॥३॥
सौन्दर्य्यमाधुर्य्यविलासविभ्रमै
रराज राजद्वरहेमगौरः ।
विष्णुप्रियालालितपादपङ्कजो
रसेन पूर्णो रसिकेन्द्रमौलिः ॥४॥
विद्याविलासेन विलोलबाहु-
र्गच्छन् पथि शिष्यसमाकुलो हरिः ।
आगत्य गेहे निजमातुरन्तिके
तस्याः सुखं नित्यमधात् प्रियासमम् ॥५॥
ततः स लोकाननुशिक्षयन्मन-
श्चकार कर्त्तुं पितृकार्य्यमच्युतः ।
श्राद्धं स कृत्वा विधिवद्विधानविद्
गयां प्रतस्थे क्षितिदेवतान्वितः ॥६॥

भाग्यवान् थे, अन्यथा उनसब से गुरु, लोकगुरु श्रीभगवान् कैसे होंगे ॥३॥

सर्वातिशय हेमगौरकान्ति धारी श्रीगौरहरि, सौन्दर्य्य माधुर्य्य विलास विभ्रम के द्वारा अतिशय शोभित हुये थे, एवं रसिकेन्द्र मौलि हरि श्रीविष्णुप्रिया के द्वारा भक्ति परिसेवित पादपङ्कज थे ॥४॥

विलोल बाहु श्रीगौरहरि विद्या विलासरस में विभोर होकर शिष्यवृन्द के सहित मार्ग में भ्रमण करते थे, एवं जननी के समीप में आगमन करने पर जननी एवं पत्नी का आनन्द वर्द्धित होताथा ॥५॥

अनन्तर लोकशिक्षार्थ श्रीप्रभु ने पितृकार्य्य सम्पन्न किया, यथाविधि श्राद्ध कर्मानुष्ठान के अनन्तर द्विजवृन्द के सहित गयाधाम गमन किया ॥६॥

गच्छन् पथि प्राकृतचेष्टया हसन्
नर्म्मोक्तिभिः कौतुकमावहन् सताम् ।
रेमे कुरङ्गावलिराजितासु
स्थलीषु पश्यन् मृगकौतुकानि ॥७॥
स्नात्वा स चोरान्धयके नदे मुदा
तत्राह्निकं देवपितॄन् यथाविधि ।
सन्तर्पयित्वा सहसान्वितः प्रियै-
र्मन्दारमारुह्य ददर्श देवताः ॥८॥
ततोऽवतीर्य्याविजगाम सत्वरम्
धराधराधो भवनं द्विजस्य सः ।
मनुष्यशिक्षामनुदर्शयन् प्रभु-
र्ज्जरेण सन्तप्ततनुर्बभूव ॥९॥
बभूव मे वर्त्मनि दैवयोगा-
च्छरीरवैवश्यमतः कथं स्यात् ।

गया यात्रा के समय आप प्राकृत चेष्टा से सज्जनवृन्दों को हास्यविनोद से आनन्दित किये थे, एवं कुरुङ्गावलि समन्वित स्थली को देखकर अतिशय आनन्दित हुये थे ॥७॥

चोरान्ध्ययक नामक नदी में स्नान करनेके बाद आपने हर्ष से यथाविधि देव पितृ तर्पण कार्य्य सम्पन्न किया, एवं प्रियवचनों से सभागत जनवृन्द को आप्यायित करने के पश्चात् मन्दार पर्वत में आरोहण पूर्वक श्रीमधुसूदन के सहित देवदर्शन भी किया ॥८॥

श्रीमधुसूदन दर्शनके अनन्तर पर्वत के तलदेश में स्थित ब्राह्मण के गृह में प्रभु पर्वत से उतर कर सत्वर आगये, वहाँपर प्रभु मनुष्य शिक्षार्थ ज्वर ग्रस्त हो गये थे ॥९॥

दैवयोग से पथ में शरीर ज्वराक्रान्त हो गया, अतः पितृकार्य्य

गयासु मे पैतृककर्म्मविघ्नः
श्रेयस्यभूदित्यतिचिन्तयाकुलः ॥१०॥

ततोऽप्युपायं परिचिन्तयन् स्वयं
ज्वरस्य शान्त्यै द्विजपादसेवनम् ।

वरं स विज्ञाय तथोपपादयन्
तदम्बुपानं भगवांश्चकार ॥११॥

ये सर्वविप्रा मधुसूदनाश्रयाः
निरन्तरं कृष्णपदाभिचिन्तकाः ।

ततः स्वयं कृष्णजनाभिमानी
तेषां परं पादजलं पपौ प्रभुः ॥१२॥

ततो ज्वरस्योपशमो बभूव
तान् दर्शयित्वा द्विजपादभक्तिम् ।

जगाम तीर्थं स पुनः पुनाख्यं
चकार तत्र द्विजदेवतार्च्चनम् ॥१३॥

कैसे सम्पन्न होगा, इस चिन्ता से प्रभु व्याकुल हो गये, एवं सोचने लगे—श्रेयस्कर कार्य्य में अनेक विघ्न होते हैं ॥१०॥

ज्वर से मुक्त होने के निमित्त श्रीप्रभु ने स्वयं उपाय उद्भावन किया, औषधि सेवन करना आवश्यक है, इस प्रकार विमर्शकर आपने विप्र पादोदक ग्रहण किया, एवं विप्र चरणोदक पान कर ज्वर से मुक्त हुआ ॥११॥

जो सब विप्र श्रीमधुसूदन को आश्रय कर रहते हैं, निरन्तर श्रीकृष्णपदारविन्द का चिन्तन करते हैं, स्वयं को कृष्ण के जन मानते हैं, उनके चरणोदक पान श्रीप्रभु ने किया ॥१२॥

विप्रचरणोदक पान के अनन्तर ज्वर शान्ति हो गई, समस्त व्यक्तियों को प्रभु ने विप्रचरणों की भक्ति शिक्षा प्रदान किया, उस के

ततः समुत्तीर्य्य नदीं स गच्छन्
तीर्थोत्तमे राजगृहे सुपुण्ये ।
ब्रह्माख्यकुण्डे पितृदेवपूजां
चकार लोकाननुशिक्षयन् सः ॥१४॥
पत्या स्वमातुः ससुरोऽगमच्छनै-
र्गयां गदाभृच्चरणं दिदृक्षुः ॥१५॥
तस्मिन् शुभं न्यासिवरं ददर्श
स ईश्वराख्यं हरिपादभक्तम् ।
पुरीं परेशः परयात्मभक्त्या
तुष्टं ननामैतमथाब्रवीच्च ॥१६॥
दिष्टयाद्य दृष्टं भगवन् पदाम्बुजं
तव प्रभो ब्रूहि यथा भवाम्बुधिम् ।
निस्तीर्य्य कृष्णाङ्घ्रि सरोरुहामृतं
पश्यामि तन्मे करुणानिधे स्वयम् ॥१७॥

बाद पुनः पुनः नामकतीर्थ स्थान में श्रीप्रभु उपस्थित हुए, एवं वहाँ पितृदेवार्चन भी सम्पन्न किये ॥१३॥

अनन्तर नदी पार होकर राजगृहस्थित तीर्थोत्तम सुपुण्य क्षेत्र ब्रह्मकुण्ड में उपस्थित हुए, एवं लोकशिक्षा हेतु वहाँपर पितृदेव पूजानुष्ठान किये थे ॥१४॥

देववर्ग के सहित पितृदेव श्रीगदाधर के श्रीचरणारविन्द दर्शन के निमित्त आये थे, उस समय श्रीप्रभु ने ईश्वर नामक विष्णुभक्त श्रेष्ठ न्यासिवर को देखा। ईश्वर ने भक्ति के सहित ईश्वरपुरी को प्रणाम किया, आचरण से सन्तुष्ट श्रीपुरी को जानकर कहा ॥१५-१६।

परम सौभाग्य होने से ही भगवन् ! आप का दर्शन लाभ हुआ, हे करुणानिधे ! हे प्रभो ! आप उपदेश करें, मैं किस प्रकार

स इत्थमाकर्ण्य हरेर्वचोऽमृतं
मुदा ददौ मन्त्रवरं मतिज्ञः।
दशाक्षरं प्राप्य स गौरचन्द्रमा
तुष्टाव तं भक्तिविभावितः स्वयम् ॥१८॥
न्यासिन् दयालो तव पादसङ्गमात्
कृतार्थता मेऽद्य बभूव दुर्ल्लभा।
श्रीकृष्णपादाब्जमधून्मदा च सा
यथा तरिष्यामि दुरन्तसंसृतिम् ॥१९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
श्रीमदीश्वरपुरीदर्शनं नाम
पञ्चदशः सर्गः

भावाम्बुधि से उत्तीर्ण होकर श्रीकृष्णचरण सान्निध्य प्राप्त करूँगा ? कृपया आप स्वयं उपाय निर्द्धारण करें ॥१७॥

इस प्रकार श्रीहरि की अमृतविनिन्दित वाणी को सुनकर मतिज्ञ पुरी ने आनन्दित होकर मन्त्रराज का उपदेश किया श्रीगौर-चन्द्रमा दशाक्षर प्राप्ति से सन्तुष्ट एवं भक्तिविभावित होकर स्वयम् उनका स्तव किये थे ॥१८॥

हे न्यासिन् ! हे दयालो आप के श्रीचरण सान्निध्य प्राप्त कर मैं कृतार्थ हुआ हूँ, श्रीकृष्णपाद भक्ति प्राप्ति भी हुई है, मैं उससे दुरन्त संसृति को अतिक्रम करने में सक्षम हो जाऊँगा ॥१९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
श्रीमदीश्वरपुरीदर्शनं नाम
पञ्चदशः सर्गः

षोड़शः सर्गः

गुरौ स भक्तिं परिदर्शयन् स्वयं
फल्गुषु चक्रे पितृदेवतार्च्चनम् ।
प्रेतादिश्रृङ्गे पितृपिण्डदानं
ब्रह्माङ्गुलीरेणुयुतेषु कृत्वा ॥१॥
देवान् समभ्यच्छर्च्य ददौ द्विजातये
पितृन् समुद्दिश्य यथेष्टदक्षिणाम् ।
ततोऽरुह्याशु यायावूदिचीं
पितृक्रियां दक्षिणमानसे च ॥२॥
कृत्वोत्तरे मानससंज्ञके च
ययौ स जिह्वाचपले द्विजान्वितः ।
श्राद्धं पितृणामथ देवतानां
कृत्वा गयामूर्ध्नि जगाम हृष्टः ॥३॥

श्रीगुरुदेव के प्रति भक्ति प्रकट कर स्वयं प्रभु फल्गुतीर्थ में पितृदेवार्च्चन किये थे, प्रेतादिश्रृङ्गमें ब्रह्माङ्गुलीरेणु युक्त में भी पिण्ड प्रदान किये थे ॥१॥

अनन्तर देवार्च्चन करने के पश्चात् पितृपुरुषों की सन्तुष्टि हेतु यथेष्ट दक्षिणा प्रदान ब्राह्मणवर्ग को आप ने किया, अनन्तर सत्वर अवरोहण पूर्वक उत्तर दिशा में पितृक्रिया सम्पन्न किया, इस प्रकार दक्षिण मानस उत्तर मानस उभयस्थल में ही आप ने पितृयज्ञानुष्ठान किया, अनन्तर जिह्वाचपल द्विजवृन्द परिवेष्टित होकर देवपितृ अर्चन

द्विजोत्तमैः षोड़शवेदिकायां
चकार पिण्डं पितृकर्म्मपूर्वकम् ।
श्रीमज्जगन्नाथपुरन्दराख्यः
प्रत्यक्षीभूय जगृहे मुदान्वितः ॥४॥
यथा श्रीरामेण हि दत्तपिण्डं
गृहीत आगत्य तदीयपित्रा ।
एवं हि सर्वत्र हरेश्चरित्रं
तथापि दुष्प्राप्यतमं यदेतत् ॥५॥
स विष्णुपद्यां हरिपादचिह्नं
दृष्ट्वातिहृष्टो मनसाब्रबीच्च ।
कथं हरेः पादपयोजलक्ष्म-
प्रेमोदयो मे न बभूव दृष्ट्वा ॥६॥
तस्मिन् क्षणे तस्य बभूव दैवात्
सुशीततोयैरभिषेचनं मुहुः ।

के अनन्तर आनन्दित होकर गयासुर के मस्तक में विराजित श्रीगदाधर पादपद्म संस्पर्शन भी किया ॥२-३॥

द्विजोत्तम के द्वारा षोड़श वेदिका में आप ने पितृपिण्ड दान पितृ अनुष्ठान पूर्वक किया जहाँ श्रीमज्जगन्नाथ पुरन्दर मिश्र ने उक्त सपर्य्या का ग्रहण भी स्वयं प्रकट होकर हर्ष से किया ॥४॥

जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र के पिता श्रीरामचन्द्र प्रदत्त पिण्ड ग्रहण स्वयं किए थे उस प्रकार ही यह घटना हुई, श्रीहरिचरित्र सर्वत्र दुष्प्राप्यतम ही है ॥५॥

विष्णुपदी में श्रीहरिपादचिह्न देखकर अत्यन्त हृष्ट होकर मन ही मन आप कहे थे,—श्रीहरिचरण दर्शनसे भी मेरा प्रेमोदय नहीं हुआ ? ६॥

कम्पोर्द्ध्वरोमा भगवान् बभूव
प्रेमाम्बुधाराशतधौतवक्षाः ॥७॥
स विह्वलः कृष्णपदाब्जयुग्म.
प्रेमोत्सवेनाशु विमुक्तसङ्गः ।
त्वक्त्वा गयां गन्तुमियेष रम्यां
मधोर्वनं साधुनिषेवितां ताम् ॥८॥
प्राहाशरीरा नवमेघनिस्वना
वाणी तामाहूय चल स्वमन्दिरम् ।
ततः परं कालवशेन देव
मधोर्वनं चान्यदपि स्वचेष्टया ॥९॥
भवान् हि सर्वेश्वर एष निश्चितः
कर्त्तुं ह्यकर्त्तुञ्च समर्थः सर्वतः ।
तथापि भृत्यैर्गदितञ्च यत् प्रभो
कर्त्तुं प्रमाणं हि तमर्हसि ध्रुवम् ॥१०॥

उस समय ही दैवयोग से सुशीतलजल से उनका अभिषेचन हुआ, उससे भगवान् के अङ्ग पुलकाचित हो गया एवं बक्षःस्थल अश्रुधारा से आप्लुत हुआ ॥६॥

श्रीगौरहरि, श्रीकृष्णचरण नलिनयुगल के प्रेमोत्सव से विह्वल होकर विमुक्त हो गये, एवं रमणीय गयाक्षेत्र को छोड़कर पुण्यमधुवन को देखने की आप को इच्छा हुई ॥८॥

उस समय नवमेघनिस्वन के समान आकाशवाणी हुई— "हे देव ! सम्प्रति आप निज मन्दिर गमन करें, पश्चात् समय उपस्थित होने से मधुवन दर्शनाकाङ्क्षा सिद्ध होगी, आप सुनिश्चित सर्वेश्वर हैं, कर्त्तुं अकर्त्तुं अन्यथा कर्त्तुं समर्थ हैं। तथा भृत्यके वचनों का श्रवणकरें,

स इत्थमाकर्ण्य गिरं सुदिव्या-
मागत्य गेहं निजबन्धुभिर्वृतः ।
ननाम मातुश्चरणे निपत्य
बभूव हर्षाश्रुविलोचना शची ॥११॥
गृहे वसन् प्रेमविभिन्नधैर्य्यं
रुदत्यलं रौति मुहुर्मुहुः स्वनैः ।
सवेपथुर्गद्गदया गिरा लप-
त्यलं हरे कृष्ण हरे मुदा क्वचित् ॥१२॥
श्रीवासविप्रादिगणैः क्वचिन्नवं
गायत्यलं नृत्यति भावपूर्णः ।
नानावताराकृति वितन्वन्
रेमे नृलोकाननुशिक्षयंश्च ॥१३॥

हे प्रभो ! भृत्य के वचनों को प्रमाणित करनेके निमित्त आप निश्चित मनोरथ करेंगे॥९-१०॥

इस प्रकार दिव्यवाणी को सुनकर बन्धुगणों के सहित प्रभु, निज मन्दिर में प्रत्यावर्त्तन किये थे, एवं जननी के चरणों में अवनत होकर प्रणति किये थे, उससे शची का हृदय आनन्द से आप्लुत हो गया था ॥११॥

प्रभु निजमन्दिर में निवास कर प्रेमविभिन्नधैर्य्य होकर पुनः पुनः यथेष्ट रोदन करने लगे, अङ्ग कम्पित होने लगा, गदगदायमान वाणी से आप 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' कहने लगे थे ॥१२॥

लोकशिक्षा के निमित्त श्रीप्रभु,—श्रीवासादि के कीर्त्तन में भावपूर्ण कीर्त्तन नृत्य प्रभृति प्रकट कर बहुविध भगवदवतार के चरित्र को प्रकट किए थे ॥१३॥

न्यासं स चक्रे हरिपादपद्मे
सर्वां क्रियां न्यासिवरो बभूव ।
ततोऽगमत् क्षेत्रवरे महात्मभि-
र्वृतो मुकुन्दप्रमुखैर्हरिप्रियैः ॥१४॥
ददर्श देवं पुरुषोत्तमेश्वरं
चिरं चिरानन्दसुखातिसत्सुखम् ।
लब्ध्वागमद्राघवदेवनिर्मितं
सेतुं पथि प्राज्ञजनैः स साधुभिः ॥१५॥
तत्र स्थितान् सप्ततमालवृक्षा-
नालिङ्गय चक्रे मुहुरेव रोदनम् ।
ततः समागत्य ददर्श कूर्म्मे
स कूर्म्मरूपं जगदीश्वरं प्रभुः ॥१६॥
तदागमच्छ्रीपुरुषोत्तमाख्ये
क्षेत्रे जगन्नाथमुखं ददर्श ।

अनन्तर श्रीप्रभु ने श्रीहरिचरणों में समस्त क्रिया का न्यास करके न्यासीवरत्व को प्राप्त किया, पश्चात् मुकुन्द प्रमुख महात्मा हरि भक्तवृन्द के सहित श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र गमन किया ॥१४॥

वहाँ चिरकाल पर्य्यन्त उन्होंने श्रीपुरुषोत्तम के मुखारविन्द सन्दर्शन से परमानन्द प्राप्त किया, अनन्तर प्राज्ञ साधुजन के सहित श्रीरामचन्द्र निर्मित सेतुबन्ध दर्शन के निमित्त प्रस्थान किया ॥१५॥

तत्रत्य सप्ततमालवृक्षों को आलिङ्गन कर आपने मुहुर्मुहुः रोदन किया, वहाँ से आकर कूर्म क्षेत्र में कूर्मरूप जगदीश्वर का दर्शन किया ॥१६॥

कियद्दिनं तत्र निवासमच्युतो
विधाय यातो मथुरां मधुद्विषः ॥१७॥
पादाब्जचिह्नैः समलङ्कृतां स्थलीं
रुरोद संप्राप्य लुठन् क्षितौ भृशम् ।
कियद्दिनं तत्र स्थितो जगद्गुरुः
प्रेमामृतास्वादनमात्र उत्सुकः ॥१८॥
इति स मधुपुरीं प्रभुर्वितन्वन्
परमसुखं सहसा जगाम हर्षात् ।
पुनरनुपदमेव साधुसङ्गात्
परमपदं पुरुषोत्तम-प्रदीव्यम् ॥१९॥
श्रुत्वा च तीर्थस्य विधिक्रियां हरे-
र्लभेद्गयातीर्थफलं महत्तमम् ।

पश्चात् पुनर्बार वहाँ से श्रीजगन्नाथ क्षेत्र में प्रत्यावर्त्तन पूर्वक श्रीजगन्नाथ के मुखारविन्द का दर्शन किया, कियत्काल वहाँपर अवस्थान पूर्वक श्रीकृष्णक्षेत्र मथुरा सन्दर्शन हेतु गमन किया ॥१७॥

श्रीकृष्ण पदाङ्कित भूमि को देखकर रोदन कर जगद्गुरु— भूमि में बारम्बार लुण्ठन करने लगे एवं प्रेमामृतास्वादन के निमित्त उत्सुक चित्त होकर कियद्दिन वहाँपर निवास किये थे ॥१८॥

इस प्रकार प्रभु, मधुपुरीमें परमानन्दका विस्तारकर आस्वादन करने के अनन्तर सहसा आनन्द विभोर होकर परमपद स्वरूप श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र में प्रत्यावर्त्तन किये थे ॥१९॥

श्रीप्रभु की गयायात्रा का विवरण श्रवण से गयायात्रा का फल लाभ होता है देहावसान होने पर पूर्णलालस एवं श्रद्धान्वित होकर

देहावसाने विमलां गतिं नरः
श्रद्धान्वितो गच्छति पूर्णलालसः ॥२०॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्येप्रथमप्रक्रमे
बयागमनं नाम षोड़शः सर्गः समाप्तस्तथायं
प्रथमः प्रक्रमः

मानव विमल गति को प्राप्त करता है ॥२०॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृतेमहाकाव्ये प्रथमप्रक्रमे
बयागमनं नाम पोड़शः सर्गः समाप्तस्तथायं
प्रथमः प्रक्रमः

द्वितीयप्रक्रमे

प्रथमः सर्गः

—※—

ततः प्रोवाच तच्छ्रुत्वा श्रीदामोदरपण्डितः ।
नवद्वीपे किमकरोल्लीलां लीलानिधिः प्रभुः ॥१॥
विस्तरेण वदस्वाद्य सर्वश्रुतिरसायनम् ।
ततोऽसौ वक्तुमारेभे मुरारिर्हर्षयन् द्विजम् ॥२॥
श्रूयतां महादाश्चार्य्यां कथा संक्षेपतो मम ।
नत्वा वक्ष्यामि देवेश चैतन्यचरणाम्बुजम् ॥३॥
चैतन्यचन्द्र तव पादनखेन्दुकान्ति-
रेकादशेन्द्रियगणैः सहजीवकोषम् ।
अन्तर्बहिश्च परिपूरय तस्य नित्यं
पुष्णातु नन्दयतु मे शरणागतस्य ॥४॥

उक्त वृत्तान्त को सुनकर श्रीदामोदरपण्डितवर्य्य ने कहा— लीलानिधि श्रीप्रभुने नवद्वीपमें अपर क्या लीला की, सर्वश्रुति रसायन उस लीलाकथा का कीर्त्तन आज आप करें, अनन्तर ब्राह्मण को आनन्दित करते हुये मुरारि कथन प्रारम्भ किये थे ॥१-२॥

सङ्क्षेपसे महदाश्चर्य्य कथाका श्रवण आप करें, श्रीचैतन्य चरणकमलों में प्रणाम कर लीला कथा का वर्णन मैं करूँगा ॥३॥

हे देवेश ! हे चैतन्यचन्द्र ! मैं शरणागत हूँ जीवकोष के सहित मेरी अन्तरिन्द्रिय वहिरिन्द्रिय को आप की चरणनखर कान्तिसे पुष्टकर मुझको आनन्दित करें ॥४॥

चैतन्यचन्द्र तव पादसरोजयुग्मं
दृष्ट्वापि ये त्वयि विभो न परेशबुद्धिम् ।
कुर्वन्ति मोहवशगा रसभावहीना-
स्ते मोहिता विततवैभवमायया ते ॥५॥
चैतन्यचन्द्र न हि ते विबुधा विदन्ति
पादारविन्दयुगलं कुत एव चान्ये ।
येषां मुकुन्द दयसे करुणार्द्रमूर्त्ते
ते त्वां भजन्ति प्रणमन्ति विदन्ति नित्यम् ॥६॥
नत्वा वदामि तव पादसहस्रपत्र-
माज्ञा विभो भवतु ते मम तत्र शक्तिः ।
भूयाद्यथा तव कथामृतसारपूर्णा-
वाणी वरेण्य नृहरे करुणामृताब्धे ॥७॥

हे चैतन्यचन्द्र ! आपके चरणनलिन युगल को देखकर भी हे विभो ! सब रस भावहीनमुग्धजननिकर आप के प्रति परेशबुद्धि स्थापन नहीं करते हैं वे सब आपकी विस्तृत माया वैभव से मोहित हैं ॥५॥

हे चैतन्यचन्द्र ! आप के पदारविन्द युगल को विबुधगण अवगत होने में समर्थ नहीं होते हैं, अपर जन की वार्त्ता ही कया है, हे करुणार्द्र मूर्त्ते ! हे मुकुन्द ! जिसके प्रति आप प्रसन्न होते हैं, वे सब आपका भजन करते हैं, आपको जानते हैं, आपको नित्य प्रणाम करते हैं ॥६॥

हे विभो ! आपके पादसहस्रपत्र को प्रणाम कर मैं निवेदन करता हूँ, उस विषय में आपकी आज्ञा हो, मेरी शक्ति वर्णन विषय में कुछ भी नहीं है, हे वरेण्य ! हे करुणामृताब्धे ! हे नृहरे ! आपके

आगत्य स्वगृहे कृष्णो हरेः प्रेमाश्रुलोचनः ।
स्वगृहे पाठयन्नित्यं ब्राह्मणान् करुणानिधिः ॥८॥
एकदा स्वगृहे सुप्तं रुदन्तं स्वसुतं शची ।
प्रोवाच विस्मिता साध्वी किमिदं त्वं विरोदिषि ॥९॥
नोवाच किञ्चित्तच्छ्रुत्वा मातरं प्रेमविह्वलः ।
श्रीमद्विश्वम्भरो नाथस्तदासौ चिन्तिताभवत् ॥१०॥
हरेरनुग्रहात् काले ज्ञात्वा सा प्रेमलक्षणम् ।
भक्तिं ययाचे गोविन्दे तां शची विनयान्विता ॥११॥
यत्र तत्र धनं प्राप मह्यं तद्दत्तवान् भवान् ।
प्रेमाख्यं किं धनं लब्धं गयायां देवदुर्ल्लभम् ॥१२॥
त्वन्मां प्रयच्छ ताताद्य यद्यस्ति करुणा मयि ।
यथा कृष्णरसाम्भोधौ विहरामि निरन्तरम् ॥१३॥

चरित कथामृत सार से मेरी बाणी परिपूर्णा हो, इस प्रकार कृपा आप करें ॥७॥

करुणानिधि हरि प्रेमाश्रुलोचन श्रीकृष्ण,— निज मन्दिर में आगमन करतः ब्राह्मणवृन्द को अध्यापन किये थे ॥८॥

एकदिन शची,–निजगृह में सुप्तरोदनपरायण पुत्र को देखकर विस्मिता होकर बोलीं, तुम क्यों रो रहे हो ? ९॥

प्रेम विह्वल श्रीविश्वम्भर माता के वचन को सुनकर भी प्रत्युत्तर नहीं दिये, उससे जननी की चिन्ता हो गई ॥१०॥

श्रीहरि के अनुग्रह से यथा समयमें जननी का ज्ञान श्रीहरि प्रीति का हुआ, उससे शची विनय युक्त होकर श्रीगोविन्दचरणों में भक्ति की प्रार्थना की ॥११॥

तुमने तो जहाँ जहाँ धन प्राप्त किया था, सब ही मुझको दिया है, किन्तु गयाधाम में देव दुर्लभ कौन धन लाभ किया है, हे तात !

इति तस्या वचः श्रुत्वा मातुः स्नेहादुवाच ताम् ।
वैष्णवानुग्रहान्मातस्तव तत् सम्भविष्यति ॥१४॥
तच्छ्रुत्वा हर्षिता साध्वी भक्तियुक्ता बभूव सा ।
श्रीमच्चैतन्यदेवोऽपि ब्राह्मणान् प्राह सादरम् ॥१५॥
मात्रा मे प्रार्थितः प्रेमा हरौ तच्चावधीयताम् ।
अस्मिन् यथा सा लभते हरिभक्तिं सुदुर्ल्लभाम् ॥१६॥
तच्छ्रुत्वोचुश्च ते सर्वे भविष्यति तवोदिता ।
भक्तिस्तस्या जगन्नाथे प्रेमाख्या मुनिदुर्ल्लभा ॥१७॥
तच्छ्रुत्वा श्रीशचीदेवी साक्षाद्भक्तिस्वरूपिणी ।
लब्धा हरौ दृढ़ां भक्तिं प्रेमपूर्णा बभूव ह ॥१८॥

यदि मेरे प्रति करुणा हो, मुझे उसको प्रदान करो, जिससे मैं निरन्तर श्रीकृष्ण प्रेमामृताम्बुधि में विहरण कर सकूँ ॥१२-१३॥

शचीदेवी की वाणी को सुनकर मातृस्नेह से आप्लुत अन्तः करण होकर माताके प्रति प्रभु कहे थे—हे मातः ! श्रीवैष्णवानुग्रह से आप में श्रीकृष्णप्रेमोदय होगा ॥१४॥

यह सुनकर साध्वी शची हर्षिता एवं भक्ति युक्ता हो गई । श्रीचैतन्यदेव ने भी आदर पूर्वक ब्राह्मणों को कहा ॥१५॥

माता ने श्रीहरिचरणारविन्दों में प्रेम भक्ति की प्रार्थना मेरे समीप में की, उक्त सुदुर्लभा हरिभक्तिलाभ उनका जिस प्रकार हो आप सब अवधारण करें ॥१६॥

यह सुन ब्राह्मणों ने कहा, आप के कथानुसार मुनि दुर्लभा प्रेमलक्षणा श्रीहरिभक्ति माता की होगी ॥१७॥

यह सुनकर साक्षात् भक्ति स्वरूपिणी श्रीशचीदेवी श्रीहरि चरणों में दृढ़ा प्रेमभक्ति प्राप्त कर प्रेमपूर्णा हो गईं ॥१८॥

ततो रोदिति स क्वापि नानाधारापरिप्लुतः ।
नासे च श्लेष्मधाराभ्यां विप्लुते संबभूवतुः ॥१९॥
विलुठन् भूतले देवः शुक्लाम्बरद्विजाश्रमे ।
निरन्तरं श्लेष्मधारामाकृष्याकृष्य दूरतः ॥२०॥
शुक्लाम्बरब्रह्मचारी क्षिपत्यनिशमेव हि ।
गौरचन्द्रे रसेनापि परिपूर्णः सदा शुचिः ॥२१॥
रोदिति स दिनं प्राप्य प्रबुध्य रजनीमुखे ।
दिवसोऽयमिति प्राह जना ऊचुरियं क्षपा ॥२२॥
एवं रजन्यां प्रेमार्द्रः सर्वां रात्रिं प्ररोदिति ।
प्रहरैकं दिवा याते ततोऽसौ बुबुधे हरिः ॥२३॥
तत प्राह कियद्रात्रिर्वर्त्तते प्राह तं जनः ।
दिवसोऽयमतिप्रेम्ना न जानाति दिनं क्षपाम् ॥२४॥

श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरि प्रेम परिप्लुत होकर विभिन्न सात्त्विक विकारों से विभूषित होकर रोदन करने लगे थे ॥१९॥

इस प्रकार शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के आश्रम में निरन्तर प्रेम विकार श्रीप्रभु का उपस्थित होता था, श्रीविश्वम्भरदेव भूमि में लुण्ठित होकर सात्त्विक भाव से विभूषित हो जाते थे ॥२०॥

शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी पवित्रान्तःकरण के थे एवं निरन्तर श्रीगौरचन्द्र की प्रीति से आप्लुत थे ॥२१॥

दिवस में रोदन करते करते सायं काल हो जाता था, उस समय प्रबुद्ध होने से आपका दिवसज्ञान होता था, उससे जनगण कह देते थे, इस समय रात्रिकाल है। इस प्रकार रजनी में आर्त्त होकर समस्त रात्रि रोदन करते थे, दिवस का एक प्रहर होने से प्रभु प्रबुद्ध होते थे ॥२२-२३॥

अनन्तर आप कहते थे, इस समय रात्रि कितनी है ? जनगण

तत प्राह कियद्रात्रिर्वर्त्तते प्राह तं जनः ।
दिवसोऽयमतिप्रेम्ना न जानाति दिनं क्षपाम् ॥२४॥
क्वचिच्छ्रुत्वा हरेर्नाम गीतं वा विह्वलः क्षितौ ।
पतति श्रुतिमात्रेण दण्डवत् कम्पते क्वचित् ॥२५॥
क्वचिद्गायति गोविन्द कृष्ण कृष्णेति सादरम् ।
सन्नकण्ठः क्वचित् कम्परोमाञ्चिततनुर्भृशम् ॥२६॥
भूत्वा विह्वलतामेति कदाचित् प्रतिबुध्यते ।
स्नात्वा कदाचित् पूजां स करोति जगतोपतिः ॥२७॥
निवेद्यान्नं भगवते ततो भुङ्क्ते तदन्नकम् ।
विप्रात् क्वचित् पाठयति रात्रौ गायति नृत्यति ॥२८॥
एवं बहुविधाकारं हरेः प्रेमा समादरात् ॥२९॥

कहते थे, इस समय दिन है, इस प्रकार श्रीकृष्णप्रेम विभोर होकर दिवानिशि का अनुसन्ध्यान प्रभु को नहीं रहता था ॥२४॥

कभी श्रीहरिनाम श्रवण कर विह्वल होकर धरणी में पतित हो जाते थे, श्रीहरिनाम श्रवण मात्र से ही अङ्ग में कम्प होता था, एवं दण्डवत भूतल में निपतित हो जाते थे ॥२५॥

कभी तो गोविन्द नामोच्चारण पूर्वक आदर पूर्वक कृष्ण कृष्ण गोविन्द कहकर गान करते थे, कभी कम्परोमाञ्च से तनु विभूषित हो जाता था ॥२६॥

कभी विह्वल हो जाते थे, कभी प्रबुद्ध हो जाते थे, एवं स्नान करके जगत्पति प्रभु देवपूजन में रत हो जाते थे ॥२७॥

श्रीभगवान् को नैवेद्यान्न निवेदन कर प्रसादी द्रव्य भक्षण करते थे, विप्रगण को अध्यापन कराते थे, निशाकाल में प्रेमविभोर होकर नृत्य गीत करते थे ॥२८॥

इस प्रकार अनेकविध श्रीहरिप्रीति का प्रकाशन कर लोकगुरु

कुर्वन् लोक गुरुर्लोकशिक्षां चक्रे स नित्यशः ।
स एव भगवान् कृष्णो लोकानुग्रहकाम्यया ॥३०॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
द्वितीयप्रक्रमे भावप्रकाशो नाम
प्रथमः सर्गः

लोकशिक्षा का प्रवर्त्तन करते थे, लोकसमूह के प्रति अनुकम्पा करने के निमित्त स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही इस प्रकार लीला करते हैं ॥२९-३०॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
द्वितीयप्रक्रमे भावप्रकाशो नाम
प्रथमः सर्गः

द्वितीयः सर्गः

—※—

श्रीवासपण्डितैः सार्द्धं तद्भ्रातृभिरलंकृतैः ।
गच्छन् पथि हरेर्वंशीनादश्रवणविह्वलः ॥१॥
पपात दण्डवद्भूमौ मोहितोऽभूत् क्षणं पुनः ।
रौति नानाविधं देवस्त्वचिरेण विबुध्यते ॥२॥
आशीर्युञ्जन् द्विजाग्रेषु प्रहसन् रुचिराननः ।
शिष्टैरुपेतो मुमुदे कदाचिल्लौकिकीं क्रियाम् ॥३॥
करोति कमलाध्यक्षो देहयात्रा प्रसिद्धये ।
नवद्वीपविलासञ्च दर्शयन् जगतीपतिः ॥४॥
श्रीवासपण्डितैः सार्द्धं श्रीरामेण महात्मना ।
तयोः पुर्य्यां मुकुन्देन वैद्येनान्येन स प्रभुः ॥५॥

भातृवृन्द समन्वित श्रीवासपण्डित्त के सहित श्रीप्रभु भ्रमण करते करते श्रीकृष्ण की वंशीध्वनि श्रवण कर विह्वल हो उठे थे ॥१॥

भूतल में दण्डवत् निपतित होकर तन्मय होगये थे, पुनर्बार प्रबुद्ध होकर विविध विलाप के सहित रोदन करने लगे थे ॥२॥

द्विजवृन्द के समीप में आशीर्वाद प्रार्थना कर एवं सहास्यवदन से हास्य विनोद को विस्तार कर शिष्टव्यक्तिगण के सहित प्रमुदित हुये थे. कदाचित् कमलाध्यक्ष प्रभु लौकिक क्रिया निष्पन्न करते थे, देहयात्रा निर्वाहक क्रिया का अनुष्ठान भी करते थे, जगत्पत्ति श्रीप्रभु नवद्वीप विलास को प्रदर्शन कर महात्मा श्रीरामपण्डित एवं श्रीवास

ननर्त्त च जगौ कृष्णगीतं हरिपरायणैः ।
रात्रौ रात्रौ दिवा प्रेम्ना पुलकाञ्चितविग्रहः ॥६॥
एकदा निजगेहे स वसन् प्रेमातिविह्वलः ।
वसामि कुत्र तिष्ठामि कथं मे स्यान्मतिर्हरौ ।७॥
इति विह्वलितं देवो नाम्ना तं प्राह सादरम् ।
हरेरंशमवेहि त्वमात्मानं पृथिवीतले ॥८॥
अवतीर्णोऽसि भगवन् लोकानां प्रेमसिद्धये ।
खेदं वा कुरु यज्ञोऽयं कीर्त्तनाख्यः क्षितौ कलौ ॥९॥
तत्प्रसादात् सुसम्पन्नो भविष्यति न संशयः ।
एवं श्रुत्वा गिरं देव्या हर्षयुक्तो बभूव सः ॥१०॥
कदाचिद्दैवयोगेन हरिर्दीनानुकम्पया ।
ययौ वैद्यमुरारेः स वाट्यां प्रेमार्द्रलोचनः ॥११॥

पण्डित् के सहित तथा मुकुन्द वैद्य के सहित उनके भवन में श्रीहरि कीर्त्तनपरायण जननिकर के सहित श्रीकृष्णलीलाकीर्त्तन एवं नर्त्तन करते थे, उस समय दिवा रात्र प्रेम से पुलकाञ्चित विग्रह हो जाते थे ॥३-४-५-६॥

एकदिन निजमन्दिर में अवस्थित होकर प्रेमातिविह्वल होकर कहने लगे, मैं कहाँ रहूँगा, कहाँ निवास करूँगा, श्रीहरिचरणों में मेरी प्रीति कैसे होगी ? इस प्रकार हरिनाम परायण होगये थे, उस समय आपने नभोवाणी को सुना, वह वाणी यह रही—"हे भगवान् ! आप अपने को श्रीहरि के अंश ही जाने, श्रीकृष्ण प्रेम प्रचारार्थ अवनीतल में आप अवतीर्ण हुये हैं, आप खेद न करें, यह कलिकाल है, क्षिति मण्डल में श्रीहरिनाम यज्ञ रूप कीर्त्तन का प्रवर्त्तन करें, श्रीकृष्ण की प्रसन्नता से उक्त यज्ञ सुसम्पन्न होगा, इस में संशय न करें" इस प्रकार दैवी वाणी को सुनकर प्रभु प्रसन्न हुये थे ॥७-१०॥

देवतागृहमध्ये संप्रविश्योपाविशद्विभुः ।
आप्लुतः प्रेमधाराभिर्निर्झरैरिव पर्वतः ॥१२॥
अहो मां दन्तयुग्मेन तुदत्येष महाबलः ।
बराहः पर्वताकार इत्युक्त्वापसरन् क्रमात् ॥१३॥
अहो मां हि तुदत्येष दशनैः शूकरोत्तमः ।
इत्युक्त्वापससाराशु पुनरेव महाप्रभुः ॥१४॥
ततः क्षणेनेश्वरत्वं भावेन दर्शयन् स्वयम् ।
जानुभ्यां भूमिमालम्ब्य करयुग्मेन स व्रजन् ॥१५॥
वर्त्तुलाम्बुजनेत्रेण हुङ्कारेणानुनादयन् ।
दधार दशनाग्रेण पैत्तलं जलपात्रकम् ॥१६॥

एकदिन दैवयोगसे प्रेमार्द्र लोचनहरि दीन जनों के प्रति करुणा परवश होकर वैद्य मुरारि के भवन में उपस्थित हुये थे ॥११॥

वहाँ जाकर देवमन्दिर में प्रविष्ट होकर उपवेशन किये थे, उस समय प्रभु निर्झरपरि शोभित पर्वत के समान प्रेमाश्रुधारा से आप्लुत होगये थे ॥१२॥

अहो, मुझ को महाबली पर्वताकार वराह दशन के द्वारा मुझ को व्यथित कर रहा है, यह कहकर क्रमशः प्रभु अपसृत होने लगे, पुनर्बार महाप्रभु कहने लगे—देखो,यह शूकरोत्तम मुझको दशनोंके द्वारा व्यथित कर रहा है, यह कहकर वहाँ से प्रभु निकल आये ॥१३-१४॥

अनन्तर स्वयं ईश्वर भाव को प्रकट कर जानु के द्वारा भूमि को अवलम्बन कर हस्तद्वय के द्वारा गमन करने लगे ॥१५॥

वर्त्तुलाम्बुज नेत्र से देखकर एवं हुङ्कार से मुखरित कर दशन के द्वारा पित्तल के जलपात्र को उठालिये थे ॥१६॥

क्षणमुन्मुखतां कृत्वा पश्चाद्धृत्वा तु पैत्तलम् ।
पात्रमूचे स्वरूपं मे वदस्वेति मुरारिकम् ॥१७॥
स प्रोवाच नमन् भूमौ विस्मितो हृश्य ईश्वरः ।
नाहं वेद्मि स्वरूपं ते भगवान् वनजेक्षण ॥१८॥
स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
इति गीतोक्तवचसा वदन्तं स पुनः पुनः ॥१९॥
ततस्तं भगवान् प्राह पुनः सुश्लक्ष्णया गिरा ।
किं मां जानाति वेदोऽयं वैद्यः प्राह स तं प्रभुम् ॥२०॥
वेदस्य शक्तिर्नास्ति त्वां वक्तुं गुह्योऽसि सर्वदा ।
तच्छ्रुत्वा भगवान् प्राह वेदो विड़म्बयत्यलम् ॥२१॥
मां वक्त्यपाणिपादेति वदन् स्मृत्वाब्रबीदिदम् ।
भगवान् वेदसारज्ञः सर्ववेदार्थनिर्म्मितः ॥२२॥

पित्तलपात्र धारण कर आपने मुरारि को कहा, "स्वरूप का वर्णन करो" ॥१७॥

मुरारि ने नमन् करके कहा "हे ईश्वर ! हे भगवन् ! हे वनजेक्षण ! मैं आपके स्वरूप को नहीं जानता हूँ ॥१८॥

हे पुरुषोत्तम ! 'आप स्वयं ही निज स्वरूप को जानते हैं इस गीतोक्त वचन को मुरारि ने पुनः पुनः कहा ॥१९॥

अनन्तर सुमधुर वचन से भगवान् उसको कहे थे,—वैद्य ! आप क्या मुझको नहीं जानते हैं ? वैद्यने कहा, 'प्रभु ! आप अतिशय निगूढ़ हैं. वेद भी आपको नहीं जान सकते हैं, यह सुनकर भगवान् बोले—वेद मुझको विड़म्वित करते हैं, यथेष्ट विड़म्वित करते हैं, कारण, वे सब अपाणिपाद, रूप में मेरा वर्णन करते हैं, इस प्रकार कहकर प्रभुने कहा–वेदज्ञ भगवान्ने सर्व वेदार्थ का निर्म्माण

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति विश्वं नहि तस्य वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥२३॥
इति वेदवचो देवो हसन्नेवाभ्यभाषत ।
नहि जानाति वेदो मामिति निश्चितमेव हि ॥२४॥
अम्बष्ठः प्राह भगवन् करुणां कर्त्तुमर्हसि ।
तं प्राह भगवान् देवः प्रेमा मयि दयामयः ॥२५॥
इत्युक्त्वा स स्मितमुखो जगाम निजमन्दिरम् ।
श्रीमान् विश्वम्भरो देवो हरिकीर्त्तनतत्परः ॥२६॥
अपरेद्युः पण्डितस्य श्रीवासस्य पुरे वसन् ।
व्याख्यां चकार श्लोकस्य वक्ष्यमाणस्य तच्छृणु ॥२७॥

किया है, आप सर्व वेद सारज्ञ हैं। यह कहकर गीतोक्त वचन को कहा अपाणिपाद होकर भी त्वरितगति से गमनशील एवं ग्रहणशील हैं, अचक्षुः होनेपर भी देखते हैं, अकर्ण होनेपर भी सुनते हैं, समस्त विश्व को आप ही जानते हैं, उनको जानने वाला कोई नहीं है, उनको अन्यजन पुराण पुरुष कहते हैं ॥२०-२१-२२-२३॥

हँस हँस कर श्रीप्रभु ने वेदवाणी का अभ्यास किया, और निश्चय किया, वेद मुझ को नहीं जानते हैं ॥२४॥

अम्बष्ठ ने कहा,— भगवान् ! मुझपर करुणा करो, देव ने प्रत्युत्तर में कहा, मेरेप्रति तुम्हारी प्रीति हो ॥२५॥

दयामय प्रभु स्मित वचन से निजमन्दिर को चलेगये, अपरदिन श्रीमान् विश्वम्भर देव, श्रीहरिकीर्त्तनरत होकर श्रीवासपण्डित के भवन में उपस्थित हुये थे, वहाँपर आपने एक श्लोककी व्याख्या की, आप श्रवण करें, यह श्लोक है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥२८॥
ना पुमानादिपुरुषः कलावस्त्येव रूपवान् ।
नामस्वरूपिणं तन्तु जानीहि स तु केवलम् ॥२९॥
वारत्रयं हरेर्नाम दृढ़ार्थं सर्वदेहिनाम् ।
"एव" कारश्च जीवानां पापानां नाशहेतवे ॥३०॥
सर्वतत्त्वप्रकाशार्थं "केवलं" मन्यते च हि ।
प्रारब्धकर्म्मनिर्वाणं कथ्यतेऽद्वैतवादिभिः ॥३१॥
भवेदिति च बोधार्थं कैवल्यं केवलं स्मृतम् ।
कृष्णप्रेमरसास्वादप्रापकं करुणामयम् ॥३२॥
तत्स्वरूपं हरेर्नाम योऽन्यदेव वदेत्पुमान् ।
तस्य नास्त्येव नास्त्येव गतिरित्यवदत् स्वयम् ॥३३॥

"हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्,
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा"

कलियुग में श्रीहरिनाम ही एकमात्र अवलम्बनीय है, श्रीहरि नामाश्रय व्यतीत अपरगति नहीं है, ॥२६-२७-२८॥

आदिपुरुष पुरुषोत्तम, कलि में सविग्रह प्रकट हैं; वह रूप भी श्रीनाम ही हैं, अतः उनको श्रीनाम स्वरूप ही जाने ॥२९॥

तीन बार हरिनाम का उच्चारण उक्त श्लोक में हुआ है, देहिमात्र के प्रति अवश्य कर्त्तव्यता सूचनार्थ ही उक्त उक्ति है, एव कारत्रय भी—जीवों के निखिल पाप नाशकत्व का सूचक है ॥३०॥

सर्वतत्त्व प्रकाशनार्थ ही केवल शब्द का तीनवार अभ्यास हुआ है, उसमें अद्वैत वादिगण प्रारब्ध कर्म नाशक रूपमें नामकी कल्पना करते हैं ॥३१॥

"भवेत्" क्रियापद को सूचित करने के निमित्त कैवल्य वाचक

इत्यसौ शूकरो ब्रुते सर्वदेवमयः पुमान् ।
इत्युक्त्वा नर्त्तनं चक्रे कीर्त्तनञ्च विशेषतः ॥३४॥
एतद्यः शृणुयान्नित्यं कीर्त्तयेद्वा समाहितः ।
हरौ प्रेमा भवेत्तस्य विपाप्ना च भवेद्ध्रुवम् ॥३५॥
श्रीमच्चैतन्यपादाब्जे प्रभुबुद्धिर्दृढ़ा भवेत् ।
अन्ते चैतन्यदेवस्य स्मृतिर्भवति शाश्वती ॥३६॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये द्वितीयप्रक्रमे
चैतन्यावतारवर्णने वराहवेशो नाम
द्वितीयः सर्गः

केवल शब्दोल्लेख हुआ है, उक्त स्वरूप ही श्रीहिरिनाम हैं, जो लोक इसका अन्यथा मनन करेगा उसकीगति नहीं है, इस तत्त्व को स्वयं प्रभुने कहा है, वराह उस वाक्य को ही कहते हैं आप सर्व वेद श्रीहरि हैं, यह कहकर नर्त्तन करने लगे, एवं विशेषकीर्त्तन भी किये ॥३२-३३-३४॥

एकाग्रमन से जो व्यक्ति इस प्रकरणका श्रवण करेगा वहनिष्पाप होगा एवं श्रीहरिचरणारविन्द में उसकी प्रीतिभक्ति होगी। श्रीचैतन्य चरणों में दृढ़ा प्रभुबुद्धि होगी। अन्तिम काल में श्रीचैतन्यदेव की ध्रुवा स्मृति शाश्वती होगी ॥३५-३६॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये द्वितीयप्रक्रमे
चैतन्यावतारवर्णने वराहवेशो नाम
द्वितीयः सर्गः

तृतीयः सर्गः

—※—

अथ प्रविष्टो निजवेश्मनि प्रभु-
बंभौ निशानाथसहस्ररोचिषा ।
उवाच चात्रैत्य वसन्ति के जना-
श्चतुर्म्मुखः षन्मुखपञ्चवक्त्रिणो ॥१॥
श्रीवासनामा द्विजवर्य्यसत्तमः
श्रुत्वावदत्तं विबुधाः समागताः ।
ब्रह्मेश्वरौ षड़्वदनादयः प्रभो
त्वां सेवितुं प्रेमरसामृताब्धिम् ॥२॥
ततः परदिने प्राप्ते शुद्धदेवो वरासने ।
उपविश्य स्वभक्तस्य गात्रे पद्भ्यां समास्पृशत् ॥३॥
श्रीवासपण्डिताद्यास्ते प्रणम्य शिरसा हरिम् ।
वब्रुस्तच्चरणे भक्तिं प्रेमरूपां सुदुर्ल्लभाम् ॥४॥

अनन्तर श्रीप्रभु निजमन्दिर में प्रविष्ट होकर सहसा कान्ति युक्त निशानाथ के समान शोभित हुये थे, पश्चात् आपने कहा, यहाँ षण्मुख, पञ्चमुख, चतुर्मुख का दर्शन हो रहा है ॥१॥

श्रवण करें पण्डितवर्य्य श्रीवास ने कहा,— विबुधगणों का आगमन यहाँपर हुआ है, ब्रह्मा महेश्वर, कार्त्तिक प्रभृति प्रेमरसाब्धि स्वरूप आपकी सेवा करने के निमित्त आए हैं ॥२॥

परदिन समागत होनेपर श्रीप्रभु वरासन में उपविष्ट होकर निजभक्तवृन्दों के शरीर का स्पर्श निजचरणो से किये थे ॥३॥

ददौ तेभ्यो वरान् देवो यथेष्टान् भक्तवत्सलः ।
शुक्लाम्वरब्रह्मचारी तमूचे पुरुषर्षभम् ॥५॥
भगवन् मथुरां द्वारावतीं गत्वातिदुःखितम् ।
मां ज्ञात्वा देहि मे प्रेमभक्तिं तं प्राह स प्रभुः ॥६॥
जम्बुकाः किं न गच्छन्ति तत्र किं तेन मे भवेत् ।
तच्छ्रुत्वैवापतद्भूमौ तमुवाच जनार्द्दनः ॥७॥
भवत्वद्यचैव ते प्रेमा तदा तत्क्षणमेव हि ।
रुरोद चरणे विष्णोर्निपत्य प्रेमविह्वलः ॥८॥
ततस्ते हृष्टमनसस्तेन सार्द्धं मुदान्विताः ।
जगुः कृष्णस्य गीतानि नामानि च मुहुर्मुहुः ॥९॥

श्रीवासपण्डित प्रभृतिओं ने अवनतमस्तक से श्रीचरणों में प्रणति अर्पण पूर्वक प्रार्थना की— 'आपके चरणयुगल में देवदुर्लभ भक्ति प्रदान आप करें ॥४॥

भक्तवत्सल प्रभुने उनसब को यथेष्ट बर प्रदान किया, उससमय शुक्लाम्वर ब्रह्मचारी पुरुषश्रेष्ठ प्रभुको कहे थे ॥५॥

हे भगवन् ! मथुरा, द्वारावती की यात्रा कर मैं अतिशय क्लिष्ट होगया हूँ मुझको आप दुःखी जानकर प्रेमभक्ति प्रदान करें, उत्तर में श्रीप्रभुने कहा— वहाँपर क्या जम्बुकगण भ्रमण नहीं करते हैं, तीर्थभ्रमण करने से मेरा क्या होगा ? यह सुनते ही ब्रह्मचारी भूतल में गिरपड़ा, उसको भूमि में निपतित देखकर जनार्दन प्रभुने कहा— ॥६-७॥

'श्रीकृष्णमें प्रीतिभक्ति हो' कहने के साथ ही शुक्लाम्वर ब्रह्मचारी के हृदय में प्रेम का आविर्भाव हुआ, प्रेम विह्वल होकर ब्रह्मचारी श्रीविष्णु के चरणों में निपतित होकर रोदन करने लगे ॥८॥

गदाधरो महाप्राज्ञो ब्राह्मणः सत्कुलोद्भवः ।
प्रेमभक्तश्च तत्पादसन्निकर्षेऽभितिष्ठति ॥१०॥
तेन सार्द्धं रजन्यां स तिष्ठन्नूचे शुभाक्षरम् ।
दातव्यं भवता प्रातर्वैष्णवेभ्यः प्रसादकम् ॥११॥
इत्युक्त्वा गात्रमाल्यानि ददौ तस्य करे हरिः ।
ततः प्रभाते विमले ते सर्वे समुपागताः ॥१२॥
यस्मै यस्मै च यद्दत्तं तत्तस्मै सम्प्रदत्तवान् ।
ततस्ते हृष्टमनसः स्नात्वा सुरनदीजले ॥१३॥
पूजयित्वा जगन्नाथं नैवेद्यं विनियुज्य च ।
पुनस्तं देवदेवेशमाजग्मुर्मुदिताशयाः ॥१४॥
गदाधरः प्रत्यहं तं चन्दनेनानुलेपनम् ।
कृत्वा माल्यादि गात्रेषु ददाति सततं मुदा ॥१५॥

परिकरवृन्द उसको देखकर आनन्दित हुये एवं सब एकत्र होकर श्रीकृष्णकीर्त्तन करने लगे ॥९॥

ब्राह्मग सत्कुलोद्भव महाप्राज्ञ प्रेमभक्त श्रीगदाधर, श्रीप्रभु के चरण सन्निधान में सर्वदा रहते थे ॥१०॥

रात्रि में श्रीप्रभु ने श्रीगदाधर को मधुरवाणी से कहा, "प्रातः काल में आप वैष्णववृन्द को प्रसादीवस्तु प्रदान करें ॥११॥

इस प्रकार कहकर श्रीप्रभु ने निज अङ्ग से निर्माल्य स्वरूप माल्यादि लेकर श्रीगदाधर को प्रदान किया, अनन्तर प्रातःकाल में वैष्णववृन्द का आगमन होनेपर जिन के निमित्त जो वस्तु प्रभुने दिया था, श्रीगदाधर ने उनको तत् समस्त प्रदान किया, अनन्तर परिकर वृन्द आनन्दित होकर सुरनदीवारि में अवगाहनस्नान करके श्रीजगन्नाथ का अर्चन के अनन्तर नैवेद्यग्रहण के पश्चात् आनन्दचित्त से देवदेवेश श्रीमन्महाप्रभु के समीप में उपस्थित हुये थे ॥१२-१३-१४॥

शयनीये गृहे शय्यां कृत्वा तत्सन्निधौ मुखम् ।
स्वपिति श्रद्धया युक्तं शृणु तस्यामृतं वचः ॥१६॥
यथा क्वचिद्व्रजे रत्नमन्दिरं कृष्णसन्निधौ ।
शय्यां विधाय श्रीराधा स्वपिति प्रेमसंप्लुता ॥१७॥
सायाह्ने मुदितो देवस्तैः सार्द्धं कीर्त्तनोत्सुकः ॥१८॥
तेऽपि संकीर्त्तनानन्दमत्ताश्च ननृतुर्जगुः ।
श्रीमद्विश्वम्भरेणापि परमानन्दनिर्वृताः ॥१९॥
कदाचिदावृते व्योम्नि घनैर्गम्भीरनिस्वनैः ।
विद्योतिते ततस्तावत् साकं च स्तनयित्नुभिः ॥२०॥
वैष्णवा दुःखिताः सर्वे विघ्नोऽयं समुपस्थितः ।
मेघा हरेः कीर्त्तनकेऽभवंश्चिन्तापरा इति ॥२१॥

प्रत्यह श्रीगदाधर— श्रीप्रभुके श्रीअङ्ग में चन्दनानुलेपन एवं माल्यादि प्रदान करते थे ॥१५॥

शयनीय ग्रह में श्रीप्रभुके सान्निध्य में हर्ष से शयन करते थे, श्रद्धा पूर्वक उनका अमृत चरित्र श्रवण करें ॥१६॥

जिस प्रकार ब्रजके रत्नमन्दिरस्थ श्रीकृष्ण के सन्निधिमें शय्या निर्माण कर प्रेमप्लुतान्तःकरण से श्रीराधा शयन करती है ॥१७॥

सायंकाल में परिकरवृन्द के सहित श्रीकृष्णसङ्कीर्त्तनमहोत्सव आनन्दित होकर करते थे ॥१८॥

परिकरवृन्द भी सङ्कीर्त्तनानन्द से विभोर होकर श्रीविश्वम्भर के सहित नृत्यगीत करते थे ॥१९॥

एकदिन दैवयोग से गगन मेघाच्छन्न होगया, गम्भीरगर्जन के सहित विद्युत् दिक्समूह को उद्भासित करने लगी ॥२०॥

श्रीहरिकीर्त्तन में विघ्नसमुपस्थित देखकर वैष्णववृन्द दुःखित एवं चिन्तित हुये थे ॥२१॥

तदा तस्मिन् समायातो गृहीत्वा मन्दिरं हरिः ।
सुरान् कृतार्थयन् कृष्णं जगौ स स्वजनैः सह ॥२२॥
ततो मरुद्भिर्मेघौघाः खण्डितास्ते दिगन्तरम् ।
भेजुर्बभूव विमलं नभश्चन्द्रांशुरञ्जितम् ॥२३॥
ततः संकीर्त्तनपरैः साधुभिः सह स प्रभुः ।
ननर्त्त पादकटकै रणच्चरणपङ्कजः ॥२४॥
विप्रसाध्वीमुखाम्भोजघनध्वनिनिनादिते ।
नन्दयत्यतिपुष्पौघगन्धोन्मादितदिङ्मुखे ॥२५॥
खेऽवस्थिते सुरगणे बभूव महदुत्सवः ।
श्रीकृष्णकीर्त्तनानन्दः सर्वश्रुतिमनोहरः ॥२६॥
येऽनेकजन्मकृतपुण्यसमुद्रसंख्या-
स्ते कृष्णदेवसममेव नितान्तशान्ताः ।

उस समयमें ही श्रीविश्वम्भर हरि का आगमन हुआ, देवगण को कृतार्थ करने के निमित्त सज्जनगण के सहित श्रीप्रभु ने श्रीकृष्ण सङ्कीर्त्तन प्रारम्भ कर दिया ॥२२॥

तदनन्तर वचन के द्वारा मेघसमूह खण्ड विखण्डित होकर दिग्दिगन्तर में चलेगये, आकाश निर्मल हुआ, एवं चन्द्रांशु से रञ्जित हुआ ॥२३॥

अनन्तर सङ्कीर्त्तनपरायण साधुवृन्द के सहित श्रीप्रभु— पाद कटक को कम्पित कर नृत्य किये थे ॥२४॥

पतिव्रता रमणीगणों की मङ्गल मयी मुखध्वनिसे सङ्कीर्त्तनस्थल मुखरित हो उठा, एवं पुष्प गन्ध माल्य प्रभृति के द्वारा आमोदित हुआ ॥२५॥

सुरगण गगन में विराजित होकर सङ्कीर्त्तनमहोत्सव दर्शन करने लगे, श्रीकृष्णकीर्त्तनानन्द सर्वश्रुतिमनोहर है ॥२६॥

नृत्यन्ति हर्षपुलकाश्रुभिरावृताङ्गा
देवा यथाचलभिदा सुखिनो दिविष्ठाः ॥२७॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
द्वितीयप्रक्रमे मेघनिवारणं नाम
तृतीयः सर्गः

जो जन अनेक जन्मपर्य्यन्त पुण्य सञ्चय किये हैं, वे ही परम शान्त होकर श्रीकृष्णचन्द्र के सहित हर्षपुलक युक्त होकर नृत्य करते हैं, स्वर्गस्थ देववृन्द जिस प्रकार देवराज के सहित आनन्द विभोर होते हैं ॥२७॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृतेमहाकाव्ये
द्वितीयप्रक्रमे मेघनिवारणं नाम
तृतीयः सर्गः

चतुर्थः सर्गः

—※—

तत्र शुक्लाम्बरो नाम द्विजो रोदिति नित्यशः ।
पतित्वा दण्डवद्‌भूमौ वदन्नेवं मुहुर्मुहुः ॥१॥
नवद्वीपस्तु मधुरा कृता तात त्वयाधुना ।
इति संविलपन् भूमौ रोदिति प्रेमविह्वलः ॥२॥
वयस्यांशे विनिक्षिप्तकरो नृत्यति कर्हिचित् ।
क्वचिद्रोमाञ्चिततनुः कल्पते परमः पुमान् ॥३॥
क्वचिदीश्वरभावेन भूतेभ्यः प्रददौ वरान् ।
एवं नानाविधाकारैर्नृत्यन् लोकानशिक्षयत् ॥४॥
कदाचित् स्वजनस्कन्धमारुह्य हर्षयन् विभुः ।
स्वजनान् क्रीड़ति प्रीतः क्षणदायां कृतक्षणः ॥५॥

वहाँपर शुक्लाम्बर नामक द्विज—दण्डवत् भूमि में निपतित होकर पुनः पुनः इस प्रकार कहकर रोदन करने लगे ॥१॥

हे तात ! आपने नवद्वीप को अधुना सुमधुर किया है, इस प्रकार विलाप कर प्रेमविह्वल होकर रोदन करने लगे ॥२॥

परम पुरुष श्रीहरि, कदाचित् वयस्य के स्कन्धदेश में हस्त स्थापन करतः नृत्य करते हैं, एवं कचित् रोमाञ्चिततनु से शोभित होते हैं ॥३॥

कभी ईश्वरभाव से भृत्यवर्ग को वरप्रदान करते थे इस प्रकार नानाविध प्रेमविकार के द्वारा लोकों में शिक्षा प्रचार करते थे ॥४॥

कदाचित् स्वजन के स्कन्ध में आरोहण पूर्वक विभु स्वजनगण को आनन्दित करते थे एवं रात्रि में भक्तगण को श्रीहरिकीर्त्तन से सुखी करते थे ॥५॥

अथापरदिने भूमावुपविश्यानुनादयन् ।
करतालैर्दिशः प्रोचे पश्य शैलुषवेष्टितम् ॥६॥
पश्य पश्याद्भुतं वीजं भूमौ संरोपितं मया ।
पश्य पश्याङ्कुरो जातो निमिषेण तरुः पुनः ॥७॥
जातः पश्यास्य पुष्पौघं पश्य पश्य फलं पुनः ।
जातं पश्य फलं पक्वं तस्य संग्रहणं पुनः ॥८॥
फलं वृक्षोऽपि नास्त्येव क्षणान्मायाकृतं यतः ।
प्रान्तरे तु कृतं ह्येवं न किञ्चिदपि लभ्यते ॥९॥
ईश्वरस्याग्रतः कृत्वा धनं विपुलमश्रुतं ।
एवं मायाकृतं कर्म्मं सर्वञ्चेदमनर्थकम् ॥१०॥
ईश्वरार्थं कृतं ह्येतत् सर्वं सार्थकतामियात् ।
तस्मादीश्वरसेवार्थं सर्वं कर्म्माचरेत् सुधीः ॥११॥

अपरदिन भूतल में उपविष्ट होकर करतालि के द्वारा चतुर्दिक को शब्दायमान करते हुए नटवृन्द को कहे थे,– देखो, मैंने अद्भुत वीज का रोपण भूमिमें किया है; देखो, निमेषमात्र से ही वीज से अङ्कुर हुआ, एवं उससे तरु सम्पन्न हो गया । देखो, पुष्पित हुआ, अनन्तर फल भी आ गया, फल पक भी गया ॥६-७-८॥

उसको संग्रह करने के निमित्त पुनर्बार प्रभुने कहा— फल एवं वृक्ष, कुछ भी नहीं है, यह सब मायारचित है, जलशून्य स्थान में मैंने उसको दिखलाया था ॥९॥

ईश्वर के सम्मुख में अश्रुतविपुल धन का संग्रह किया गया है, यह सब मायाकृत है, एवं अनर्थकारि है, ईश्वर के निमित्त धन समूह एकत्र करनेपर सब सार्थक होते हैं अतएव सुधीव्यक्ति ईश्वर की सेवा के निमित्त समस्त कर्माचरण करें ॥१०-११॥

ततः प्रोवाच भगवान् मुकुन्दाम्बष्ठमग्रतः ।
स्थितं प्रेक्ष्य त्वया किं नु ब्रह्मविद्या निजोच्यते ॥१२॥
इत्युक्त्वा स पपाठेदं श्लोकं स्वयमरिन्दमः ।
श्रीरामनामाहात्म्यं गूढ़वेदार्थसंग्रहम् ॥१३॥
रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दचिदात्मनि ।
इति रामपदेनाऽसौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥१४॥
पुनः प्रोक्तं भगवता तं वैद्यमनुशासता ।
चतुर्भुजस्य यद्ध्यानं तद्वरं परिकीर्त्तितम् ॥१५॥
द्विभुजस्य तु यद्ध्यानं तन्नुयनमिति ते मतम् ।
परमेश्वरभेदेन केवलं दुःखमेव हि ॥१६॥
यद्यात्मनो हितं वेत्सि तदा यत्नपुरःसरम् ।
तद्विभुजध्यानमेव त्वं कुरु सर्वफलप्रदम् ॥१७॥

अनन्तर भगवान्, अम्बष्ठ मुकुन्द को सम्मुख में अबस्थित देखकर कहे थे,—तुमने कचा ब्रह्मविद्या को अपनाया है ? १२॥

यह कहकर उन्होंने एक श्लोक को पढ़ा, गूढ़ वेदार्थ संग्रह श्रीरामनाममाहात्म्यमें वर्णित हैं,सत्यानन्द अनन्तचिदात्मामें योगीगण आसक्त होते हैं, अतः रामशब्दसे परब्रह्म का बोध होता है ॥१३-१४॥

पुनर्बार वैद्य को शासन करते हुये भगवान् ने कहा—चतुर्भुज का ध्यान श्रेष्ठ है, द्विभुजका ध्यान उससे न्यून है, यहमत तुम्हारा है, परमेश्वर में भेद बुद्धिस्थापन करने से केवल दुःखलाभ ही होता है, ॥१५-१६॥

यदि तुम अपना मङ्गल चाहते हो तो यत्न पूर्वक सर्व फलप्रद द्विभुज का ध्यान करो ॥१७॥

ततः प्रोवाच तं देवं मुकुन्दो नम्रकन्धरः ।
गौराङ्गचरणाम्भोजमधुपो गायकोत्तमः ॥१८॥
स्नातं मया सुरनदीपयसि प्रकामं
श्रीवैष्णवाङ्घ्रिरजसाङ्गमलङ्कृतञ्च ।
तत्पादपद्मवरछत्रममुं मयाद्य
मूर्द्धनि प्रयच्छ कुरु दास्यपदेऽभिषेकम् ॥१९॥
एवं निशम्य तद्वाकचं तस्य मुर्द्धनि पदाम्बुजम् ।
दत्तवान् भगवांस्तुष्टः सहर्षोऽभूत्तदैव सः ॥२०॥
रोमाञ्चिततनुर्धीमान् अश्रुपूर्णविलोचनः ।
ततो मुरारिं प्रोवाच भगवानम्बुजेक्षणः ॥२१॥
कथं तं कृतवान् वैद्य गीतञ्चाध्यात्मतत्परम् ।
जीविते यदि वाञ्छास्ति प्रेम्नि वा ते हरेः स्पृहा ॥२२॥

अनन्तर नतमस्तक होकर श्रीगौराङ्ग चरणाम्बुज मधुप गायकोत्तम मुकुन्द ने कहा— ॥१८॥

मैंने सुरनदी के पवित्र वारि में यथेष्ट स्नान किया एवं श्रीवैष्णवों की चरणरेणु से मस्तकको अलङ्कृत्त भी किया, आप के पादपद्म रूप उत्तम छत्र को आज प्राप्त किया है, आप स्वीय चरणकमल का स्थापन मेरे मस्तक में करें, एवं दास्य प्रदान करें ॥१९॥

उनके वाकच को सुनकर भगवान्सन्तुष्ट होकर उनके मस्तकमें स्वयं पदाम्बुज स्थापन किये थे। उससे मुकुन्द भी आनन्दित एवं रोमाञ्च कम्पाश्रुसात्त्विक भावों से विभूषित हुये थे, अनन्तर कमल नयन भगवान् मुरारि को कहे थे— वैद्य ! तुमने कैसे गीताकी व्याख्या अध्यात्म पर की ? जीवित रहना यदि अभीष्ट हो अथवा श्रीहरि प्रीतिमें यदि स्पृहा हो, तो, अध्यात्म की आसक्ति को छोड़कर

तदा गीतं परित्यज्य कुरु श्लोकं हरेः स्वयम् ।
तच्छ्रुत्वा प्राह तं देवं विनयेन भिषक् सुधीः ॥२३॥
श्रीमन्नारायणो नाम गुप्तं स्नेहार्णवं गुरुम् ।
यथा तवारतारोऽयं वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥२४॥
तथाज्ञां गुरुदेवेश तच्छ्रुत्वा सस्मिताननः ।
प्राह तं भगवानस्य तथैव सम्भविष्यति ॥२५॥
यद्वदिष्यत्यसौ वैद्यस्तत् सुसत्यं भविष्यति ।
एतच्छ्रुत्वा हरेर्वाक्यं नोचे किञ्चिद्भयात्तु सः ॥२६॥
मुरारि र्न मुदे तत्र श्रीमच्छ्रीवासपण्डितः ।
शुद्धस्वाचारनिरतो हरिसेवापरायणः ॥२७॥
प्रातः स्नात्वा हरेः पूजां कृत्वा सम्यग्विधानतः ।
उपासनां तस्य नित्यं करोति भ्रातृभिः सह ॥२८॥

श्रीहरि की स्तुति करो, यह सुनकर विनयावनत होकर भिषक्सुधीने स्नेहाब्धिगुरु को कहा था,— आप साक्षात् श्रीनारायण स्वरूप हैं, हे गुरुदेवेश ! आपकी जैसी आज्ञा होगी मैं वैसा ही करूँगा,श्रीभगवान् बोले— उस प्रकार ही होगा, वैद्य, तुम जो कुछ चाहते हो सत्य ही वे सब होंगे। इस प्रकार प्रभु के वाक्य को सुनकर भय से वैद्य ने कुछ भी नहीं कहा ॥२०-२१-२२-२३-२४-२५-२६॥

श्रीनवद्वीप में श्रीहरिसेवापरायण शुद्धाचरणनिरत श्रीवास पण्डित निवास करते थे, प्रतिदिन प्रातःस्नान करने के बाद यथाविधि भ्रातृगण के सहित श्रीहरिकीर्त्तन उपासना प्रभृति का अनुष्ठान करते थे, भ्रातृगण के सहित श्रीहरिनाम गान करते थे, श्रीप्रभु को यथा विधि प्रीति पूर्वक स्नान करवाकर उत्तम भोज्यद्रव्य अर्पण करते थे, इस प्रकार द्विजश्रेष्ठ श्रीवास— फलदुग्ध प्रभृति के द्वारा निरन्तर

साद्धँ गायन् हरेर्नाम गीतानि च मुदान्वितः ।
स्नापयंस्तं शुभैरद्‌भिरर्पयन् द्रव्यमुत्तमम् ॥२९॥
भोजयन् फलगव्येन हृष्टात्मा द्विजपुङ्गवः ।
तस्यानुजः श्रिया युक्तो रामः स भ्रातृवत्सलः ॥३०॥
प्रियश्च सर्वभूतानां ज्येष्ठसेवापरायणः ।
हरिसेवां सह भ्रात्रा करोत्यनुदिनं सुधीः ॥३१॥
श्रीवासरामौ नृहरेः सदा प्रियौ
ताभ्यां सह क्रीड़ति चक्रपाणिः ।
वाटयां तयोरेव ननर्त्त देवा
यर्थाषिसङ्घे कपिलो महात्मा ॥३२॥
अन्येद्युचरध्यापयदप्रमेय
शिष्यान् वदेत्तं द्विजसूनुरेकः ।
श्रीकृष्णनामा खलु मायया स्या-
दित्थं समाकर्ण्य वचः खलस्य ॥३३॥

श्रीहरि की सेवा करते थे । उनका भ्राता राम, भ्रातृवत्सल थे, प्राणीमात्र की मङ्गल कामना में रत होकर श्रेष्ठ भ्राताकी सेवा में रत थे, सुखी श्रीवास,उक्त भ्राता के सहित प्रतिदिन श्रीहरिसेवा करते थे ॥२७-२८-२९-३०-३१॥

नृहरि के सदाप्रिय श्रीवास एवं श्रीराम के सहित चक्रपाणि प्रभु निरन्तर क्रीड़ा करते थे, उनके घरमें निरन्तर देव नृत्य करते थे, जिस प्रकार सिद्धसङ्ग में महात्मा कपिलदेव आनन्दित रहते थे ॥३२

अपर एकदिन प्रभु शिष्यगण को शास्त्राध्ययन करा रहे थे, उस समय एक बालक ने कहा— श्रीकृष्णनामक भगवान् माया द्वारा रचित होते हैं, खल का कथन सुनकर प्रभुने कर्णद्वय को अङ्गुलि के

कर्णौ कराभ्यां विनिधाय देवः
शिष्यैरुपेतो द्युनदीं जगाम ।
स्नात्वा सचेलः सह शिष्यवर्गै-
रुपागमत् केलिनिधिं गृहं स्वम् ॥३४॥
पठेद्य इत्थं द्युनदीनिमज्जनं
हरेर्लभेत् सोऽपि क्रतोः फलं नरः ।
हरौ च भक्तिं विमलां स्मृतिञ्च
प्राप्नोति शृण्वन्नपि तत्फलं नरः ॥३५॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
द्वितीयप्रक्रमे द्युनदीमज्जनं नाम
चतुर्थः सर्गः

द्वारा बद्ध किया एवं वहाँ से निकल कर गङ्गा में समस्त शिष्यवृन्द के सहित अवगाहनस्नान कर गृह में प्रत्यावर्त्तन किया ॥३३-२४॥

जो जन श्रीप्रभु का गङ्गास्नानवृत्तान्त का पाठ करता है, वह क्रतु का फल लाभ करता है, श्रीहरिचरणों में विमला भक्ति एवं श्रीहरिस्मृति की प्राप्ति श्रीचैतन्यचरित श्रवणकारी की होती है ॥३५॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
द्वितीयप्रक्रमे द्युनदीमज्जनं नाम
चतुर्थः सर्गः

पञ्चमः सर्गः

—※—

ततो जगाम पुर्य्यां स श्रीवासादिभिरन्वितः ।
अद्वैताचार्य्यवर्य्यस्य भक्तस्य दर्शनोत्सुकः ॥१॥
गच्छन् पथि मुहुर्गायन् हरेर्गीतं मुदान्वितः ।
क्वचिन्नृत्यति नृत्यद्भिः स्वजनैः सह स प्रभुः ॥२॥
ततो गत्वा पपातोर्व्यामाचार्य्यस्य समीपतः ।
दण्डवत् वैष्णवं विष्णुं मन्यमानोऽनुशिक्षयन् ॥३॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थायाचार्य्यस्तु तत्समीपतः ।
गत्वा पपात भूमौ स सम्भ्रमेण जगद्गुरुः ॥४॥
अन्योन्यालिङ्गनं कृत्वा प्रेमोत्कण्ठौ बभूवतुः ।
कम्पाश्रुपुलकाद्यैस्तु परिपूर्णाश्रुविग्रहौ ॥५॥

अनन्तर श्रीप्रभु श्रीवास प्रभृति के सहित अद्वैत आचार्य्यवर्य्य को सन्दर्शन करने के निमित्त उनके भवन को गये थे ॥१॥

भक्तदर्शनोत्सुक प्रभु गमन समय में श्रीहरिनामकीर्त्तन मुहुर्मुहु आनन्द से करते थे, कभी प्रेमविभोर भक्तवृन्द नृत्य करने से उनके सहित श्रीप्रभु भी नृत्य करते थे ॥२॥

श्रीआचार्य्य भवनमें उपस्थित होकर प्रभु, जन शिक्षार्थ वैष्णव एवं विष्णुके समीपमें दण्डवत् प्रणाम करना ही विधेय है अतः आचार्य्य के समीप में दण्डवत् भूतल में पतित होकर प्रणाम किये थे ॥२॥

उनको देखकर आचार्य्य आसन से ससम्भ्रम उठकर श्रीप्रभुके समीप में दण्डवत् भूमि में गिरगये, जगद्गुरु एवं श्रीप्रभु परस्पर को

उपविश्य ततो देवः कथां चक्रे हरेः प्रियाम् ।
मनोहरां पापहरां मुक्तिप्रेमफलप्रदाम् ॥६॥
ततोऽद्वैतोऽब्रवीद्वाक्यं भक्तिर्नास्ति कलौ क्षितौ ।
इति मूढ़ा वदन्ते ये ते पश्यान्त्वद्य चक्षुषा ॥७॥
तच्छ्रुत्वा भगवानाह किञ्चित् प्रस्फुरिताधरः ।
भक्तिश्चेन्नास्ति नृहरेः किं तदास्ति क्षिताविह ॥८॥
भक्तिरेवास्ति संसारे सर्वसारा सुखावहा ।
सा नास्तीति च यो ब्रुते जन्म तस्य निरर्थकम् ॥९॥
तस्मात् कृष्णे भक्तिरास्ते सुप्रसन्ना सनातनी ।
यस्य स्यात् कर्मबन्धश्च नश्येत् प्रेमा हरौ भवेत् ॥१०॥

आलिङ्गन कर प्रेमोत्कण्ठित हुये थे, एवं कम्पाश्रु पुलकादि से विभूषित विग्रह हुये थे ॥४-५॥

अनन्तर आसन में उपवेशन कर मुक्ति प्रेम फलप्रद पापहरण कारी मनोहर श्रीहरिकथा कहने लगे ॥६॥

अनन्तर श्रीअद्वैत प्रभुने कहा—मूढ़जन कहते हैं कि—कलियुग में पृथिवी में भक्ति नहीं है, किन्तु वे लोक निज नयनों से देखे कि कलि में भक्ति है अथवा नहीं ? ७॥

सुनकर किञ्चित् प्रस्फुरिताधर होकर प्रभुनें कहा,—इस भूतलमें पुरुषोत्तम की भक्ति यदि नहीं है, तो क्या है ? इस संसार में सर्वसार सुखावहा भक्ति ही है, जो लोक कहते हैं कि— जगत् में श्रीहरिभक्ति नहीं है, उसका जन्म निरर्थक है ॥८-९॥

अतएव जिसका कर्मबन्ध विनष्ट होने का होता है, उसकी श्रीकृष्णचरणों में सुप्रसन्ना सनातनी भक्ति होती है, उससे प्रेमोदय होता है ॥१०॥

ततोऽवदच्छ्रीनिवासो दृष्ट्वा कश्चिदवैष्णवम् ।
द्विजं प्रस्फुटमेवाग्रे हरेः संसदि दुःखितः ॥११॥
विघ्नं कृष्णोत्सवे कर्त्तुं द्विजोऽयं समुपागतः ।
तच्छ्रुत्वा भगवान् प्राह नायमत्रागमिष्यति ॥१२॥
नास्त्यत्र तव विप्रेन्द्र चिन्ता काचित् सुखी भव ।
नायातस्तत्र विप्रोऽसौ विष्णुमायाविमोहितः ॥१३॥
स्वयं शान्तिपुरं गत्वा दृष्ट्वाऽद्वैतमहेश्वरम् ।
ऐश्वर्य्यं कथयन् कृष्णपूर्णविशो बभूव ह ॥१४॥
ततः क्रोड़परो भूत्वा श्रीवासस्यांसदेशके ।
दत्वा सव्ये सव्यबाहुं वामं प्रादात् गदाधरे ॥१५॥
श्रीरामपण्डिस्याङ्के दत्वा पादाम्बुजं हरिः ।
तैः सार्द्धं मुमुदे श्रीमदद्वैताचार्य्यसन्निधौ ॥१६॥

उस समय श्रीवास एक अवैष्णव को देखकर बोले थे— यह ब्राह्मण श्रीकृष्णसङ्कीर्त्तन महोत्सव में विघ्न उत्पन्न करने के निमित्त यहाँपर आये हैं, इससे मैं अत्यन्त दुःखित हूँ, यह सुनकर श्रीभगवान् बोले— यह द्विज यहाँपर पुनर्बार नहीं आयेगा ॥११-१२॥

हे विप्रेन्द्र ! आप चिन्ता न करें, आप सुखी बनें । विष्णुमाया से मुग्ध होकर यह विप्र फिरसे नहीं आयेगा ॥१३॥

श्रीप्रभु ने शान्तिपुर में जाकर श्रीअद्वैतमहेश्वर को देखा, एवं ऐश्वर्य्य को कहते कहते पूर्ण कृष्णावेश को प्राप्त किया, ॥१४॥

अनन्तर श्रीवास के अंसदेश में दक्षिणबाहु एवं वामबाहु श्रीगदाधर के स्कन्धदेश में स्थापन कर पदाम्बुज द्वय श्रीरामपण्डित के अङ्क में स्थापन कर श्रीअद्वैत आचार्य्य के सान्निध्य में हर्ष से श्रीहरि विराजित हुये थे ॥१५-१६॥

तत्र भुक्त्वा वरान्नं स चन्दनेनानुलेप्य च।
गात्राणि हर्षयन् लोकं जगौ कृष्णं ननर्त्त च ॥१७॥
आचार्य्यो बुबुधे पूर्णमात्मानमाशिषा बुधः।
दृष्ट्वा श्रीगौरचन्द्रस्य प्रेमानन्दमहोत्सवम् ॥१८॥
आचार्य्येण समं कृष्णः कीर्त्तयन् स जगद्गुरुः।
क्रीड़ित्वा देववत्तत्र पुनरगान्निजालयम् ॥१९॥
ततः सोऽध्यात्मतत्त्वार्थं वक्तुमारेभ ईश्वरः।
एक एव हरिः स्वामी व्यष्टिरूपतया स्थितः ॥२०॥
संहृष्ट स्वयमेवैकस्तिष्ठत्यात्मा स्वयं प्रभुः।
सर्वस्यान्तर्वहिः साक्षी कारणानाञ्च कारणः ॥२१॥
इति हस्तं प्रसार्य्याशु मुष्टाकृत्वा स्वयं पुनः।
करं स दर्शयामास नृत्यन् इव स ईश्वरः ॥२२॥

वहाँपर उत्तम प्रसादान्न ग्रहण एवं अङ्गानुलेपन स्वीकार कर जनवृन्द को आनन्दित किये थे, तदनन्तर श्रीकृष्णकीर्त्तन, नर्त्तन प्रभृति भी किये थे ॥१७॥

विबुधाग्रणी आचार्य्य ने अपने को आशिष प्राप्त कर कृतकृतार्थं माना, एवं श्रीगौरचन्द्र का प्रेमानन्द महोत्सव का दर्शन भी किया ॥१८॥

जगद्गुरु श्रीगौरहरि, आचार्य्य के सहित श्रीकृष्णकीर्त्तन करने के पश्चात् पुनर्बार निज भवन में प्रत्यावर्त्तन किये थे ॥१९॥

तदनन्तर ईश्वर ने अध्यात्मतत्त्व का कथन प्रारम्भ किया, एक श्रीहरि ही जगत् स्वामी हैं, व्यष्टि रूपमें भी सर्वत्र विराजित हैं ॥२०॥

स्वयं प्रभु—आनन्दचित्त से स्वयं एकक ही आत्मारूप में सर्वत्र विराजित हैं, सब के अन्तर्य्यामी साक्षी कारणों का कारण भी आप ही हैं ॥२१॥

पुनरूचे वचस्तत्त्वं सत्तामात्रस्वरूपिणम् ।
भावोऽप्यनर्थकस्तत्र सद्रूपमवधार्य्यताम् ॥२३॥
एकत्र ब्रह्मणोऽपि स्याद्देवमूर्त्तिर्न सर्वथा ।
अन्यस्य मूर्त्तिर्भवति विना तज्ज्ञानकारणात् ॥२४॥
पश्याङ्गुली करस्थे मे ह्येका तत्र मधुप्लुता ।
जिह्वया तां लिहस्वाद्य तदन्या पूयसंप्लुता ॥२५॥
तां दृष्ट्वा घृणया चान्यं द्रष्टुं नोत्सहते क्षणम् ।
निर्वेदब्रह्मज्ञानाब्धि सर्वमेव सुलक्षणम् ॥२६॥
एवमेकोऽपि भगवान् अनादिः पुरुषोऽव्ययः ।
सामग्रीरसतो जीवो मुक्तो भवति नान्यथा ॥२७॥

इस प्रकार कहकर स्वीय हस्त को प्रसारित्त एवं आकुञ्चित कर सत्वर पुनर्बार नृत्य मुद्रा से हस्त प्रदर्शन ईश्वर ने किया ॥२२॥

पुनर्बार सत्तामात्र स्वरूप का यथार्थ वर्णन आप ने किया, केवल सत्तामात्र का अनुसन्धान अनर्थक है, अतः सद्रूप का अवधारण करना आवश्यक है ॥२३॥

एक ब्रह्म ही अनेक प्रकार मूर्त्ति से विलसित होते हैं, देव प्रभृति मूर्त्ति की पृथक् सत्ता नहीं है, उनके ज्ञान के विना सब पृथक् पृथक् अवभात होते हैं ॥२४॥

मेरी अङ्गुलीयों को देखो, एक दो अङ्गुली मधुसंपृक्त हैं उसका अवलेहन जिह्वासे करो, अन्य अङ्गुली पूयसे युक्ता है उसे देखकर घृणा होती है, लोक उसे देखना नहीं चाहते हैं, निर्भेद ज्ञान होने से सबकुछ सुलक्षण पूर्ण हो जाते हैं ॥२५-२६॥

अनादि पुरुष अव्यय भगवान् एक ही हैं, एक होते हुये भी सामग्री रस जीव प्रभृति–स्वयं ही होते हैं, जब जीव पृथक् पदार्थ का अस्तित्त्व को मानलेता है, एवं ईश्वर विस्तृत होते हैं, तब वह बद्ध

एवं बहुप्रकारं स ज्ञानयोगं दयानिधिः ।
उक्त्वा तु विररामार्य्यहृदयस्थपदाम्बुजः ॥२८॥
श्रावयित्वा ततो ज्ञानं ज्ञानगम्यो जगत्पतिम् ।
कृष्णं ज्ञात्वा तत्पदाब्जं स्मृत्वा पुलकमुद्वहन् ॥२९॥
भक्तिरेव समुत्कृष्टा कृष्णप्रेमप्रकाशिनी ।
इत्येवाह सदोत्कण्ठो गद्गदं जगदीश्वरः ॥३०॥
प्रेमाश्रुकण्ठो भगवानिदं वचनमब्रवीत् ।
द्रुतचित्तो गद्गदवाक् रोदित्यलं हसत्यपि ॥३१॥
नृत्यत्यलं गायति च मद्भक्तो भुवनत्रयम् ।
पुनाति पाति सततं सर्वापद्भ्यो दिवानिशिम् ॥३२॥

होता है, ईश्वर ज्ञान से वह मुक्त होता है, विभेद ज्ञान से बद्धता होती है, अभेद ज्ञान से मुक्ति होती है, ॥२७॥

इस प्रकार आर्य्यगणसेवितपदाम्बुज श्रीहरि- कृपया विविध ज्ञानयोग का उपदेश प्रदान किये थे ॥२८॥

ज्ञान तत्त्व का श्रवण करने के पश्चात् ज्ञानगम्य जगत्पति श्रीकृष्ण एवं उनके चरणनलिनयुगल को स्मरण कर प्रभु पुलकायित विग्रह से शोभित हुये थे ॥२९॥

जगदीश्वर ने गदगदायमान शब्द से कहा — श्रीकृष्ण भक्ति ही सर्वोत्कृष्टा है, कृष्णप्रेम प्रकाशिनी है ॥३०॥

उस वचन को प्रभुने प्रेमाश्रुप्लुत कण्ठ से कहा, अनन्तर द्रुतचित्त प्रभु–गदगदस्वरसे नामकीर्त्तन, रोदन इत्यादि किये थे ॥३१॥

यथेष्ट नृत्य गान के द्वारा मेरा भक्त जगत्त्रयको पवित्र करता है, सतत समस्त आपदों से दिवानिशि रक्षा भी करता है ॥३२॥

इत्युक्त्वा हृष्टमनसा ननर्त्त स्वजनैः सह ।
श्रीमद्विश्वम्भरो देवो निजभक्तिप्रकाशकः ।।३३।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
द्वितीयप्रक्रमे भावकथनं नाम
पञ्चमः सर्गः

आनन्दचित्त से उस प्रकार कहकर स्वजनगण के सहित निज भक्ति प्रकाशक श्रीविश्वम्भरदेव श्रीहरिकीर्त्तन में नृत्य किये थे ।।३३।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
द्वितीयप्रक्रमे भावकथनं नाम
पञ्चमः सर्गः

षष्ठः सर्गः

—※—

अथापरदिने तत्राद्वैताचार्य्यो महायशाः ।
नवद्वीपे समायातो द्रष्टुं विश्वम्भरेश्वरम् ॥१॥
स्नानं कृत्वाचर्चयित्वेशं स यावदगच्छतीश्वरः ।
द्रष्टुं तावत्स भगवान् श्रीवासस्याश्रमे वसन् ॥२॥
पुष्पैकं न्यस्य दण्डाग्रे प्रोवाच सस्मिताननः ।
गदापूजा कृता ह्येषा मया दुष्टस्य शासनम् ॥३॥
करिष्याम्यनया नित्यं मद्भक्तद्वेषिणं सदा ।
भक्त एव सदा मह्यं प्राणाधिको न संशयः ॥४॥
एकोऽस्ति दुष्टो मद्भक्तद्वेषिणं कुष्ठरोगिणम् ।
कृत्वा तं पुनरेवाहं पैशाचनरकाश्रयम् ॥५॥

अनन्तर द्वितीयदिन महायशः श्रीअद्वैत आचार्य्य श्रीविश्वम्भर ईश्वर को देखने के निमित्त नवद्वीप आये थे ॥१॥

स्नान, भगवदर्चन पूर्वक श्रीअद्वैताचार्य्य जिस समय श्रीमन्महाप्रभुके दर्शन के निमित्त उनके मन्दिर में गये, उस समय भगवान् वहाँ नहीं थे. श्रीवास के आश्रम में विराजित थे, श्रीवास भवन में विराजित होकर दण्डके अग्रभाग में एक पुष्पविन्यास कर सस्मितानन प्रभु – कहे थे, — दुष्ट शासन के निमित्त मैंने गदा का पूजन किया ॥३॥

इस गदा से मैं नित्य भक्तविद्वेषी व्यक्तियों का संहार करूँगा भक्त ही मेरा सर्वदा प्राणाधिक प्रिय है, इसमें संशय नहीं है ॥४॥

करिष्याम्यचिरं कालं सत्यमेतन्मयोदितम् ।
नाशयिष्यामि तच्छिष्यान् विधास्ये विज्ञजानहम् ॥६॥
वनं प्रयातुमिच्छामि तदत्रैव महद्वनम् ।
व्याघ्रस्य सदृशाः केचित् केचित् पाषाणसन्निभाः ॥७॥
वृक्षाणां सन्निभाः केचित् केचित्तृणनिभा नराः ।
पशूनां सन्निभाः केचित्तेनेदं सुमहद्वनम् ॥८॥
श्रीकृष्णचरणाम्भोजमधुपानरता हि ये ।
ते मनुजाः समाख्याता सर्वजीवोपकारिणः ॥९॥
अद्वैताचार्य्यवर्य्योऽत्र समायात इति श्रुतम् ।
कथं नायाति यत्रास्ते तत्र गच्छामहे वयम् ॥१०॥
एतस्मिन् समये तत्राचार्य्यः स्वयमुपागतः ।
उपायनं समादाय तत्पादपद्मसन्निधौ ॥११॥

एक भक्तद्वेषीदुष्ट व्यक्ति है, उस को कुष्ठरोग के द्वारा प्रपीड़ित करूँगा, अनन्तर उसे पैशाच नामक यन्त्रनास्थान में भेजूँगा। यह कार्य्य मैं सत्वर ही करूँगा, मेरा कथन सत्य है, दुष्ट के शिष्यवर्ग को विनष्ट करूँगा ॥५-६॥

मैं वन गमन करना चाहता हूँ, किन्तु महद्वन तो यहाँ ही है, कुछ व्यक्ति व्याघ्र के समान हिंस्र है, कुछ तो कर्कश तृण के समान है और कुछ व्यक्ति पशुओं के तुल्य हैं। इससे जनालय ही महान् अरण्य के समान प्रतीत होता है, श्रीकृष्णचरणाम्भोज मधुपानरत मनुष्यगण सर्वजीवोपकारी होते हैं, उनको मनुष्य कहा जाता है ॥७-८-९॥

मैंने सुना है, यहाँ–श्रीअद्वैताचार्य्य का आगमन हुआ है, किन्तु यहाँपर इस समयपर्य्यन्त कचों नहीं आये हैं, अतः हमसब वहाँचल कर उनका दर्शन करेंगे ॥१०॥

तद्गत्त्वा दण्डवद्भूमौ निपपात तदा प्रभुः ।
करे गृहीत्वा तं प्राह तदर्थोऽहमिहागतः ॥१२॥
इत्युक्त्वा हर्षयित्वा तत् खट्टायां समुपाविशत् ।
आज्ञया तस्य देवस्याद्वैताचार्य्यो ननर्त्त ह ॥१३॥
तद्दृष्ट्वा भगवान् प्रीतस्तं प्राह तव बालकाः ।
एते मां प्रार्थयन्त्येव प्रेमभक्तिं सुदुर्लभाम् ॥१४॥
दास्यामि त्वत्कृते वत्स तं श्रुत्वा हर्षसंप्लुतः ।
आचार्य्यः प्राह भगवन् एते ते चरणानुगाः ॥
कारुण्यालयवात्सल्यात्तव किं स्यात् सुदुर्लभं ॥१५॥
अथोपविष्टास्ते सर्वे पार्श्वतस्तस्य चक्रिणः ।
ज्योत्स्नातत्या रजन्यां च पुनराह महाभुजः ॥१६॥

कथन प्रसङ्ग के समय ही श्रीअद्वैत आचार्य्य का वहाँ आगमन हुआ। उनको देखकर श्रीप्रभुने उत्थायन हस्त होकर भूतल में दण्डवत् निपतित होकर प्रणाम किया, श्रीअद्वैतप्रभु उनका हाथ पकड़कर कहा मैं इस निमित्त यहाँपर आया, यह कहकर आनन्दित करते हुये आज्ञा लेकर खट्टा में उपविष्ट हुये, एवं आनन्दोच्छलित हृदय से नृत्य करने लगे ॥११-१२-१३॥

यह देखकर भगवान् अत्यन्त सन्तुष्ट हुये एवं कहे--- यह सब बालक मेरे समीप में श्रीकृष्णप्रेमभक्ति प्रार्थी हैं, कृष्णप्रेम भक्ति अतिशय दुर्लभ होनेपर भी आपके सन्तोष के निमित्त मैं प्रदान करूँगा, यह सुनकर हर्षसे आप्लुत आचार्य्य कहे थे, भगवन् ! यह सब आप के श्रीचरणानुचर हैं, आप करुणाजलधि हैं, इनसब के समीप में सुदुर्लभ वस्तु क्या है ? १५॥

ज्योत्स्ना सुषमामण्डित रजनी में समस्त व्यक्ति श्रीप्रभु के समीप में निम्नासन में उपविष्ट थे, उससमय महाशय ने पुनर्बार कहा–

कमलाक्षोऽस्ति मेऽतीव भक्तस्त्वत्कृत एव हि ।
समागतोऽहं त्वं नृत्यगीतेन सुसुखी भव ॥१७॥
तत् श्रुत्वा भगवद्वाक्यं श्रीमत्श्रीवासपण्डितः ।
उवाच मधुरैर्वाक्यैर्विनीतस्तत्पदाम्बुजे ॥१८॥
किं तेऽसौ भगवद्भक्तः करुणेयं तव प्रभो ।
तत् श्रुत्वा भगवान् क्रुद्धस्तं निर्भर्त्स्याभ्यभाषत १९
किमुद्धवस्तथाक्रूरो भक्तो मेऽतीववत्सलः ।
आचार्य्योऽयं ततो न्यूनः किमेवं त्वं प्रभाषसे ॥२०॥
किं वा भारतवर्षेऽस्मिन् आचार्य्यस्य समोऽपरः ।
वर्त्तते कोऽपि मद्भक्त यस्मादज्ञो द्विजो भवान्॥२१॥
तत्श्रुत्वा भगवद्वाक्यं भीत्या तूष्णीं बभूव ह ॥२२॥

मेरा अतीव भक्त कमलाक्ष है, मैं उनके निमित्त ही अवतार ग्रहण किया हूँ, सम्प्रति मेरा समागमन भी हुआ है, अतः श्रीहरि संङ्कीर्त्तन से सुखी बनो ॥१६-१७॥

इस प्रकार भगवद्वाकच को सुनकर श्रीमत् श्रीवास पण्डित श्रीप्रभु चरणाम्बुज में विनीत होकर सुमधुर वाकच कहे थे ॥१८॥

हे प्रभो ! यह आपका भक्त है, आपका यह करुणा है। यह सुनकर भगवान् क्रुद्ध होकर उनको तिरस्कार किये थे। एवं कहे थे, मैं अत्यन्त भक्त वत्सल हूँ, मेरा भक्त-उद्धव एवं अक्रूर है, यह आचार्य उनदोनों से कचा न्यून हैं, तुम कचा कहरहे हो ? १९-२०

अथवा इस भारतवर्ष में आचार्य्य के समान अपर कोई भक्त है ? आप अज्ञ द्विज हैं ॥२१

भगवद्वाकच को सुनकर भीत होकरश्रीवास मौनहो गये,अनन्तर भगवान् बोले— अध्यातम की कथा कभी न करें, यदि आप कहीं पर

ततः प्रोवाच भगवान् अध्यात्मं न कदाचन ।
भवद्भिः कुत्रचिद्वापि वक्तव्यं यदि रोच्यते ॥२३॥
तदा प्रेमा न दातव्यो भवद्भ्यः सत्यमेव हि ॥२४॥
तत् श्रुत्वा पण्डितः प्राह श्रीवासो जगदीश्वरम् ।
तत्र मे विस्मृतिर्भूयाद्यथाहं न वदामि तत् ॥२५॥
मुरारिः प्राह भगवान्नध्यात्मं न विदाम्यहम् ।
त्वं प्राह देवो जानामि कमलाक्षात् श्रुतं हि तत्॥२६॥
इति सपदिनिशम्यदेववाक्यं प्रमुदितमनसो बभूवुरार्य्यकृत्यम्।
हरिहरपदपद्मसीधुमत्ता ननृतुरनिमिषा इवोत्सवाढ्याः ।२७

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे
षष्ठः सर्गः

इस के बाद अध्यात्म चर्च्चा करेंगे तो मैं प्रेमप्रदान नहीं करूँगा, यह मैंने सत्य कहा ॥२२-२३-२४

सुनकर श्रीवास पण्डितने जगदीश्वर गौरहरि को कहा, जो कुछ मैंने कहा उसकी विस्मृति हो, पुनर्वार मैं अध्यात्म वार्त्ता नहीं करूँगा ॥२५॥

मुरारि ने कहा, भगवान् ! मैं अध्यात्म नहीं जानता हूँ । प्रभुने कहा, कमलाक्ष से तुमने सुना तो है, मुझको पता लगा है ॥२६॥

इस प्रकार वाक्य को तत्क्षणात् सुनकर सब आनन्दित हो गये, एवं श्रीहरि पद मकरन्द पानमत्त होकर उत्सव में देववृन्द जिस प्रकार नृत्य करते हैं, उस प्रकार नृत्य करने लगे ॥२७॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे
षष्ठः सर्गः

सप्तमः सर्गः

—※—

सितनवांशुकमस्तकवेष्टन-
स्तरुणविद्रुमसन्निभहारधृक् ।
वरभुजद्युतिरञ्जितकङ्कणः
स्फुटनवीनसरोजकरो बभौ ॥१॥

चलचेलनिबद्धधटीधरो
ऽरुणवह्निर्वसनो नटवेशधृक् ।
वरनितम्बविलम्बितबाहु-
वरविलम्बिनागपतिः स्फुटम् ॥२॥

चरणपङ्कजरञ्जितनूपुरो
वरनखद्युतिरञ्जितशीतगुः ।
पदतलद्युतिरञ्जितविद्रुमो
द्रुतसुवर्णरुचिः शनकैर्व्रजन् ॥३॥

शुभ्र वसन के द्वारा मस्तक वेष्टित तरुण विद्रुम तुल्य मनोहर हार, उत्तम भुजयुगल में कङ्कण शोभित होकर विकसित कमल सदृश करयुक्त श्रीमन्महाप्रभु विराजित थे ॥१॥

चञ्चल वसन के द्वारा बद्ध धटी, तदुपरि अरुण वसनसे मण्डित श्रीमहाप्रभु नटराज के समान दृष्ट होरहे थे, उत्तम नितम्व एवं सुदीर्घ बाहु युगल के द्वारा नागपति को उद्दीप्त कर रहे थे ॥२॥

चरणपङ्कज में नूपुररंजित था, नखद्युति चन्द्रमाको प्रकाशित

परिननर्त्त लसन्मुखपङ्कजो
निजजनैर्निजनामपरायणैः ।
मधुरिपोर्मधुगीतसुगायनैः
सुरगणैर्दिवि देवपतिर्यथा ॥४॥
करयुगाहतसाधुमन्दिरा-
रवसुधावसुधातलवासिनाम् ।
मुदमधात् कलकण्ठरवान्विता
सुमनसामनिशं कमलापतेः ॥५॥
उपविशन्नवकम्बलसम्वृते
हरिहरोऽत्रविचित्रराम-
सुरगृहे निजलोकसमावृते
वरद आववृधे निजतेजसा ॥६॥

करती रहीं, पदतल विद्रुम रञ्जित था, इस प्रकार रुचिघटा विशिष्ट द्रुतगलित काञ्चनदुचति श्रीगौरहरि धीरे धीरे गमन कर रहे थे ॥३॥

श्रीहरिसङ्कीर्त्तन में विपुल नृत्य कररहे थे, उनका मुखपंकज अतिशय शोभित था, नामपरायण निजजनगण चतुर्दिक में नामगान कररहे थे, इस से प्रतीत होता था कि—सुरपति मधुरिपु नामगान परायण देवगण के द्वारा परिवेष्टित हैं ॥४॥

करयुगल में मधुर मन्दिरा थी, सुधा विनिन्दित स्वरसे अवनी तलस्थित प्राणी वृन्दको सुखी कर निरन्तर श्रीहरि सङ्कीर्त्तन से देव वृन्दको आनन्दित किये थे ॥५॥

अनन्तर उत्तम कम्वलासनमें उपविष्ट होकर हरिहर के समान शोभित हुये थे, निजजनगण परिमण्डित देवगृहको वरद प्रभु निज कान्तिसे उद्भासित किये थे, ॥६॥

ततः प्रोवाच श्रीवासं मधुरं मधुसूदनः ।
श्रीभक्तिरस्या वासस्त्वमतः श्रीवासउच्यते ॥७॥
गोपीनाथमिदं प्राह त्वं मे दास इति स्मृतः ।
ततः प्रोवाच करुणो मुरारिं तां पठ स्वयम् ।
कवित्वं भवतः श्रुत्वा स पपाठ शुभाक्षरम् ॥८॥

अथाष्टकम्

राजत्किरीटमणिदीधितिदीपिताश-
मुदञ्चद्वृहस्पतिकविप्रतिमेव हन्त ।
द्वे कुण्डलेऽङ्करहितेन्दुसमानवक्त्रं
रामं जगत्रयगुरुं सततं भजामि ॥१०॥
उद्यद्विभाकरमरीचिविबोधिताब्ज-
नेत्रं सुविम्बदशनच्छदचारुनासम् ।

अनन्तर मधुसूदन, मधुरस्वर से श्रीवासको कहे थे—श्रीवासका अर्थ भक्ति है, उस भक्तिका निवास होनेके कारण ही श्रीवास नाम सार्थक है, गोपीनाथ ने कहा आप प्रभु हैं, और मैं दास हूँ यह प्रसिद्ध है, अनन्तर मुरारिको करुणापरवश होकर प्रभुने कहा—मुरारि ! कविता पाठ करो ; मुरारिने भी श्रीप्रभुके आदेश से कविता का पाठ शुभाक्षर से किया ॥७-८॥

त्रिभुवनगुरु रामचद्र का भजन मैं करता हूँ, जिनके मस्तक में दिक्समुह समुज्ज्वलकारी मणिदीधिति समन्वित किरीट शोभित है, वृहस्पति कविके समान जो वाग्वैदग्धीपूर्ण हैं जिनके अकलङ्क शशधर प्रतिम बदनचन्द्र मनोज्ञ कुण्डलके द्वारा शोभित है ॥६-१०॥

उन जगत्रयगुरु रामचन्द्र का भजन मैं सतत करता हूँ, जिनके नयनयुगल, सद्योदित भास्कर मरीचि माला से प्रस्फुटित सरोज के

शुभ्रांशुरश्मिपरिनिर्जितचारुहासं
रामं जगत्रयगुरुं सततं भजामि ॥११॥

तं कम्बुकण्ठमजमम्बुजतुल्यरूपं
मुक्तावलीकनकाहारधृतं विभान्तम् ।
विद्युद्वलाकगणसंयुतमम्बुदं वा
रामं जगत्रयगुरुं सततं भजामि ॥१२॥

उत्तानहस्ततलसंस्थसहस्रपत्रं
पञ्चच्छदाधिकशतं प्रवराङ्गुलीभिः ।
कुर्व्वंत्यशीतकनकद्युति यस्य सीता-
पार्श्वेऽस्ति तं रघुवरं सततं भजामि।१३।

अग्रे धनुर्द्धरवरः कनकोज्ज्वलाङ्गो
ज्वेष्ठानुसेवनरतो वरभूषणाढ्यः ।

समान सुविम्ब दशनच्छद चारु नासिका शोभित है, शुभ्रांशुरश्मि का पराजयकारी मनोज्ञ हास्य वदन मण्डल में सुशोभित है ॥११॥

कम्बुकण्ठ, अम्बुज तुल्य रूप, मुक्तावली कनक हारके द्वारा विभूषित, एवं विदुचत् बलाकागण युक्त अम्बुद के समान पुराण पुरुष त्रिभुवनगुरुरामचन्द्रका भजन मैं निरन्तर करता हूँ ॥१२॥

सहस्र पद कनक के समान पञ्चच्छदाधिकशत प्रबर अङ्गुली शोभित करकमल को जिन्होंने उत्तानमुद्रा से स्थापन किया है,इस प्रकार सीता जिनके पार्श्व में अवस्थित होकर अशीत कनकद्युचति का त्रिस्तार करती रहती हैं, उन रघुवर का भजन मैं सतत करता हूँ ॥१३॥

जिनके सम्मुख में कनकोज्ज्वलाङ्ग धनुर्द्ध रवर ज्येष्टानुसेवनरत, वरभूषणाढच शेषनाम से विख्यात श्रीलक्ष्मण विराजित हैं उन

शेषाख्यधामवरलक्ष्मण नाम यस्य
रामं जगत्रयगुरुं सततं भजामि ॥१४॥
यो राघवेन्द्रकुलसिन्धुसुधांशुरूपो
मारीचराक्षससुबाहुमुखान्निहत्य ।
यज्ञं ररक्ष कुशिकान्वयपुण्यराशिं
रामं जगत्रयगुरुं सततं भजामि ॥१५॥
हत्वा खरत्रिशिरसौ सगणौ कबन्धं
श्रीदण्डकाननमदूषणमेव कृत्वा ।
सुग्रीवमैत्रमकरोद्विनिहत्य शत्रुं
तं राघवं दशमुखान्तकरं भजामि॥१६॥
भङ्क्त्वा पिनाकमकरोज्जनकात्मजाया
वैवाहिकोत्सवविधिं पथि भार्गवेन्द्रम् ।
जित्वा पितुर्मुदमुवाह ककुत्स्थवर्य्यं
रामं जगत्रयगुरुं सततं भजामि ॥१७॥

जगत्रयगुरु श्रीरामचन्द्र का सतत भजन मैं करता हूँ ॥१४॥

जो राघवेन्द्र कुलसिन्धु सुधांशु रूप हैं, एवं मारीच सुबाहु प्रमुख राक्षस निहन्ता हैं,एवं कुशिकान्वय पुण्यराशिके यज्ञरक्षाकारी हैं उन जगत्रयगुरु रामचन्द्र का भजन मैं सतत करता हुँ ॥१५॥

जिन्होंने खरत्रिशिरा कबन्ध प्रभृति राक्षसों को विनष्ट कर दण्डकारण्यको पवित्र किया,एवं सुग्रीवके सहित मैत्री किया, अनन्तर शत्रुदशानन को संहार कर जो शोभित हुये थे उन राघव का भजन मैं करता हूं ॥१६॥

हरधनु भङ्ग कर श्रीसीता का पाणिग्रहण किये थे, प्रत्यावर्त्तन मार्ग में समागत भार्गवेन्द्र को पराजित कर पिताको आनन्दित किये

इत्थं निशम्य रघुनन्दनराजसिंह
श्लोकाष्टकं स भगवान् चरणं मुरारेः ।
वैद्यस्य मुर्द्धनि विनिधाय लिलेख भाले
त्वं "रामदास" इति भो भव मत् प्रसादात् ।।१८।।
अपठद्भगवानेकं श्लोकं तत् शृणु मे द्विज ।।१९।।
न साधयति मां धर्म्मो न सांख्यं योग उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्म्ममोर्ज्जिता ।२०।
पठित्वेदं पुनः प्राह सर्व्वां स्तत्र समागतान् ।
भवद्भिरेव वक्तव्यं श्रीवासस्य विचारणे ।।२१।।
यत् स्यात्तदेव नित्यं वः कुशलं तद्भविष्यति ।
श्रीराम पण्डित ज्येष्ठभ्रातृसेवा मदर्च्चना: ।।२२।।

थे, ककुद्वंश विभूषण जगत् गुरु श्रीरामचन्द्र का मैं सतत भजन करता हूं ।।१७।।

इस प्रकार रघुनन्दन राजसिंह के श्लोकाष्टक सुनकर भगवान् गौरहरि निज चरणार्पण वैद्य मुरारि के मस्तक में किये थे, एवं ललाट में रामदास नाम लिख कर कहे थे— तुम मेरा वर से राम दास बनों ।।१८।।

श्रीभगवान् एक श्लोक पाठ किये थे, हे द्विज ! उसको सुनो— हे उद्धव ! मुझको धर्माचरण,सांख्य योगानुष्ठान स्वाध्याय तपः त्याग उस प्रकार प्राप्त कराने में समर्थ नहींहै जिस प्रकार उर्ज्जिता भक्ति से मैं वशीभूत होता हूं ।।१९-२०।।

श्लोक पाठ करने के पश्चात् समागत समस्त सज्जनों को आप ने कहा- आप सब श्रीवास के विचार पर अपना वक्तव्य प्रकट करें ।।२१।।

जो निर्णयहोगा,उससे आपसबको कुशल होगा.श्रीराम पण्डित के ज्येष्ठ भ्राता की परिचर्य्या ही मेरी अर्च्चना है ।।२२।।

इति बुद्धचा विनिश्चित्य कुरु श्रीवाससेवनम् ।
तेन ते सकलं भद्रं सदा नित्यं भविष्यति ॥२३॥
इत्युक्त्वा हर्षयंल्लोकान् रेमे प्रणतवत्सलः ।
भक्तवत्सल्यतां तस्य दृष्ट्वा सर्वे सुखं ययुः ॥२३॥
श्रीवासेनार्पितं दुग्धं पूगं माल्यं सधूपकम् ।
बुभुजे भगवांस्तत्र शेषान् भृत्याय दत्तवान् ॥२५॥
श्रीवासभ्रातृतनयाभर्त्तृका मधुरदुचतिः ।
प्राप्य हरेः प्रसादञ्च रौति नारायणी शुभा ॥२६॥

इति सकलनिशां निनाय देवो
निजजनमनसां मुदे मुरारिः ।

इस प्रकार निज बुद्धिके द्वारा निश्चय कर श्रीवास की परिचर्य्या करें, उससे नित्य सकल मङ्गल सम्पन्न होगा॥२३॥

इस प्रकार कहकर सब को हर्षित्त करते हुये प्रणतवत्सल प्रभु भक्त वात्सल्य को प्रकट किये थे, उसको देखकर सबजन सुखी हुये थे, ॥२४॥

श्रीवासके द्वारा अर्पित दुग्ध, पुष्प, माल्य, धूप प्रभृतिका सेबन श्रीभगवान् गौरहरि करते थे। एवं अवशेष का प्रदान भक्तवृन्द को करते थे ॥२५॥

मधुरदुचति सम्पन्ना मङ्गलमयी नारायणी नाम्नी श्रीवासकी भ्रातृतनया रही वह श्रीहरि के प्रसाद को प्राप्त कर प्रेमभर से रोदन करने लगी ॥२६॥

इस रीतिसे समस्त निशि देवने अतिवाहित किया एवं निज परिकरवर्ग को सुखी किया, महत् वत्सरपरिमाण कालकोभी मुरारिने

क्षणमिव महद्वत्सरेण मेने-
ऽनवरतं सुखमापुरार्यवर्य्याः ॥२७॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते द्वितीयप्रक्रमे भक्तानुग्रहोनाम
सप्तमः सर्गः

क्षण काल के समान माना एवं आर्य्य वर्ग अनवरत सुखसिन्धु में निमग्न हुये थे ॥२७॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते द्वितीयप्रक्रमे भक्तानुग्रहोनाम
सप्तमः सर्गः

अष्टमः सर्गः

—※—

ततः प्रभाते विमले नत्वा तं पुरुषर्षभम् ।
गत्वा निजाश्रमं सर्वे स्नात्वा देवार्च्चनादिकम् ॥१॥
कृत्वा भुक्त्वा यथान्यायमाजग्मुस्तत्पदाम्बुजम् ।
तान् दृष्ट्वा हर्षसंपूर्णो भगवान् मधुसूदनः ॥२॥
ततः प्रोवाच भगवानवधूतः समागतः ।
नित्यानन्द इति ख्यातो महात्मा तं समानय ॥३॥
हे राम त्वं मुरारे च नारायणमुकुन्दकौ ।
गच्छध्वं सत्वरा यूयं यत्रास्ते स महामतिः ॥४॥
ततस्तदाज्ञया सर्वे दक्षिणे ग्रामसन्निधौ ।
विचार्य्य तं न दृष्ट्वा ते समीयुस्तत्र सन्निधिम् ॥५॥

विमल प्रभातकालमें पुरुषश्रेष्ठ को नमन कर भक्तवृन्द निज निज भवनमें प्रत्याबर्त्तन किये, एवं स्नानादि कृत्यसम्पन्नकर देवार्च्चन के पश्चात् प्रसादान्न ग्रहण किये थे,अनन्तर यथारीति विनीत भाव से श्रीगौरसुन्दर के समीपमें उपस्थित हुये थे,भगवान् मधुसूदन उनसबको देखकर आनन्द पूर्ण होकर कहे थे भगवान् अवधूत का आगमन यहाँ पर हुआ है, उनका नाम नित्यानन्द है, उनको यहाँपर ले आइये १-३

हे राम ! हे मुरारे ! हे नारायण मुकुन्द सत्वर आप सब वहाँपर जाइये वहाँ महामति नित्यानन्द अवस्थान कर रहे हैं ॥४॥

अनन्तर उनसे आज्ञा प्राप्त कर दक्षिण दिक्स्थ ग्राम के समीप में उपस्थित वे सब हुथे थे, वहाँ अन्वेषण करने पर भी साक्षात्कार न हो ने से श्रीप्रभु के समीप में सब चले आये थे ॥५॥

ते नत्वा तं सुरश्रेष्ठं प्रोचुर्नास्माभिरद्य सः ।
दृष्टा इत्यब्रवीत्तांश्च पुनर्गच्छत साम्प्रतम् ॥६॥
स्वाश्रमे स च द्रष्टव्यः सायाह्ने स महामनाः ।
तं श्रुत्वा ते यथास्थानं ययु र्दृष्टा कृताह्निकाः ॥७॥
ततः सायाह्ने वेलायां पथि गच्छन् जगद्गुरुः ।
मुरारिं प्राह दृष्टा तमागच्छ तत्र यत्र सः॥८॥
समायातो मुनिश्रेष्ठो नन्दनाचार्य्यवेश्मनि ।
तत्राहमपि गच्छामि द्रष्टुं तं पुरुषर्षभम् ॥९॥
स मुरारिस्ततो देवो भक्तवर्गसमन्वितः ।
प्रेमानन्दरसे मग्नो नन्दनाचार्य्यसद्गृहे ॥१०॥
गत्वा ददर्श तं देव नित्यानन्दं सुखोषितम् ॥११॥

प्रणाम कर उनसबों ने श्रीप्रभु से निवेदन किया, प्रभो ! उन सुरश्रेष्ठ को हमसब ने देख नहीं पाया, इस प्रकार सुनने के बाद प्रभुने कहा– सम्प्रति आप वहाँपर पुनर्वार गमन करें ॥६॥

महामनाः को सायाह्न काल में यहाँपर अवश्य आपसब अवलोकन करेंगे । यह सुनकर वे सब निज निज भवन को चले गये थे एवं आह्निक कृत्य सम्पन्न किये थे ॥७॥

जगद्गुरु सायाह्न काल में मार्ग में भ्रमण करते करते मुरारि को कहे थे,जहां बह महामति हैं वहाँ चलो ॥८॥

नन्दनाचार्य्य के भवन में वह महामति विराजित हैं । वहाँ मैं भी जाऊँगा, एवं उनका दर्शन करूंगा ॥९॥

अनन्तर मुरारि के सहित श्रीगौरहरि आनन्द चित्त से नन्दनाचार्य्य के भव्य भवनमें उपस्थित होकर सुखोपविष्ट नित्यानन्द देव को अवलोकन किये थे ॥१०-११॥

ततः प्रणम्य तं भक्त्या भगवान्मधुराक्षरम् ।
हरिसंङ्कीर्त्तन कृत्वा ननर्त्त ललितं मुदा ॥१२॥
ततो ननर्त्त तमनु नित्यानन्दो महयशाः ।
हुङ्कारहास्यसंपूर्णः पुलकाङ्कितविग्रहः ॥१३॥
नृत्यावसाने देवस्तु तत्पादरजसा पुनः ।
भृत्यस्य मस्तक पूतमकरोत् कमलापतिः ॥१४॥
ततः प्रतस्थे स्वगृहं कथयं तत्कथाः शुभाः ।
अहो महात्मा कथयत्ययं कृष्णशुभाकरम् ॥१५॥
आदौ ज्ञानं भवेत् पुंस स्ततो भक्तिर्हरौ भवेत् ।
ततो विरक्तिर्भोगेषु भवेदेव क्रमादिह ॥१६॥
इत्युक्त्वा पथि देवेशो जगाम निजमन्दिरम् ।
कथयामास तत् सर्वं स्वमातुश्चरणान्तिके ॥१७॥

अनन्तर उनको भक्तिपूर्वक प्रणामकर सुमधुर श्रीहरिसङ्कीर्त्तन के सहित सुललित आनन्द नृत्य किये थे ॥१२॥

पश्चात् महायशाः नित्यानन्द श्रीप्रभु के पश्चात् पश्चात् हुङ्कार हास्यपूर्ण पुलकाङ्कित विग्रह होकर नृत्य किये थे ॥१३॥

नृत्यावसान होने पर कमलापति प्रभु–श्रीनित्यानन्द की श्रीचरण धुली में भृत्यवर्ग को पवित्र किये थे ॥१४॥

अनन्तर उनके मङ्गलमय चरित्र कीर्त्तन करते करते गृहमें प्रत्यावर्त्तन कररहे थे और नित्यानन्द महात्मा हैं, मङ्गलमय श्रीकृष्ण का कीर्त्तन उन्होंने किया ॥१५॥

प्रथम मानव का ज्ञान सद्गुरु मुख से शास्त्र श्रवण से होता है, अनन्तर श्रीहरि में भक्ति होती है, अनन्तर भोग्यविसयों में वितृष्णा होती है, यह क्रमशः होता है ॥१६॥

इस प्रकार कहकर श्रीप्रभु भवन में प्रविष्ट होकर माता के

अथापरदिने प्राप्ते नित्यानन्दाय धीमते।
भिक्षां ददौ चन्दनेन कृत्वा सर्वाङ्गलेपनम् ॥१८॥
माल्यमर्घ्यञ्च नैवेद्यं दत्त्वा पूजां चकार च।
एवं संपूजितस्तेन नित्यानन्दमहाप्रभुः ॥१९॥
तत्र स्थित्वा परदिने श्रीवासस्याश्रमं ययौ।
अवधूतं स भिक्षार्थं निमन्त्रणमथाकरोत् ॥२०॥
तं पण्डितः प्रणयेन भिक्षां सुसंस्कृतां ददौ।
ततो भुक्त्वा वरान्नं स श्रद्धया पावनं महत् ॥२१॥
स्थितस्तत्रैव भवानागतस्तत्क्षणेन तु।
देवालये शुभे देव उपविश्य बरासने ॥२२॥
पूर्वलीलामनुस्मृत्य प्रियां मधुरया गिरा।
उवाच पश्य मां त्वं मदर्थं कृतवान् श्रमम् ॥२३॥

समीप में समस्त वृत्तान्त कहे थे ॥१७॥

अपरदिन समागत होनेपर प्रभुने श्रीनित्यानन्दको भिक्षाप्रदान किया, एवं चन्दन के द्वारा सर्वाङ्ग लेपन किया ॥१८॥

माल्य अर्घ्य नैवेद्य प्रदान कर यथोचित पूजन उन्होंने किया, इस प्रकार पूजित होकर नित्यानन्द महाप्रभु वहाँपर अवस्थान किये थे, अनन्तर अपरदिवस श्रीवास के आश्रम में उपस्थित हुये थे, अवधूत को भिक्षाग्रहण निमित्त श्रीवास ने निमन्त्रण भी किया ॥१९-२०॥

श्रीवासपण्डित ने प्रीति पूर्वक सुसंस्कृत भिक्षा प्रदान किया, अनन्तर श्रीनित्यानन्द ने भी श्रद्धापूर्वक पवित्र महत् वरान्न को भोजन किया ॥२१॥

श्रीनित्यानन्द अवस्थित होने पर उस समय नित्यानन्द के समीप में श्रीभगवान् गौरहरि का आगमन हुआ, एवं मनोज्ञ पूर्व

अवधूतो मनोवाचं श्रुत्वा तस्य महात्मनः ।
अवलोक्य च तं भक्त्या विशेषं नावबुध्यत ॥२४॥
तज्ज्ञात्वा भगवान् सर्वान् वैष्णवान् प्राह गच्छत ।
यूयं गृहाद्वहि सर्वे ततस्ते निर्ययुर्गृहात् ॥२५॥
ततः संदर्शयामास नित्यानन्दाय स प्रभुः ।
स्ववैभवं स्वमाधुर्य्यं कौतुकायाखिलेश्वरः ॥२६॥
स ददर्श ततो रूपं कृष्णस्य षड्भुजं महत् ।
क्षणाच्चतुर्भुजं रूपं द्विभुजश्च ततः क्षणात् ॥२७॥
अत्यद्भुतं ततो दृष्ट्वा हर्षेण विस्मयेन च ।
जहास च पुनर्द्धीमान्ननर्त्त च मुदा सकृत् ॥२८॥

लीलाका स्मरणकर मधुरवाणी से प्रभुने कहा, मुझको देखो, आपने कितना परिश्रम किया है ॥२२-२३॥

महात्मा का मनोभाब को जानकर एवं उनको देखकर अवधूत ने कुछ भी समझ न सका ॥२४॥

भगवान् गौरहरि यह सब जानकर सकल वैष्णव को कहे थे, आपसब बाहर अवस्थान करें, अनन्तर सबजन भवन के बाहर चले गये थे ॥२५॥

अनन्तर अखिलेश्वरश्रीप्रभुने कौतुक वशतः श्रीनित्यानन्द प्रभु को निज वैभव एवं माधुर्य्य का सन्दर्शन कराया ॥२६॥

श्रीनित्यानन्द ने श्रीकृष्ण का षड्भुज महत् रूपका दर्शन किया क्षण काल में चतुर्भुज रूप को भी देखा एवं पश्चात् द्विभुज को देखा ॥२७॥

अत्यद्भुत रूपको देखकर नित्यानन्द आनन्द विस्मयसे विभोर होकर हास्य किये थे अनन्तर आनन्द विह्वल चित्त से नृत्य किये थे ॥२८॥

देवाज्ञया नाकथयद्रोमाञ्चिततनुर्भृशम् ।
वृन्दावनविनोदी तु भ्राता मे त्वं प्रहर्षितः ॥२६॥
इति यः शृणोति नृहरेश्चरितं
सकलं स यज्ञफलमेव लभेत् ।
रमते मुकुन्दचरणाम्बुरुहे
हरिनाम तस्य नियतं स्फुरति ॥३०॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीय प्रक्रमे अवधूतानुग्रहो नामाष्टमः सर्गः

प्रभु की निषेधाज्ञा से रोमाञ्चित तनु होने पर नित्यानन्द ने उस वृत्तान्त कथन अपर के समक्ष में नहीं किया प्रभुने आनन्दित होकर यह भी कहा– तुम मेरा वृन्दावन विनोदी भाई हो ॥२६॥

इस प्रकार नृहरि का चरित्र जो जन सुनता है, वह सकल यज्ञ फलका अधिकारी होता है, एवं मुकुन्द चरणारविन्द में उसका मनः निविड़ रूप से संलग्न होता है, श्रीहरिनास भी उसके हृदय में स्फुरित होते हैं ॥३०॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे अवधूतानुग्रहो नामाष्टमः सर्गः

नवमः सर्गः

—※—

श्रुत्वा कथामतितरां मुदितो महात्मा
दामोदरः पुनरुराच मुरारिवैद्यम् ।
अत्यद्भुतं वद विभोर्वपुषः स्वरूपं
स्वप्ने न दृष्टमपि यत् पुरुषोत्तरेण ॥१॥
तं प्राह पुण्यचरितं स पुनर्मुरारिः
कृष्णस्य शुद्धमनसां महदुत्सवाय
कृष्णस्वरूपमखिलाम्बरभूषणाढ्यं
स्वप्ने ददर्श पुनरेष नवीनकृष्णम् ॥२॥
रात्रौ रुरोद भगवानतिविह्वलं सा
वीक्ष्यातिविस्मितमुखी तनयं बभाषे ।

मधुर चरितकथा को सुनकर महात्मा दामोदर आनन्द हृदयसे मुरारि वैद्यको पुनर्वार कहे थे, अत्यद्भुत श्रीप्रभु का चरित्र वर्णन आप करें, पुरुषश्रेष्ठगण स्वप्न में भी जिस को जानने में समर्थ नहीं हैं ॥१॥

पुनर्वार मुरारि ने शुद्धमना: व्यक्ति वर्ग को आनन्दित करने के निमित्त श्रीकृष्णचरित्र का कीर्तन किया। प्रभुने रात्रि में अखिल वसन भूषणमण्डित नवीन कृष्णस्वरूप को देखा ॥२॥

रात्रि में गौरहरि विह्वल होकर रोदन करने लगे थे, देखकर माता बोली वत्स ! तु आज क्यों रो रहा है। सुनकर धैर्य्यधारणकर

तात त्वमद्य किमलं स्वपरत्वमेषि
श्रुत्वा क्षणाद्धृतिमुवाहशचीं बभाषे॥ ३॥
स्वप्ने मयाद्य नवनीरदतुल्यकान्ति
र्मायूरपिच्छवरहाटककङ्कणाद्यः ।
बालो ललाटविलसत्कुटिलालकश्च
वंशीकरो रविकरोज्ज्वलपीतवस्त्रः ॥४॥
दृष्टोऽतिविह्वलतयाऽश्रुभिरावृताङ्गो
रोदिम्यनन्तरमनन्तसुखं ममामूत् ।
श्रुत्वा शचीसुतमुखाद्वचनामृतं सा
हर्षान्विता स्मितमुखी सुमुखी बभूव। ५॥
विश्वम्भरोऽतिपुलकावलिरञ्जिताङ्गः
प्रेमाश्रुवारिधिमुवाह विलोचनाभ्याम् ।
कालेन तावदचिरेण समागतोऽसौ
श्रीवासवेश्मनि शुभे शुशुभेऽवधूतः ॥६॥

प्रभुने उत्तर किया। मा आज मैंने स्वप्न में नवनीरदकान्ति तुल्य मकर कुण्डलाङ्गदादि शोभित मयूरपिच्छविभूषित रविकरोज्ज्वलपीत वसन युक्त वंशी वादन परायण श्रीकृष्ण को देखा ॥३-४॥

देखकर मैं अतिशय विह्वल होगया, अश्रुवारि से अङ्ग आवृत हुआ अनन्तर सुखसागर में निमज्जित होकर मैं रोदन करने लगा। पुत्र की भक्ति को सुनकर सुमुखी शचीदेवी स्मितमुखी हुई थीं, एवं आनन्दप्लुत हुईं ॥५॥

विश्वम्भर अति पुलकावलि रञ्जिताङ्ग हुये थे, विलोचन के द्वारा अजस्राश्रुवारि वहन कर रहे थे, उस समय सत्वर मङ्गलमय श्रीवास भवन में अवधूतचन्द्र उपस्थित होकर शोभित हुये थे ॥६॥

तत्रैव सर्वभुवनैकसुखाभिलाषी
प्रेमाश्रुपूर्णवदनः शुशुभेऽवधूतः ।
दृष्ट्वा हरेरतितरां भुवि दुर्लभाङ्गं
तेजोमयं कमलनेत्रमुदारवेशम् ।।७।।
कक्षे गदावररथाङ्गदरं दधानं
वामे सुवेणुवरशाङ्गं सहस्रपत्रम् ।
प्रध्मातकाञ्चनरुचिं वरकौस्तुभाद्यं
दिव्यस्फुरन्मकरकुण्डलगण्डयुग्मम् ।।८।।
भालोल्लासन्मणिवरं वरकण्ठसंस्थ
नीलाम्बुजाभरणमारकताक्षहारम् ।
रौप्योपक्लिप्तसितहारविरजमानं
सूर्य्यांशुगौरवसनं विवशो बभूव ।।९।।
दृष्ट्वा पुनर्मुरलिकावरणाङ्गहीनं
रूपं तथैव वरबाहुचतुष्टयं सः ।

अवधूत नित्यानन्द श्रीहरिप्रेमाश्रुवदन से शोभित थे, उन्होंने भूतल में अति दुर्लभ दर्शन कमलनेत्र उदार वेश श्रीहरि को देखा ।।७।।

दक्षिणभाग में उत्तम गदा-चक्र, शङ्ख,वामभाग में वेणु शाङ्गं, सहस्रपत्र पद्म, एवं प्रतप्त काञ्चन तुल्य कौस्तुभ को उन्होंने देखा, एवं दिव्योज्ज्वल कुण्डलयुगल द्वारा उद्भासित गण्डद्वयको भी देखा।।८।।

ललाटदेश एवं कण्ठदेश उत्तम मणि मण्डित थे, नीलाम्बुज एवं मरकत मणि हार के द्वारा बक्षःस्थल सुशोभित था। एवं रौप्य निर्मित शुभ्र हार समूह भीं विन्यस्त थे, तथा सूर्य्यांशु के समान गौर वसन से परिशोभित थे ।।९।।

हर्षाप्लुतः क्षणमथ द्विभुजं ददर्श
लोकानुरूपचरितं च ततो जहास॥१०॥
एवं हरेरतितरां दिवि दुर्ल्लभं यत्
दृष्ट्वा स्वरूपमचिरेण ननर्त्त सोऽपि।
आलिङ्ग्य तत्र स्वजनान्नवतोयराशौ
मग्नो बभूव निरतामवधूतदेवः ॥११॥
अट्टाट्टहासवरशोभितगण्डयुग्मो
वारुण्यपानमदशोभितलोचनश्रीः।
नीलाम्बरो मूषललाङ्गल-वेत्रधारी
कृष्णाग्रजो जयति गौररसेन पूर्णः॥१२॥
श्रीवासरामौ च भिषङ् मुरारिं
नारायणं प्राह प्रभुर्व्रजस्व।
अद्वैतवाटचमवधूत एष
गमिष्यति ज्ञापयितुं द्विजेन्द्रम् ॥१३॥

उस प्रकार देखने के बाद—मुरलिका विहीन विग्रह को उन्होंने देखा, बाहु चतुष्टय से वह सुशोभित रहा, हर्षसे आप्लुत होकर पुनर्वार उन्होंने द्विभुज को देखा, लोकानुचरित को देखकर वह हँसगया ॥१०॥

स्वर्ग में भी अति दुर्ल्लभ स्वरूप श्रीहरि का सन्दर्शन कर अवधूत देव नृत्य करने लगे थे, एवं स्वजनवृन्द को आलिङ्गन कर आनन्द सिन्धु में निमज्जित हुये थे ॥११॥

गण्डद्वय अट्टहास्य से शोभित थे, वारुणीपानमदमत्तलोचन युगल घूर्णित थे, लीलाम्बर, मूषल लाङ्गल वेत्र विभूषित गौर प्रेमपूर्ण कृष्णाग्रज उत्कर्षमण्डित होकर विराजमान थे ॥१२॥

श्रीवास श्रीराम वैद्य मुरारि एवं नारायण को प्रभुने कहा-

इत्थं समाकर्ण्य हरेर्गिरस्ते
जग्मुर्मुदाद्वैतपदारविन्दम् ।
गत्वा प्रणेमुदर्चुर्नदीतटे शुभे
आज्ञां हरेराहुरनन्तपुण्याम् ॥१४॥
श्रुत्वा प्रभोरद्भुतवीर्य्यमुज्ज्वलं
मुमोद हर्षेण जगौ ननर्त्त च ।
आचार्य्य आनन्दमहाम्बुधौ मुहु-
र्निमज्जनोन्मज्जनमाततान ॥१५॥
स्थित्वा ततस्तत्र दिनद्वयं ते
स्थित्वापदाब्जं स्वगृहं समीयुः ।
आचार्य्यमुख्याश्च हरेः पदाब्जेः
निवेद्य सर्वं सहसा ननन्दुः ॥१६॥

अद्वैत भवन को आप सब जाइये, और उनको सूचित करिये कि—अवधूतचन्द्र का आगमन यहाँपर होगा ॥१३॥

श्रीमन् महाप्रभु की वाणी को सुनकर वे सब श्रीअद्वैत के समीप में जाकर उपस्थित हुये थे, एवं प्रणामपूर्वक श्रीहरि के शुभ सन्देश को निवेदन किये थे ॥१४॥

आचार्य संदेश श्रवणकर हर्ष से गान नृत्य किये थे, एवं महानन्दाम्बुधि में उन्मज्जित निमज्जित हुये थे ॥१५॥

वे सब वहाँपर दो दिन ठहरे थे, उसके बाद श्रीहरिचरणाब्ज ध्यान कर निज निज भवन में प्रत्यावर्त्तन किये थे, आचार्यप्रमुख समस्त सज्जनवृन्द—श्रीहरिचरणों में समस्त वृत्तान्त निवेदन कर आनन्दित हुये थे ॥१६॥

आचार्य्य आगत्य ततः परे शुभे
काले ददर्शाम्बुजपत्रनेत्रम् ।
दृष्ट्वा मुखं सिंहनिनादयुक्तः
प्राप प्रपन्नार्त्तिहरं मुकुन्दम् ॥१७॥

श्रीवासदेवालयमध्यगो हरि-
र्वरासनस्थः सहसा रराज ।
सन्तप्तचामीकररोचिषा रवि-
र्यथा प्रभाते नयनानुरञ्जनः ॥१८॥

दृष्ट्वाननेन्दुं मुदिता महान्त
आचार्य्यमुख्या जगुरार्द्रचित्ताः ।
नैवेद्यमर्घ्यञ्च ददुर्वरांशुकान्
नेमुः, पृथिव्यां विनिपत्य हर्षिताः ॥१९॥

पूजां गृहीत्वा भगवान् द्विजानां
संभुज्य तेषां सहसा प्रसादम् ।

आचार्य्य आकर शुभ मुहूर्त में प्रपन्नार्त्ति हर सिंहनिनादयुक्त अम्बुज पत्रनेत्र मुकुन्द का दर्शन किये थे ॥१७॥

श्रीवास भवन के मन्दिर में श्रीहरि उत्तम आसन में विराजित थे, उससे प्रतीत होता था कि प्रतप्तसुवर्ण कान्ति नयनानुरञ्जन दिनकर का उदय प्रत्यूष में हुआ है ॥१८॥

महान्त आचार्य्य प्रमुख व्यक्तिवृन्द श्रीप्रभु के वदनचन्द्र का दर्शनकर आर्द्र चित्त होकर कीर्त्तन किये थे, एवं नैवेद्य अर्घ्य वसन के द्वारा अर्च्चना कर पृथिवी में निपतित होकर प्रणति किये थे॥१९॥

विप्र वर्ग से पूजा ग्रहण कर नैवेद्य अङ्गीकार किये थे, अनन्तर आनन्दपूर्वक उनसब को प्रसाद, वसन, एवं माल्य प्रदान किये थे,

तेभ्यो मुदादाद्वसनं सुमाल्यं
ते तद्गृहीत्वाततरां ननर्त्तुः ॥२०॥
तेऽतिप्रहृष्टा- पुलकाञ्चिताङ्गा
आनन्दरत्नाकरमग्नचित्ताः ।
आत्मानमन्यञ्च विदुर्गताशुभं
कैवल्यमत्यल्पतरं प्रचक्रुः ॥२१॥
रात्रिन्दिवं ते न विदुः सुखेन
सूर्य्योदये नृत्यपरा दिनान्तम् ।
निन्युर्निशां ताञ्च पुनः प्रभाते
नृत्यावसाने जगदीश्वराज्ञया ॥२२॥
आगत्य गेहे द्विजवर्य्यसत्तमा
भिषक्तमाद्या हरिनामभाषणाः ।

विप्रवर्ग,श्रीप्रभु प्रदत्त सामग्रींसमूहप्राप्तकर आनन्दातिरेक से नृत्य किये थे।।२०।।

वे सब पुलकिताङ्ग होकर आनन्द सागर में अपनेको निमज्जित किये थे, एवं आनन्दातिरेक से अपने को एवं द्वितीय वस्तु को जानने में समर्थ नहीं हुये, अशुभ वस्तु को परित्याग कर मुक्ति के प्रति तुच्छ बुद्धि किये थे।।२१।।

वे सब इस प्रकार श्रीहरि सङ्कीर्त्तन में आविष्ट हुये थे जिस से दिनरात का अनुसन्धान ही उनसब को नहीं था, सूर्य्योदय होता था, सूर्य्यास्त होजाता, रात्रि होती, पुनर्बार भगवान् दिनकर का उदय होता, इस प्रकार प्रेम विभोरता के सहित श्रीहरि सङ्कीर्त्तन में रत थे; एकदिन प्रभातमें नृत्यावसान होनेपर प्रभुने भक्तगणको गृहगमन के निमित्त आज्ञा की ।।२२।।

स्त्रीभ्यश्च सर्वे जगदुर्मुदान्विता
हरेश्चरित्रं निखिलं जगद्गुरोः ॥२३॥

इदि श्रीकृष्णचैतन्यचरिते द्वितीयप्रक्रमे भक्तपूजोपगूहणं नाम
नवमः सर्गः

द्विजवर्य्यं सत्तमवृन्द–गृहागमन पुर्वक श्रीहरिनाम परायण होकर रहे एवं आनन्दचित्त से जगद्गुरु श्रीहरि का निखिल चरित्र कीर्त्तन निज निज परिजन वर्ग के समक्ष में किये थे ॥२३॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते द्वितीयप्रक्रमे भक्तपूजोपगूहणं नाम
नवमः सर्गः

दशमः सर्गः

—※—

स्नात्वा द्युनद्यां जगदीशपूजां

कृत्वा समीयुः पुनरेव सन्निधौ।

विश्वम्भरस्याम्बुजलोचनस्य

सोऽपि प्रमोदेन ददर्श तान् प्रभुः ॥१॥

ततः परं श्रीहरिदासमुत्तमं

श्रीकृष्णपादाम्बुजमत्तषट्पदम्।

सुशीतलं साधुविलोचनोत्सवं

नवोद्गते द्युप्रतिमं सुमङ्गलम् ॥२॥

दृष्ट्वा समालिङ्ग्य भुजद्वयेन

दृढं हरिस्तं निजपादभक्तम्।

समादिदेशासनमुग्रकीर्त्ति-

स्तस्मै पुनस्तं प्रणनाम सोऽपि ॥३॥

भक्तवृन्द– सुरनदी में अवगाहनस्नानकृत्य समापनानन्तर श्रीहरि की पूजा कार्य्य सम्पन्न किये थे, अनन्तर पुनर्वार श्रीप्रभु सन्निधि में उपस्थित होकर अम्बुजलोचन प्रभु का दर्शन किये थे, श्रीप्रभुने भी उनसब को आनन्द से देखा था ॥१॥

अनन्तर श्रीकृष्ण पादाम्बुजमत्त मधुकर सुशीतलसाधुविलोचन सुमङ्गल नवोद्गत द्युमणि के समान सत्तम श्रीहरिदास को प्रभुने देखा, अनन्तर श्रीहरि निज भुजद्वय के द्वारा आलिङ्गन कर निजभक्त को आसन ग्रहण करने के निमित्त आदेश किये थे, उन्होंने भी उग्र कीर्त्ति कोप्रणाम किया ॥२-३॥

तं चन्दनेनाशु विलेपयित्वा
माल्यञ्च दत्त्वाथ महाप्रसादम् ।
अन्नं रसैर्युक्तमनुत्तमं ददौ
चतुःप्रकारं बुभुजे तदाज्ञया ॥४॥

सोऽपि प्रसन्नेन्दुमुखः सुखोषितो
हरेर्गृहे राजति देववत् सुधीः ।
गायन् हरेः कीर्त्तनमङ्गलं मुहु-
र्मुमोद नित्यात्मसुखेन धीरः ॥५॥

तेनैव सार्द्धं भगवाननादिः
क्रीड़ां तथाचार्य्यसमं विधाय ।
संप्रेषयामास निजालयं त
मद्वैतसिंहोऽपि जगाम हृष्टः ॥६॥

ततोऽवधूतं विनयेन धीरो
गच्छन्ननुव्रज्य सुदूरमीशः ।

प्रभुने आपको चन्दन द्वारा विलेपन कर माल्य एवं सुमिष्ट अनुत्तम प्रसादान्न प्रदान किया उन्होंने भी श्रीप्रभुकी आज्ञासे चतुर्विध प्रसादान्न भोजन किया ॥४॥

प्रसन्नवसन सुधी, श्रीहरि के मन्दिर में सुखपूर्वक विश्राम किये थे, एवं पुनः पुनः मङ्गलमथ श्रीहरि सङ्कीर्त्तन कर आनन्दित हुये थे ॥५॥

उनके सहित अनादि भगवान् सङ्कीर्त्तन कर एवं उनको आर्य्यवत् सम्मान प्रदान कर गृह में प्रेरण किये थे, अद्वैत सिंह भी आनन्द से चले गये थे ॥६॥

अनन्तर भगवान् गौरहरि गमनरत अवधूतचन्द्र का अनुगमन

उवाच कौपीनकचेलमेकं
देहि त्वमेभ्यो द्विजसज्जनेभ्यः ॥७॥
ददौ तदा तद्वचनेच्छया स
कौपीनमेकं तदसौ गृहीत्वा ।
स्वयं प्रभुर्भृत्यजनाय चेलं
ददौ विभज्य प्रतिगृह्यते मुदा ॥८॥
विधाय मौलौ नृहरेः प्रसादं
कृष्णेन सार्द्धं निजमेव मन्दिरम् ।
आगत्य ते प्रेमविभिन्नधैर्य्या
निपत्य भूमौ रुरुदुः सुदुःखिताः ॥९॥
ततो निमज्याम्भसि भूमिदेवाः
स्नात्वा दुचनद्यां हरिपूजनक्रियाम् ।
चक्रुः पुनः सायमुपागतास्ते
विजह्रुरार्य्या हरिणा समं जगुः ॥१०॥

सुदूर पर्य्यन्त किये थे, एवं कहे थे एक कौपीन वस्त्रखण्ड द्विजसज्जन को आप प्रदान करें ॥७॥

पश्चात् वचनानुसार एक कौपीन लेकर स्वयं प्रभुने निजभक्त जनको विभक्त कर वितरण किया। भक्तगण भी आनन्द प्रसादीवस्त्र को निज निज मस्तक में धारण कर भगवान् श्रीकृष्ण के सहित निज मन्दिर में आकर प्रेमविभिन्न धैर्य्य होकर भूतल में पड़कर दुःख से रोदन करने लगे ॥९॥

उसके बाद आर्य्य भूदेववृन्द, सुरधुनी में स्नान कर श्रीहरि पूजन कृत्य समापन किये थे, पुनर्वार सायंकाल में श्रीप्रभु के समीप में उपस्थित होकर श्रीहरिसङ्कीर्त्तन किये थे ॥१०॥

आलिङ्गच भृत्यानपि तान् गृहीत्वा
भूमौ लुठत्यब्जकरद्वयेन ।
आनन्दमत्यर्थमनन्तकीर्त्तिः
समुद्वहन् सिंहगतिर्ननर्त्त ॥११॥

श्रीवासमादाय भुजद्वयेन
तन्मध्यतो दूरतरं निनाय ।
ततो न दृष्ट्वा विवशा बभूवः
सविस्मितास्ते हरिदासवर्य्याः ॥१२॥

विचार्य्य ते नो ददृशुमहान्तः
क्षुब्धान् विदित्वा तदजः समागतः ।
स्वयं स्वतन्त्रार्थरतः पुरस्तात्
ते पार्श्वतस्तं परिवव्रुरुत्सुकाः ॥१३॥

करकमल युगल के द्वारा भृत्यको भी आलिङ्गन प्रदान कर अनन्तकीर्त्ति प्रभु, भूतल में विलुठित होते थे, एवं क्षणकाल में उत्थित होकर सिंहगति से नृत्य करते थे ॥११॥

विप्रवृन्द के मध्य से भुजद्वय के द्वारा श्रीवासपण्डित को प्रभुने दूरतर स्थान में निक्षेप किया, यह देखकर हरिदासवर्य्यगण विस्मित एवं विवश होगये थे ॥१२॥

नानास्थान में अन्वेषण करने पर भी महान्तगण उन को देख नहीं पाये, उनसब को क्षुब्ध देख कर प्रभु स्वयं आगये थे उससे उत्सुख होकर प्रभु के सामने पृष्ठदेश में पार्श्वदेश में सब अवस्थित होगये थे ॥१३॥

गोपीस्वभावाप्त समस्तभक्त्या
पश्यंश्च कृष्णं वनमालिनं प्रभुम् ।
मद्वल्लभोऽसौ भगवान् यथा भवेत्
तथा कृपां मे कुरुतात् महेश्वरः ॥१४॥
गोपाङ्गनाभावविभावनिष्ठा
श्रीकृष्ण एवात्र रसेन पूर्णः ।
गोपस्त्रीभावान् प्रणतान् विभाव्य
करोति वस्त्राहृणादिलीलाम् ॥१५॥
ततः कदाचिद्व्रजनीमुखे स
वस्त्रान् समाकृष्य बिलग्नभावान् ।
चक्रे कराम्भोजयुगेन चक्री
भृत्यान् रसज्ञो रसदो नराणाम् ॥१६॥
एवं प्रभुः क्रीड़नकं स कृत्वा
क्षणाद्ददो वस्त्रगणान् समस्तान् ।

अनन्तर गोपी स्वभावप्राप्त कर भक्तवृन्द भक्ति से वनमालीप्रभु श्रीकृष्ण को देखने लगे, एवं कहने लगे-महेस्वर हमसब के प्रति वैसी कृपा करें, जैसे हमसब का वल्लभ वह भगवान् हो ॥१४॥

गोपाङ्गनाभावविभावनिष्ठ रसपूर्ण श्रीकृष्ण, गोपस्त्री भावाक्रान्त प्रणत भक्तवृन्द को जानकर वस्त्रहरणादि लीलानुष्ठान किये थे ॥१५॥

कदाचित् प्रभु प्रदोष में नागदन्त में संलग्न वस्त्र को करद्वय से आकर्षण कर रसज्ञ रसद प्रभु, भृत्यवर्ग को आनन्दित किये थे ॥१६॥

इस प्रकार क्रीड़ा क्षणकाल करने के पश्चात् प्रभुने वस्त्रसमूह

तेभ्यः पुनस्ते परिधाय हृष्टां
वासांसि साकं जहृषुर्मुरारिणा ।।१७।।
गायन् हरेर्नाम पुनर्ननर्त्त
तैः सार्द्धमन्तःकरणैर्यथार्थैः ।
लीलागतिर्लोक-मलं क्षपन् स
सन्तप्तचामीकरोचिषा प्रभुः ।।१८।।
ततोऽवधूतः पुनरागतः सुखं
रेमे ननर्त्ताशु जगौ हरेर्गुणान् ।
कृष्णेन सार्द्धं हरिणा यथार्भकाः
पुरा तथैवात्र च बारिजेक्षणः ।।१९।।
नृत्यावसाने भगवान् द्विजाग्र्यान्
उवाच पादाववधूतस्य ।
प्रक्षाल्य गृह्णन्तु जलं भवन्त-
श्चक्रुस्ततस्ते शिरसा तदाज्ञाम् ।।२०।।

प्रत्यावर्त्तन कर दिया, भक्तवृन्द वस्त्र परिधान पूर्वक मुरारि के सहित आनन्दित हुये थे ।।१७।।

सरल अन्तःकरण से श्रीहरिनाम गान करते करते भक्तवृन्द के सहित प्रभुने नृत्य किया। लीलागति श्रीकमल को विदूरित किया। एवं प्रतप्त सुवर्ण कान्ति से समस्त उद्भासित किया ।।१८।।

अनन्तर अवधूत, पुनर्वार आकर हरिगुण गानकर आनन्द से नृत्य करने लगे, इस मे प्रतीत हुआ कि श्रीकमलनयन श्रीकृष्ण के सहित गोप बालकगण नृत्य कर रहे हैं ।।१९।।

नृत्यावसान में भगवान् द्विजाग्रणी को कहे थे— अवधूतके चरणधौत कर चरणोदक आप सब ग्रहण करें उन्होंने शिरसा आज्ञा पालन कर उस प्रकार अनुष्ठान किया ।।२०।।

पीत्वा तु पादोदकमेव ते मुदा
नृत्यन्ति गायन्ति रसेन पूर्णाः।
श्रीगौरचन्द्रेन समं विचुक्रुशुः
स्ततोऽवधूत हसन् पपात ॥२१॥
ततो ननन्दामृतपूरकेण
वाचा च गत्या हसितेन चापि।
विलोकनेनाम्बुजलोचनस्य
धुन्वन्नराणां हृदयोग्रदुःखम् ॥२२॥
तथा रमन्तं त्रिदशा विदित्वा
नभोगणा नेमुरमुं सुवेशम्।
सुविस्मिताः कीर्त्तनकैस्तु पूर्णाः
स्तुत्वामृतस्ते दद्दशु प्रहृष्टाः ॥२७॥
तत्रागतः श्रीहरिदासवर्य्यो
वक्षःस्थस्फाटिकरत्नचन्द्रः

चरणोदक पान करने के पश्चात् कृष्णभक्ति परिपूरित चित्त होकर नृत्य करने लगे, श्रीगौरचन्द्र के सहित श्रीहरिसङ्कीर्त्तन करने लगे, अनन्तर अवधूत श्रीगौरहरि के सहित भूतल में हँसकर गिरगये थे ॥२१॥

पश्चात् वाणी, गति, हास्य, एवं अम्बुजलोचन के प्रेमपूर्ण विलोकन से मानवमात्र का हृद्योग्रताप विदूरित हुआ ॥२२॥

इस प्रकार विलसित प्रभु को देखकर देवगण आकर स्थित होकर प्रभु को प्रणाम किये थे, सुविस्मित होकर कीर्त्तनरत प्रभु को देखे थे, एवं आनन्द भर से स्तुति भी किये थे ॥२३॥

सुनूपुरै रञ्जितपादयुग्मो
नर्त्त देवस्य समीपतो मुनिः ॥२४॥
अद्वैतवर्य्यः पुनरागतः सुधीः
स तं प्रभुर्भक्तजनप्रियो हरिः ।
पाद्यार्घ्यगन्धाक्षतचन्दनादिभिः
समर्च्चयित्वा तमथादिशत् स्वयम्॥२५॥
ससम्भ्रमेणादरतो गृहीत्वा
भुक्त्वा नदन्तं सुमहत्प्रसादम् ।
रेमे हरेः सार्द्धमुदारकीर्त्ति
राचार्य्यवर्य्यो महदुत्सवेन ॥२६॥
शृणोति यः कृष्णकथामिमां शुभां
प्रेमान्वितः स्यात् स तु शुद्धभावम् ।

वहाँपर श्रीहरिदासवर्य्यका आगमन हुआ। उनका वक्षस्फटिक रत्न से सुशोभित था। सुनूपुर के द्वारा चरणयुगल मण्डित थे, देव श्रीगौरहरि के सम्मुख में मुनि श्रीहरिदास नृत्य करने लगे ॥२४॥

सुधी अद्वैताचार्य्य का पुनरागमन हुआ। भक्तजन प्रिय हरिने पाद्य अर्घ्य गन्ध अक्षत चन्दन प्रभृति के द्वारा उनका पूजन किया। एवं पूजन करने के निमित्त भक्तवृन्द को कहा ॥२५॥

सम्भ्रम एवं आदर के सहित आनन्द से सुमहत प्रसाद ग्रहण प्रभुने किया। उदार कीर्त्ति आचार्य्यवर्य्य भी महदुत्सव से श्रीहरिके सहित निवास किये थे ॥२६॥

जो जन मङ्गलमयी श्रीकथाका श्रवण करता है, वह प्रेमान्वित

लभेत पाण्डित्यमखण्डितं च

देहावसाने च हरे पुरं व्रजेत् ॥२७॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे नृत्यविलासोनाम
दशमः सर्गः

होकर शुद्ध भाव को प्राप्त करता है अखण्ड पाण्डित्यलाभ भी करता है, एवं देहावसान में श्रीहरिधाम को प्राप्त करता है ॥२७॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे नृत्यविलासोनाम
दशमः सर्गः

एकादशः सर्गः

—※—

भिक्षुः कश्चिद्वनमाली द्विजस्तत्र समागतः ।
सपुत्रो देवदेवेशं ददर्श च ननर्त्त च ॥१॥
तं दृष्ट्वा भगवान् प्रीत्या तेन सार्द्धं हरिं जगौ ।
हरेः सोऽपि प्रसादेन सपुत्रो मुमुदे सुखम् ॥२॥
एकदा कीर्तनपरे हरौ नृत्यति स द्विजः ।
ददर्श बालकं कञ्चित् श्यामः पीताम्बरावृतम् ॥३॥
दृष्टो दृष्टो मया देव इति हृष्टो बभूव ह ।
स जन्म सार्थकं मेने भिक्षुधर्मो द्विजोत्तमः ॥४॥
पुत्रं गृहीत्वा हस्ताभ्यामागतः प्रभुसन्निधिम् ।
एवं भिक्षुः सहृष्टाङ्गः पुलकावलिमुद्वहन् ॥५॥

पुत्रके सहित विप्रवर्य्य श्रीवनमाली का आगमन वहाँपर हुआ था । सपरिकर देवदेवेश को देखकर वह विप्र आनन्द से नृत्य किये थे ॥१॥

उनको देखकर भगवान् प्रसन्न होकर उनके सहित श्रीहरि सङ्कीर्त्तन किये थे, विप्रवर्य्य श्रीहरि की अनुकम्पा से पुत्रके सहित आनन्दित हुये थे ॥२॥

एकदिन कीर्त्तनरत श्रीहरि के नृत्य समय में द्विजने एक पीताम्बरभूषित श्यामबालक को देखा ॥३॥

"मैं ने देव को देखा" कहकर द्विजोत्तम अति आनन्दित हुये थे, निजजन्म को भी सार्थक मानने लगे थे ॥४॥

प्रेमाश्रुधारासिक्ताङ्गो ननर्त्त सह चक्रिणा ।
एकदा पैतृकं कर्म कृत्वा श्रीवासपण्डितः ॥६॥
शृण्वन् वृहत् सहस्रं स नाम कृष्णस्य शुद्धधीः ।
तत्राजगाम भगवान् श्रुत्वा च हरिनामकम् ॥७॥
नृसिंहावेशसंक्रुद्धो गदामादाय सत्वरः ।
धावति स्म ततो देवो नृसिंहाकारविक्रमः ॥८॥
एवम्भूतञ्च तं देवं दृष्ट्वा सर्वे प्रदुद्रुवुः ।
पलायनपरान् दृष्ट्वा ततस्तान् नृहरिः पुनः ॥९॥
क्षणाद्गदां परित्यज्य सुस्थ आविशदासने ।
तदोवाच न जानेऽहमपराधः क्वचिन्मम ॥१०॥
भवेदिति वचः श्रुत्वा सर्वे प्रोचुर्न ते क्वचित् ।
अपराधो जगन्नाथ यद्दर्शनमनुस्मरन् ॥११॥

पुत्रके हस्तधारण पूर्वक विप्र श्रीप्रभु के समीप में उस्थित हुये थे, इस प्रकार वह ब्राह्मण पुलकावलि से मण्डित होकर श्रीकृष्णप्रेम विभोर हुये थे, प्रेमाश्रुधारा से सिक्त होकर श्रीचक्रपाणि गौरहरि के सहित नृत्य भी किये थे,एकदिन श्रीवासपण्डित पितृकृत्यसम्पन्नकरनेके पश्चात् श्रीकृष्ण का वृहत् नाम स्त्रोत्र सहसा श्रवण किये थे, भगवान् श्रीगौरहरि–श्रीहरिनाम श्रवण कर वहाँपर आगये थे ॥५-६-७॥

श्रीप्रभु का श्रीनृसिंहावेश हुआ, सत्वर गदा लेकर श्रीनृसिंह के समान धावित हुथे थे ॥८॥

श्रीनृसिंहविक्रमाक्रान्त श्रीप्रभु को देखकर सबलोक इतस्ततः भय से पलायन करने लगे थे, यह देखकर श्रीहरिने गदाको परित्याग किया । एवं सुस्थ होकर आसन में उपवेशन कर कहा– मैं नहीं जानता हूँ कुछ अपराध मेरा बन गया है ॥९-१०॥

पापवीजं दहेदेव नरसिंहाकृतेः प्रभोः ।
अपराधस्तव भवेत् कदाचिदपि मानद ॥१२॥
अथापरदिने कश्चिद्गायनः समुपागतः ।
नमस्कृत्य हरिं भक्त्या तत्रोपविश्य भूतले ॥१३॥
जगौ कलपदं गीतं शिवस्य मधुराक्षरम् ।
श्रुत्वा स भगवान् प्रीतः शिवाविष्टो ननर्त्त ह ॥१४॥
तत उत्थाय तरसा गायनस्कन्धमारुहत् ।
श्रीवासपण्डितस्तत्र शिवस्तोत्रं चकार ह ।
महोक्षे स हरिस्तत्र वर्त्तूलाम्बुजलोचनः ॥१५॥
जटिलः शृङ्गडमरुवादको रामगायकः ।
बभूव जगतां नाथः सर्वदेवमयो हरः ॥१६॥

श्रीप्रभु के वचन को सुनकर सकल लोक कहे थे—हे जगन्नाथ ! आपका कोई अपराध नहीं है । जिनकादर्शन एवं अनुस्मरणसे निखिल पापबीज विनष्ट हो जाते हैं, हे मानद प्रभो ! आपका अपराध कभी भी नहीं हो सकता है. ॥११-१२॥

एकदिन एक गायक श्रीप्रभु के समीप में आया था । श्रीहरि को नमस्कार कर भूतल में उपवेशन कर भक्तिपूर्वक मधुराक्षर से श्रीशिव सङ्गीत गान करने लगा । श्रीशिवसङ्गीत सुनकर प्रभु आनन्दित हुये थे, एवं शिवाविष्ट होकर नृत्य करने लगे ॥१३-१४॥

अनन्तर श्रीप्रभु सहसा उठकर गायकके स्कन्धदेश में आरोहण कर गये थे, उस समय श्रीवासपण्डित् श्रीशिवस्त्रोत्र पाठ किये थे, श्रीहरि के लोचनयुगल वर्त्तुलाकृति हो गये थे ॥१५॥

जटिल शृङ्ग डमरु बादक रामनामपरायण श्रीशिव स्वरूप को सर्वदेवमय जगन्नाथ प्राप्त किये थे ॥१६॥

चक्रे महिम्नःस्तोत्रं स श्रीमुकुन्दोऽतिसुस्वरः ।
अवरुह्य ततः स्कन्धाद्गायनस्याविशद्विभुः ।
सर्वे ते मुदितास्तत्र हरिलीलारसप्लुताः ॥१७॥
कुर्वन्ति कीर्त्तनं हर्षात्तैः सहैव जगद्गुरुः ।
गायन् रेमे हरेर्गीतं ननर्त्त च मुहुर्म्मुहुः ॥१८॥
श्रीमान् विश्वम्भरो देवो भक्तिभावसमन्वितः ।
ततः परदिने नृत्यावसाने दण्डवत् क्षितौ ॥१९ ॥
निपत्य संस्थितस्यास्य देवस्य पदपङ्कजात् ॥२०॥
आगत्य ब्राह्मणी काचित् जगृहे रज उत्तमम् ।
तत उत्थाय भगवान् ज्ञात्वा तस्या विचेष्टितम् ॥२१॥
दुःखेन महताविष्टोऽनुतापी बहुधाभवत् ।
तत उत्थाय सहसा वेगेन जाह्नवीजले ॥२२
पपात मग्नस्तत्रैव तं दधार महाबलः
अवधूतो महाबाहुर्धृत्वा तीरं समारुहत् ॥२३॥

महिम्न स्त्रोत्रका पाठ श्रीमुरारि ने अति सुखर से किया उससे श्रीहरि, गायकके स्कन्धदेश से अवतरण किये थे; उससे समस्त सज्जन श्रीहरि रसाप्लुत होकर अतीव आनन्दित हुये थे।।१७।।

उनसब के सहित श्रीहरि हरिसङ्कीर्त्तन करने लगे थे, एवं श्रीहरिनाम का कीर्त्तन पुनः पुनः कर नृत्य किये थे ।।१८।।

श्रीमान् विश्वम्भर देव, भक्तिभाव विभावित होकर अपर दिन नृत्यावसान होनेपर भूतल में दण्डवत् निपतित हो गये थे, उस समय एक ब्राह्मणी ने उनकी चरणरजः ग्रहण किया भगवान् जान गये थे, एवं भीषण दुःखाक्रान्त होकर अनुताप कर अति वेगसे जाकर जाह्नवी जल में गिरगये थे ।।१९-२०-२१-२२।।

श्रीवासहरिदासाद्या आगत्य त्राससंयुताः ।
उद्विग्नाः सहसा बब्रुस्तं देवेशं भयन्विताः।। २४।।
प्रेमोत्कण्ठाश्च रुरुदुः शुक्लाम्बरद्विजादयः ।
सुशान्तं सुखिनं ज्ञात्वा चक्रुः कृष्णकथामिथः ।।२५

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे जाह्नवीपतनं नामैकादशः सर्गः

अवधूतचन्द्र ने जाह्नवी में निमग्न श्रीगौरहरि को उद्धार किया एवं तीरभूमि को प्राप्त कराया ।।२३।।

श्रीहरिदास श्रीवास प्रभृति भक्तवृन्द भयभीत एवं उद्विग्न होकर सहसा श्रीप्रभु को कहे थे ।।२४।।

शुक्लाम्बर प्रभृति बिप्रवर्ग प्रेमोत्कण्ठित होकर रोदन करने लगे थे, प्रभु को सुशान्त एवं सुखी जानकर परस्पर कृष्णकथा की अवतारणा किये थे ।।२५।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे जाह्नवीपतनं नामैकादशः सर्गः

द्वादशः सर्गः

—※—

ततो वाट्यां मुरारेस्ते झटित्यागत्य सेश्वराः ।
उपविश्य क्षणं स्थित्वा विजस्याश्रमं ययुः ॥१॥
उषित्वा रजनीं तत्र प्रभाते भगवान् परः ।
जगामोत्तरकं कूलं स जाह्नव्या भ्रमद्द्रुतम् ॥२॥
ब्राह्मणाः साधवः शान्ता विनयेन द्विजत्तमाः ।
उचुः प्रसीद भगवन् आगच्छ स्वगृहं पुनः ॥३॥
तत् श्रुत्वा विनयं तेषां करुणार्द्रो न्यवर्त्तत ।
स्वभक्तहृदयानन्दः श्रीमान् विश्वम्भरः प्रभुः ॥४॥
ततस्ते हृष्टमनसस्त्यक्तशोका मुदान्विताः ।
आजग्मुर्हरिणा सर्वे श्रीवासस्यालयं पुनः ॥५॥

अनन्तर मुरारि के भवन में ईश्वर के सहित परिकरवृन्द क्षणकाल विश्राम करने के बाद वे सब विजयाश्रमको चलेगये थे ॥१॥

वहाँपर रजनी यापन करने के पश्चात् प्रभातकाल में भगवान् जाह्नवी के उत्तर कूल में चलेगये, एवं द्रुत गमन करने लगे ॥२॥

शान्त साधु ब्रह्मणवृन्द विनीत भाव से प्रभु को निवेदन किये थे, प्रभो ! पुनर्वार निज मन्दिर में प्रत्यावर्त्तन करें ॥३॥

उनसब के करुणवचनों को सुनकर भक्त हृदयानन्द श्रीमान् विश्वम्भर प्रभु पुनः स्वभवन में प्रत्यावर्त्तन किये थे ॥४॥

अनन्तर भक्तवृन्द शोक परित्याग पूर्वक आनन्दमन से श्रीहरि के सहित श्रीवास के निलय में आगये थे ॥५॥

प्रोवाच भगवांस्तत्र सर्वेषामेव सन्निधौ ।
शृणुध्वं वचनं मह्यं यूयं कृष्णरसप्रदाः ॥६॥
मातरं संपरित्यज्य गते मयि दिगन्तरम् ।
सर्वे मां सम्वदिष्यन्ति विरुद्धं कृतवानसौ ॥७॥
मुरारिः प्राह तं श्रुत्वा मैवं नाथ वदिष्यति ।
कश्चिज्ज्वनो न शक्नोति जीवे वक्तुं सनातनम् ॥८॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भगवांस्तं मुरारिकम् ।
आलिङ्ग्य वरबाहुभ्यां हर्षितः प्राविशद्गृहम् ॥९॥
ततः प्रमुदितो वैद्यः पुलकावलिमुद्वहन् ।
पपाठ श्लोकमेकञ्च प्राचीनं यत् शृणुष्व तत् ॥१०
"क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः ।
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥११॥

वहाँ सब के समक्ष में श्रीभगवान् बोले थे–आपसब कृष्णरसविद् हैं' मेरा वक्तव्य को सुनें ॥६॥

जननी को परित्याग कर मैं अन्यत्र गमन करने से सब व्यक्ति कहेंगे—यह कार्य्य अनुचित हुआ ॥७॥

उक्ति को सुनकर मुरारि ने कहा,– हे नाथ ! कोई भी व्यक्ति इस प्रकार नहीं कहेगा । प्रभो ! जीव की सामर्थ्य नहीं है, जिस से आप के प्रति कुछ भी कहे ॥८॥

मुरारि का वचन को सुनकर भगवान् निज बाहु के द्वारा मुरारि को आलिङ्गन प्रदान कर आनन्द विभोर होकर गृह प्रवेश किये थे ॥९॥

अनन्तर आनन्दित मुरारि वैद्य पुलकावलि से मण्डित होकर एक प्राचीन श्लोक पाठ किये थे, उसका श्रवण करे ॥१०॥

"मैं पापीयान् दरिद्र व्यक्ति किस प्रकार हूँ। और श्रीनिकेतन श्रीकृष्ण

तत् श्रुत्वाश्चर्य्यमखिलं भावं सन्दर्शयन् प्रभुः ।
रराज सहसा देवः सहस्त्रार्च्चिःसमप्रभः ॥१२॥
उपविश्यासने देवः प्रोवाच मधुराक्षरम् ।
इदं देहं विजानीहि सच्चिदघनमनुत्तमम् ॥१३॥
ततस्ते मुदिताः सर्वे बभूवुः पुलकाञ्चिताः ।
श्रीवासपण्डितस्तत्र स्नापयामास तं प्रभुम् ॥१४॥
स्वर्नदीस्वच्छसलिलैः पूजां चक्रे यथाविधि ।
नित्यानन्दो महातेजाश्छत्रं शिरस्यधारयत् ॥१५॥
गदाधरश्च ताम्बूलं ददाति श्रीमुखोपरि ।
केचित् सेवन्ते तं देवं चामरव्यजनादिभिः ॥१६॥

किस प्रकार हैं ? मैं हीन ब्राह्मण होनेपर भी श्रीकृष्ण ने मुझ को निज बाहुद्वय द्वारा परिरम्भण किया ॥११॥

श्लोक श्रवण से श्रीप्रभु में अद्‌भुत भाव का प्रकाश हुआ, उस से श्रीगौरहरि सहसा सहस्त्रार्च्चि सूर्य्य के समान कान्ति सम्पन्न हुये थे ॥१२॥

आसन में उपवेशन कर मधुराक्षर से कहे थे, "इसदेह को अनुत्तम सच्चिदानन्द घन रूप में आपसब जानें ॥१३॥

अनन्तर भक्तवृन्द आनन्द से पुलकायित हो गये, श्रीवास पण्डित श्रीप्रभु का अभिषेक किये थे ॥१४॥

सुरधुनी के स्वच्छ वारि से प्रभुका अभिषेक करने के पश्चात् यथाविधि उनका पूजन आपने किया।उससमय महातेजा श्रीनित्यानन्द ने मस्तक में छत्रधारण भी किया ॥१५॥

श्रीगदाधर प्रभु, ताम्बूल अर्पण प्रभुके मुखारविन्द में किये थे

सङ्कीर्त्तनरसे मग्ना हरिं गायन्ति सर्वतः।
एवं कौतुकमापन्ना विस्मिता ननृतुर्जगुः ॥१७॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे महाप्रकाशाभिषेकोनाम
द्वादशः सर्गः

एवं कतिपय सेवक चामर व्यजन के द्वारा श्रीप्रभु की परिचर्य्या किये थे ॥१६॥

समस्त भक्तगण श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन रसमें निमग्न होकर श्रीहरिनामगान करने लगे, एवं परम कौतुक एवं विस्मयाविष्ट होकर नृत्य गीत करने लगे थे ॥१७॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे महाप्रकाशाभिषेकोनाम
द्वादशः सर्गः

त्रयोदशः सर्गः

—※—

अथापरदिने देवो भक्ति संशिक्षयन् स्वकान् ।
देवालयं ययौ विप्रैः सार्द्धं सम्मार्ज्जनीं करे ॥१॥
कुद्दालञ्चांसभागेषु धटीं कटिवरे वहन् ।
नूत्नवस्त्रकृत्तोष्णोषो बालसूर्य्यसमप्रभः ॥२॥
आचार्य्याद्या महात्मानः कुद्दालमार्ज्जनोकराः।
कृष्णस्य हड्डिपा भूत्वा द्वारं देवाययस्य ते ॥३॥
भित्ति सम्मार्जयामासुः सह कृष्णेन तद्गुणाः ।
एवं प्रकारं नृहरेः शिक्षां शतसहस्रशः ॥४॥
भगवान् स्वात्मतन्त्रोऽपि कारुण्येनाभ्यशिक्षयत् ।
श्रीमान् गौरचन्द्रदेवो जगतां कारणं परम् ॥५॥

अनन्तर अपरदिन श्रीगौरहरि निजजनगण को भक्ति शिक्षा प्रदानार्थ स्वयं सम्मार्जनी लेकर विप्रवृन्द के सहित देबालय में उपस्थित हुये थे ॥१॥

स्कन्ध देश में कुद्दाल, कटितट में धटी बन्धन कर नुतन वस्त्र के द्वारा उष्णीष मण्डित होकर श्रीकृष्णचैतन्यदेव एवं अद्वैत आचार्य्य प्रभृति महात्मावृन्द, कुद्दाल एवं मार्ज्जनी लेकर श्रीकृष्ण के हड्डिप होकर देवालय के द्वारदेश में उपस्थित हुये थे ॥३॥

श्रीकृष्णगुणगान करते करते भक्तवृन्द भित्ति मार्जन किये थे, इस प्रकार नृहरि की सत सहस्र प्रकार शिक्षा रहीं, भगवान् आत्म तन्त्र होने से भी करुणावशतः शिक्षा प्रदान किये थे, श्रीगौरचन्द्र भगवान् ही एकमात्र जगत् का परम कारण हैं ॥४-५॥

अथ काले व्रजन्तं तं पथि दृष्ट्वा जनार्द्दनम् ।
कश्चित् कुष्ठी नमस्कृत्य विनयानतकन्धरः ॥६॥
उवाच भगवान् सर्वे वदन्ति त्वां सनातनम् ।
पुरुषं देवदेवेशं मां समुद्धर पापिनम् ॥७॥
त्राहि मां दुःसहान्नाथ कुष्ठरोगात् सुदारुणात् ।
तत् श्रुत्वा भगवान् क्रुद्धः शोणपद्मविलोचनः ॥८॥
उवाच भो दुराचार वैष्णवद्वेषकारक ।
श्रीवासपण्डितद्वेषं कृत्वा त्वं हि कथं सुखी ॥९॥
अवाच्यवादमुक्त्वा तं निष्टप्तं वैष्णवोत्तमम् ।
शतजन्मनि कुष्ठी तं विगताङ्गो भविष्यसि ॥१०॥
वैष्णवद्वेषकर्त्तारं नोद्धरामि कदाचन ।
वहिःप्राणमिमं देहमन्तःप्राणं च वैष्णवम् ॥११॥

एकदिन प्रभु मार्ग में विचरण कर रहे थे, प्रभु जनार्दन को देखकर एक कुष्ठ रोगाक्रान्त व्यक्ति ने प्रभु को कहा—आप को सबलोक पुराण पुरुष देवदेवेश भगवान् कहते हैं, आप मुझ पापी को उद्धार करें ॥६-७॥

हे नाथ ! सुदारुण दुःसह क्लेशावह कुष्ठरोग से मुझ को आप उद्धार करें सुनकर प्रभु के नयनद्वय अरुणवर्ण होगये एवं भगवान् क्रुद्ध होकर कहे थे ॥८॥

तुम दुराचारी हो, वैष्णव विद्वेषी हो, तुमने श्रीवासपण्डित को विद्वेष किया । अतः तुम कैसे सुखी बनोंगे ॥९॥

वैष्णवोत्तम श्रीवास को तुमने अवाच्य कथन किया । अतः तुम शापग्रस्त हो, शतजन्म तुम कुष्ठ रोगी एवं विकलाङ्ग बनोंगे ॥१०॥

तं द्विषन्ति महामोहात् पतन्ति निरयेऽशुचौ ।
वैष्णवेषु न तापे च मां द्विषन्ति कथञ्चन ॥१२॥
तानुद्धरिष्ये सर्वत्र महापातकसञ्चयात् ।
एवमुक्त्वा ययौ देवः श्रीवासस्यालये शुभे ॥१३॥
उपविश्य सुखं रेमे भगवान् स्वजनैः सह ।
श्रीवासपण्डितं प्राह करुणार्द्रो जगद्गुरुः ॥१४॥
पथि कश्चित् कुष्ठोरोगी दुष्टस्त्वदपराधतः ।
भुङ्क्ते स नरकं सर्वमुद्धारो नैव दृश्यते ॥१५॥
स प्राह योऽपराधं मे करोति हि समासतः ।
उद्धारं कुरु तं देव वरमेतत् सदा मम ॥१६॥

वैष्णव विद्वेषी का उद्धार मैं कभी नहीं करूँगा। इसदेह में बारह प्राण वायु हैं, किन्तु अन्तः प्राण वैष्णव हैं ॥११॥

उनसब को मोहवशतः द्वेष कर अशुचि नरक प्राप्त करते हैं, जो लोक वैष्गवको ताप प्रदान नहीं करता मुझ को विद्वेष करता है भवन से मैं उसको उद्धार करता हूँ, इस प्रकार कहकर प्रभु श्रीवास पातक चले गये थे ॥१२-१३॥

जगद्गुरु भगवान् स्वजनवृन्द के सहित सुखपूर्वक उपवेशन कद करुणार्द्र होकर श्रीवास को कहे थे ॥१४॥

तुम्हारे निकट अपराधी के कारण एक व्यक्ति कुष्ठ रोगाक्रान्त होकर पथ में पड़ा हुआ है, उसका नरकभोग ही होगा। उद्धार का कोई उपाय नहीं दिखता है ॥१५॥

श्रीवास ने कहा– मेरे निकट में जिसका अपराध है, उसका उद्धार आप करेंगे, यह वरप्रदान मुझको आप करे ॥१६॥

पापपूर्णात् जगन्नाथमाधवादीन् समुद्धर ।
ओमित्याह स भगवान् सर्वपातकमुलहृत् ॥१७॥
एकदा ब्राह्मणः कश्चिन्नृत्यन्तं पुरुषोत्तमम् ।
द्रष्टुं गत्वा न दृष्ट्वा च वहिर्द्वाःस्थेन वारितः ॥१८॥
रुष्टः परदिने दृष्ट्वा गङ्गातीरे जगद्गुरुम् ।
सुदुर्म्मुखो रुषित्वा तं शापं दास्यन्नुवाच ह ॥१९॥
यज्ञोपवीतं वक्षःस्थं छित्वा शापं ददौ क्रुधा ।
यस्मात्त्वन्नृत्यसमये तत्र गच्छन्निवारितः ॥२०॥
द्वाःस्थेन ते ततोऽद्य त्वं संसाराद्वहिराव्रज ।
तत् श्रुत्वा ब्राह्मणवचो मुमोद भगवान् परः ॥२१॥
क्रुद्धब्राह्मणशापो वै वर एवाभवन्मम ।
उद्धरामि जनान् सर्वान् सन्न्यासाश्रममाश्रितः ॥२२

पाप पूर्ण जगन्नाथ माधव प्रभृति का उद्धार भी आप करें, वे अत्यन्त पापपूर्ण हैं, सर्व पातकमूलहन्ता प्रभुने श्रीवास का कथन को अङ्गीकार किया ॥१७॥

एकदिन एक ब्राह्मण सङ्कीर्त्तन नृत्य दर्शन हेतु आया था। किन्तु द्वार रुद्ध रहने के कारण प्रवेश कर नहीं पाया ॥१८॥

उससे वह क्रुद्ध हो गया था। परदिन गङ्गातीर में प्रभु को देखकर क्रुद्ध होकर शाप देते हुये कहा था ॥१९॥

यज्ञोपवीत को तोड़ कर शाप देते हुये कहा– तुमने मुझको नृत्य समय में जाने नहीं दिया, अतः तुम्हारा संसार में वास नहीं होगा" ब्राह्मण का कथन को सुनकर प्रभु सन्तुष्ट हुये थे ॥२०-२१॥

क्रुद्ध ब्राह्मण का शाप मेरा वर रूपमें परिणत हुआ। मैं सन्न्यासाश्रम को ग्रहण कर सब व्यक्ति को उद्धार करूँगा ॥२२॥

इति श्रुत्वा हरेः शापं श्रद्धया परया सह ।
ब्रह्मशापाद्विमुच्येत नवं सुखमवाप्नुयात् ।।२३

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे ब्रह्मशापवरो नाम
त्रयोदशः सर्गः

इस प्रकार श्रीहरि के प्रति शाप प्रदान वृत्तान्त का श्रवण जो जन श्रद्धा से करता है, वह ब्रह्मशापसे मुक्त होकर नवीन सुखप्राप्त करता है ।।२३।।

इति श्रीकृष्णचैतन्तचरिामृते द्वितीयप्रक्रमेब्रह्मशापवरो नाम
त्रयोदशः सर्गः

चतुर्दशः सर्गः

—※—

अथ प्रभाते विमले दुचनाथे
स्मरन् मुनिब्राह्मणसज्जनान् बहून् ।
स पाठयन् दैवतगौरचन्द्रो
बभूव नीलाम्बरभावभावितः ॥१॥
स हासयन् देहि मधूनि साम्प्रत-
स्त्वतीव तं मेघसमं स्वनं पुनः ।
शुश्राव तस्मिन् समये हलायुधं
नीलाम्बरं श्वेतमहीधरं प्रभुम् ॥२॥
सौनन्दपाणिं वरपद्मलोचनं
दृष्ट्वाद्भूतं हृष्टमनाः प्रहर्षयन् ।
लोकान्ननर्त्ताखिललोकपालकः
स्वयं हरि स्त्रैर्मुनिभिः सुवेशधृक् ॥३॥

अनन्तर विमल प्रभातकाल में दिनमणि का उदय होनेपर श्रीगौरहरि ब्राह्मण बालकों को विद्यादान करने के पश्चात् नीलाम्बर के भाव से आविष्ट हुये थे ॥१॥

प्रभु हँसकर कहे थे, मुझको सम्प्रति मधुदान करो, उसके पश्चात् उन्होंने मेघनिर्घोष को सुना, एवं उस समय नीलाम्बर स्वेत महीधर सौनन्दपाणि-(मुषल पाणि) वरपद्मलोचन हलायुध प्रभु को देखा। अनन्तर आनन्द चित्त से सबको हर्षित करते हुये अखिललोक पालक हरि स्वयं उत्तम वेश धारण पूर्वक मुनित्रयं के सहित सङ्कीर्त्तन नृत्य किये थे ॥२-३॥

विप्रैरुपेतो हरिनामगायनै-
हृष्टोऽगमद्द्व्यमुरारिवेश्मनि ।
तत्रावदद्देहि सुधां मधूत्कटां
प्राचीदिवानाथ इवातिलोहितः ॥४॥
जिष्णुः स्वयं तोयसुपूर्णभाजनं
हस्तेन धृत्वा पिवदम्बु पावनम् ।
ननर्त्त मत्तोऽतिहसन् लुठन् क्षितौ
तदा स्तुवंस्ते हलिनं द्विजत्तमाः ॥५॥
पेतुः पृथिव्यां चरणाम्बुजद्वये
मुमोद चातीव मुहुर्मुहुर्जनः ।
एवं स देवो बलदेवलीलया
ननर्त्त चोवाच च सामनिस्वनः ॥६॥
नाहं स कृष्णो वचसा सुखी भवेद्-
यो मे प्रयच्छन्तु सुपेयमद्भुतम् ।

मुरारि के भवन में हरिनाम गानपरायण विप्रवृन्द के सहित आनन्द चित्त से हरिनाम सङ्कीर्त्तन किये थे, अनन्तर प्रातःकालीन सूर्य्यवत् लोहितनेत्र होकर कहे थे–उत्तम मधुवत् सुधा प्रदान करो ॥४

जिष्णु प्रभुने स्वयं जलपूर्ण भाजनको लेकर जल पान किया। एवं मत्तता वशतः नृत्य भूतल में पतन, लुठन अतिहास्य का विस्तार कर नृत्य किया। अनन्तर ब्राह्मणगण उनको स्तबन बलराम मानकर करने लगे ॥५॥

पृथिवी में चरणयुगलस्थापन कर भक्त जनगण को पुनः पुनः आलिङ्गन किये थे, एवं बलदेवलीला में नृत्य किये थे, एवं साम निस्वन से कहे थे –मैं वह कृष्ण नहीं हूँ, केवल वचन से ही सुखी

मल्लोऽयमित्यङ्गुलिना द्विजैकं
क्षिपन् सुदूरे प्राहिणोत् पृथिव्याम् ॥७॥
पपात सोऽप्यागतसाध्वसोऽभू-
देवं विजह्रे भगवान् स्वलीलया ।
प्रातः समारभ्य दिवावसानं
यावत् स देवो बलदेवलीलया ॥८॥
क्रीड़ां विधत्तेऽद्भुतरूपवेशः
स्वयं कृतस्नानविधिर्ययौ गृहम् ।
भुङ्क्ते स्ववर्गैं परिवेष्टितःस्वयं
श्रीगौरचन्द्रो जगतां पतिः प्रभुः ॥९॥
अथापरेऽह्नि परितप्तदेहो
मुहुर्म्मुहुर्मोहमवाप देवः।
स्मरन् वने तं परिकीर्णभूर्द्धज-
स्तदाद्विजस्तं सलिलैरसिञ्चयत् ॥१०॥

बनूँ, जो मुझको सुपेय मधुदान करेगा, उसपर मैं प्रसन्न हो जाऊँगा, यह कहकर एकद्विज को 'यह मल्ल है बोलकर एक अङ्गुलि से अति दूर में निक्षेप किये थे।।६-७।।

विप्र भी अति दूर में गिर कर भयभीत हो गया, इस प्रकार भगवान् बलदेवलीला में आविष्ट होकर प्रातः काल से आरम्भ कर दिवावसानपर्य्यन्त शोभित थे ॥८॥

जगत्पति श्रीगौरहरि प्रभु इस प्रकार विविध क्रीड़ा करत, गृह गमन किये थे, एवं स्नानादि कृत्य सम्पन्न कर भक्तवृन्द के सहित परिवेष्टित होकर भोजन किये थे ॥९॥

अपर दिन श्रीगौरहरि निज देह में अतीव प्रताप का अनुभव किये थे, एवं पुनः पुनः मोह प्राप्त हो रहे थे, उस समय उनके केश

गदाधरं सम्प्रति लब्धसंज्ञः
प्रोवाच वैकल्यगिरा स्वयं प्रभुः।
समानयासाद्य समस्तबन्धून्
सद्वैष्णवांस्तान् प्रतिलोकयामि ॥११॥

तदाज्ञया ते मुदिताः समागता
आचार्य्यरत्नप्रमुखा महत्तमाः।
दृष्ट्वा हरिं विह्वलितं सगद्गद-
स्वरं विमूढ़ा इव ते भृशार्द्दिताः ॥१२॥

बभूवुरूचुश्च किमत्र कारणं
वदस्व तात स्वयमेव साम्प्रतम्।
श्रुत्वावदत्तान्नृहरिः सुविह्वलो
दृष्टो मया श्वेतगिरिर्हलायुधः ॥१३॥

कलाप आलुलायित हो गये थे, उस समय द्विजने उनको सलिल से अभिषेक किया था ॥१०॥

संज्ञाप्राप्त कर प्रभुने श्रीगदाधरको विह्वल होकर कहेथे समस्त सद् वैष्णववर्ग को यहाँपर उपस्थित करो, मैं उनसब को देखना चाहता हूँ ॥११॥

उनकी आज्ञा से सज्जनगण वहाँपर आगये थे, उन में आचार्य प्रमुख महत्तमवृन्द थे, विह्वल गद् गद् स्वर युक्त हरि को देखकर सब किं कर्त्तव्य विमूढ़ होकर अतीव दुःखित हुये थे ॥१२॥

उन्होंने कहा— कारण क्या है, हे तात ! सम्प्रति आप कहें' सुनकर हरिने कहा—"श्वेत पर्वत के समान हलायुध को मैं ने देखा है। वह मुषल कर में शोभित है, एवं सहस्र रश्मि के तुल्य है, तथा उत्तम भूषणों से विभूषित हैं ॥१३॥

सुवर्णसौनन्दकः सहस्रगु-
यथा प्रभाते वरहेमभूषणः ।
श्रुत्वा तदा श्रीयुतचन्द्रशेखरा-
चार्य्योऽथ तं तात वदस्व तत् प्रभो ।१४।

दृष्टस्त्वया तत् सहसा तदा हरि-
स्तत्रैव गत्वा हलिनं ददर्श ।
ततस्तदावेशतया पुर्नविभु-
र्ननर्त्त तद्वेषधरो मुदान्वितः ॥१५॥

हृष्टो हरिः कौतुकनित्यजल्पितै-
रानन्दितात्मा करभङ्गसङ्गतैः ।
सद्वैष्णवैः पुण्यमहोधरोर्ज्जितैः
क्रान्तैर्विधुः स्वर्गसुखं पदक्रमैः ॥१६॥

एवं दिनान्तं सनिनाय यज्ञभुक्
यज्ञैः सुसङ्कीर्त्तनकैर्जगद्धितैः ।
ततोऽपराह्ने पुनरेव देवे
नृत्योन्मुखे वारुणिदिव्यगन्धैः ॥१७

सुनकर श्रीचन्द्रशेखर प्रभृति ने कहा—"हे प्रभो! वह सब कहाँ हैं, आप कहें ॥१४॥

उसके बाद उन्होंने वहाँपर हली को देखा, एवं हलधर आवेश से प्रभु पुनः पुनः आनन्दित होकर नृत्य करने लगे ॥१५॥

हरि को नित्य कौतुक जल्पित रूप में देखकर सत्पुण्यवन्त वैष्णववृन्द स्वर्ग सुख का अनुभव किये थे ॥१६॥

यज्ञभुक् हरि जगत् के हित के निमित्त सङ्कीर्त्तन यज्ञानुष्ठान करतः समस्त दिवस अतिवाहित किये थे, अनन्तर अपराह्न काल में हरिसङ्कीर्त्तन में दिव्य वारुणि गन्ध को विस्तार किये थे ॥१७॥

अपूरि सर्वाणि दिशां मुखानि
तदा समाघ्राय जना ननन्दुः ।
श्रीरामनामा द्विजवर्य्यसत्तमो-
ऽपश्यत्तदा तत्र समागतान् बहून् ॥१८॥
कर्णैकपद्मान् कमलायतेक्षणान्
श्रोत्रैकविन्यस्तकुण्डलार्च्चिषा ।
विद्योतमानान् सितवस्त्रमस्तकान्
श्रुत्वा ततोऽन्ये ननृतुः प्रहर्षिताः ॥१९॥
तत्रैव कश्चिद्वनमालीनामा
पश्यत्यलं काञ्चननिर्मितं क्षितौ ।
सौनन्दनं सूर्य्यकरप्रकाशकं
संहृष्टरोमाश्रुभिरार्द्रविग्रहः ॥२०॥
ततो ननर्त्ताखिललोकनाथो
हलायुधावेशरसेन मत्तः ।

वारुणीगन्ध से दिक् समूह आमोदित होनेपर आघ्राण प्राप्तकर भक्तवृन्द आनन्दित हुये थे, एवं उस समय श्रीरामनामक विप्रवर्य्य ने समागत अनेक व्यक्तियोंको देखा था ॥१८॥

वे सब कमलपत्तायत लोचन के थे, उनसब के कर्णों में एक एक कमल कर्ण भूषण थे, एवं उत्तम कुण्डलों से शोभित थे, शुभ्र वसनावृत मस्तक थे, एवं अत्यन्त कान्ति पूर्ण थे, यह वृत्तान्त सुनकर अपर समस्त व्यक्ति आनन्दविभोर होकर नृत्य किये थे ॥१९॥

उस समय वनमाली नामक विप्र भूतल में काञ्चननिर्मित सूर्य्यतुल्य तेजस्वी सुनन्द नामक गदा को देखकर रोमञ्चित कलेवर एवं आर्द्र चित हुये थे ॥२०॥

अनन्तर अखिल लोकनाथ, हलायुध रसावेशमत्त होकर नृत्य

दृष्ट्वावधूतश्च निनाय वक्षसि
तं गौरचन्द्रञ्च रसेन तेन ॥२१॥
नभोगतानेमुरनुत्तमेन
भावेन तृप्ता दिविजाः सहेशाः ।
प्रेमाश्रुपूर्णं पुलकाकुलावृताः
श्रीरामनारायणकृष्णजल्पिनः ॥२२॥
एवं निशां तां स निनाय देव-
स्ततो ययौ स्वःसरिदम्बुमध्ये ।
विगाह्य तस्मिन् सुजनैः समेतो
हसन् शनैः क्रीड़नकं चकार ॥२३॥
ततोऽगमद्वेश्म निजं जितारि-
र्जना नमस्कृत्य हरिं निजाश्रमम् ।

किये थे, अवधूत ने भी यह देखकर रसाविष्ट होकर श्रीगौरचन्द्र को निज वक्षःस्थल में स्थापन किया ॥२१॥

महेश के सहित देववृन्द अनुत्तम भाव से प्रेमाश्रु पूर्ण एवं पुलकावृत होकर श्रीरामनारायण कृष्णनामोच्चारण पूर्वक उनको प्रणाम किये थे ॥२२॥

प्रभु, इस रीति से उक्त निशा अतिवाहित किये थे, प्रत्यूष में स्वर्गङ्गा में सुजनवृन्द के सहित अवगाहन किये थे, एवं सुजनवृन्द के सहित हास्यविनोद क्रीड़ा किये थे ॥२३॥

अनन्तर समस्त जन श्रीप्रभु के सहित श्रीप्रभु के भवन में उपस्थित हुये थे, एवं श्रीप्रभु को नमस्कार करके निज निज आश्रम में चलेगये थे, इस प्रकार प्रभात काल समस्त व्यक्ति श्रीप्रभु दर्शन के निमित्त उनके भवन में एकत्र होते थे एवं श्रीप्रभु के चरणनलिन

यपुः प्रभाते पुनरेव सर्वे
समागता द्रष्टुमजाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥२४॥
एवं प्रकाराणि बहूनि चक्रे
हलायुधावेशधरो मुकुन्दः ।
स्वभक्तिपूर्णो जगतां हितार्थी
श्रीकृष्णचैतन्यप्रभुः स्वयं हरिः ॥२५॥
शृणोति यः श्रीहलिनश्चरित्रं
विचित्रवेशैर्यदकारि स प्रभुः ।
भवेत् सदा भक्तिरसाभिमत्तो
मृतोऽश्नुते श्रीपुरुषोत्तमामृतम् ॥२६॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे बलभद्रावेशोनाम चतुर्द्दशः सर्गः

युगल को देखकर आनन्दित होते थे।।२४।।

एवम्विध हलायुध वेषधारी प्रभूने अनेक प्रकार क्रीड़ा की, जगत् हितकारीप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य स्वयंहरि, जगत् को भक्ति शिक्षा से पूर्ण किये थे, ।।२५।।

जो व्यक्ति, श्रीबलराम चरित्र को सुनता है जिसका अभिनय श्रीचैतन्य प्रभुने श्रीहलायुध वेश धारण कर किया था, वह व्यक्ति— श्रीकृष्णभक्ति रसाप्लुत होकर श्रीपुरुषोत्तम पाद पद्मामृतास्वादन से परितृप्त होगा ।।२६।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे बलभद्रावेशोनाम चतुर्द्दशः सर्गः

पञ्चदशः सर्गः

—*—

उवाच कृष्णः कलनादरम्यं
वचोऽमृतं श्लाघ्यसगदगदस्वरम् ।
वराहदेवो भगवान् ददो मा-
मालिङ्गनं यज्ञवपूर्महीधरः ॥१॥
हलायुधो मे हृदि सन्निविष्टः
सवेणुपाणिर्नियनाञ्जनोऽभूत् ।
इतीरितं तस्य निशम्य विप्रा
हृष्टा ननन्दुर्ननृतुर्महान्तः ॥२॥
श्रीवासमाह प्रहसन् स कृष्णो
वेणुं प्रयच्छाद्य मदीमुत्तमम् ।
तदावदत् सोऽपि तवालये विभो
भीष्मात्मजायाः परिरक्षितोऽस्मि सः ॥३॥

उत्तम गदगदायमान स्वर से रम्य वाणीका उच्चारण क्षीकृष्ण प्रभुने किया, "भगवान् वराह यज्ञवपु गहीधर देवने मुझको आलिङ्गन किया ॥१॥

हलायुध मेरा हृदयमें सन्निविष्ट होकर वेणुपाणि एवं नयनानन्द दायक हुये हैं" इस प्रकार कथन को सुनकर विप्रगण आनन्दित होकर नृत्य किये थे ॥२॥

प्रभु कृष्ण ने श्रीवास को कहा–"मेरी उत्तम वेणु प्रदान करो,, उन्होंने उत्तर में कहा—"वह वेणु आपके भवन में भीष्मातमाजाया के द्वारा रक्षित है ॥३॥

वेणुस्तदस्मिन् समये न लभ्यते रात्रौ कवाटापिहिते गृहान्तरे ।
एवं निशम्य प्रहसन्निशां तां भक्तैः समं लोकगुरुर्निनाय ॥४॥
प्रातर्ययुस्ते मुदिता द्विजेशा नत्वा हरिं स्वःसरिदम्बुमध्ये ।
स्नात्वा सुखेनैव हरिं समच्चर्य भुक्त्वा प्रसादं परमां मुदं ययुः ।५
एवं महाक्रीड़नकं मुरारेःश्रृत्वा विमुच्येत भवार्णवान्नरः ।
पठेल्लभेत्तत्पदपङ्कजे रतिं द्रुतं महारोगगणाद्विमुच्यते ॥६॥
यस्य पादकमले कमलायाः प्रीतिः सागरवरा मुहुर्बभौ ।
तस्य कृष्णपदपङ्कजाश्रये गोपयौवतवशेऽभवन्मनः ॥७॥
एकदा समभिधाय सुवेशं योषितां स्मितसुधामुखचन्द्रः ।
चन्द्रशेखरगृहाङ्गने विभु-र्नर्त्तनं निजजनैः स चकार ॥८॥

इस समय वेणु प्राप्त करना सम्भव नहीं है रात्रि है गृहद्वार कवाट के द्वारा पिहित होगया है। इस प्रकार सुनकर हँस कर समस्त रात्रि अतिवाहित प्रभुने भक्तवृन्दों के सहित किया था ॥४॥

द्विजवर्य्यगण-प्रातःकाल होनेपर आनन्द से श्रीहरि को प्रणाम कर निज निज भवन को चलेगये थे, पश्चात् सुरधुनी में अवगाहन स्नान कर सुखपूर्वक श्रीहरि पूजनादि कृत्य समापनानन्तर परमानन्द से श्रीहरिके प्रसादान्नग्रहण किये थे ॥५॥

इस प्रकार मुरारि की महाक्रीड़ा को सुनकर मानव भवार्णव से मुक्त होता है, चरित्रावलि पाठ करने से श्रीहरिचरणों में प्रीति लाभ होता है, सत्वर महारोग से भी मुक्त होता है ॥६॥

जिनके पद कमल में कमला की अत्युत्तमाप्रीति हुई है,उन गोकुलयुवराज श्रीकृष्णचन्द्र के चरण युगल में मनः वशीभूत होता है ॥७॥

एकदा स्मित सुधामुखचन्द्र गौरहरि योषित् के सुवेश से विभूषित होकर निजजनगण के सहित चन्द्रशेखर भवन में नृत्य किये थे ॥८॥

तत्र नारद इवाबभो महान् श्रीपतेः प्रथमजो द्विजोत्तमः।
दण्डवद्भुवि निपत्य सुर्र्षिः प्राणमन्मुनिरजात्मजो जितम् ॥९
मां प्रतीहि शनकैरिदमुक्त्वा श्रीगदाधरमहीसुरमाह।
गोपिके सुर्र्षिपदे त्वं संप्रणम्य नतकन्धरचित्ता ॥१०॥
तात मातृचरण परिहृत्य कृष्णपादकमलस्य सुसेवाम्।
कर्तुमीश इह तत्करुणाब्धेः पादपद्मकरुणा मयि ते स्यात् ॥
११॥
एवमाप्तवचसा स मुनिस्तां संप्रहृष्टवदनः पुनराह।
अप्सरे सुरनदौ पयसि त्वं माघमासशतकैः सदा कुरु ॥१२॥
स्नानमेकमनसा तदा भवेत् कृष्णपादकमलस्य सुसेवा।
तत्कृतं मुनिवचो हि भवत्या तेन गोकुल इहाभवज्जनिः ॥१३

उस समय श्रीपति के प्रथम नन्दन के पुत्र नारद का आविर्भाव हुआ, द्विजोत्तम सुर्र्षि, दण्डवत् भूतल में निपतित होकर प्रभु को प्रणाम किये थे ॥९॥

'मुझको जानो' इस प्रकार धीरे श्रीगदाधर विप्रवर्य्य को प्रभुने कहा–आप गोपिका हैं सुर्र्षिके चरणों में नतकन्धर होकर संयत चित्त से प्रणति करो ॥१०॥

हे तात ! मातृ चरण परित्याग पूर्वक श्रीकृष्णचरणकमल की सुसेवा करने की यदि इच्छा हो, तब करुणमय प्रभु की कृपा होगी ११

इस प्रकार आप्त वचन को सुनकर प्रसन्न वदन से मुनिने उन को कहा—आप अप्सरा हैं, माघमासकी रात में सुरनदी में आप सदा स्नान करें ॥१२॥

एकाग्र मनसे यदि होता है, तो श्रीकृष्णचरणों की सेवा मिलेगी यह मुनि वाक्य है, उस से गोकुल में जन्म होगा ॥१३॥

उत्तमामतितरां हरिभक्तिं प्रेमनिर्भररसोर्म्मिभिरार्द्रा।
दुर्लभां त्रिजगतो मुनेरपि यां प्रगायति मुदा शुकदेवः ॥१४॥
तथाच—

"वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥१५॥
किं वदामि हरिभक्तिमहत्वं सर्वपापगणवान् द्विजसूनुः।
दुःखगालिभिरजामिलनामा पुत्रमात्रमनुचिन्त्य जगाम ॥१६॥
नाममात्रविभवेन भवाब्धेः पारमेव परदुस्तरस्य च।
गच्छतुसगण एव कृपाब्धेर्धाम किं पुनरजस्य सुसेवा ॥१७॥
एवमुक्तावति भूसुरवर्य्ये, प्रेमसागररसोर्म्मिभिरार्द्राः।
संबभूवुरति ते रसपूर्णास्तूर्णमेव मुदिता द्विजवर्य्याः ॥१८॥

अति सत्वर उत्तमाभक्ति होगी, एवं प्रेमरस से चित्त आर्द्र होगा, वह ही त्रिजगत् में सुदुर्लभ पदार्थ है, मुनिका भी दुर्लभ है, श्रीशुकदेव, उस भक्ति का गान आनन्द से करते हैं ॥१४॥

"मैं नन्द व्रजललनागणों की पादरेणु का वन्दन पुनःपुनः करता हूँ, जिन के हरि कथा उद्गीत जगत्त्रय को पवित्र करता है ॥१५॥

श्रीहरिभक्तिका महत्त्व कया कहूँ, द्विजनन्दन अजामिल निखिल पाप परायण होकर भी पुत्रनाम व्यपदेश से निज पुत्रका श्रीनारायण नाम उच्चारण कर अचिन्त्य पदप्राप्त किये थे ॥१६॥

नाम मात्र विभव से ही महाभवाब्धि शुष्क होजाता है, जो अति दुस्तर है, वह निजगण के सहित नामग्रहण प्रभाव से कृपानिधि के धाम को प्राप्त किया है, उनप्रभु की सेवा करने से तो उत्तमगति होती ही है ॥१७॥

भूसुरवर्य्य इस प्रकार कहनेपर श्रोतृवृन्द प्रेमरससिन्धुतरङ्गों से आर्द्र चित्त हुये थे, एवं द्विजवृन्द भक्तिरस परिपूरित हृदय होकर

यदङ्घ्रिनखचन्द्रिकाकिरणमात्रमेतत् परं
सुरेन्द्रमुनिपुङ्गवैः सहचरैर्हि ब्रह्मादिभिः ।
कृतं सकलनिर्म्मलं गोपगोपीनामामृतै-
स्तदप्सरःकथादिकं मनुजभावमेव स्फुटम् ॥१९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे गोपीभाववर्णनं
भक्तियोगो नाम पञ्चदशः सर्गः

परमानन्दित हुये थे ॥१८॥

जिनके नखचन्द्र का किरण मात्र से ही सुरेन्द्र मुनिपुङ्गववृन्द एवं ब्रह्मादि देवगण गोपी नामामृत के द्वारा सकल निर्मल किये थे, अप्सर कथा प्रभृति को विशुद्ध किये थे, एवं नराकृति परब्रह्म को सुव्यक्त किये थे ॥१९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिामृते द्वितीयप्रक्रमे गोपीभाववर्णनं
भक्तियोगो नाम पञ्चदशः सर्गः

षोड़शः सर्गः

—*—

प्राविशत्तदनु दण्डधरोऽग्रतः पूर्णचन्द्रसदृशो हरिदासः ।
कीर्त्तनं कुरु हरेरितिवादी बोधयं स्त्रिजगतीं परितप्ताम् ॥१॥
तस्य तद्वचनमब्जमुखस्य स-न्निपीय हृषिताङ्गरुहास्ते ।
वैष्णवा ननृतुरुद्गतनेत्र-वारिभिर्-मितविग्रहभाजः ॥२॥
प्राविशत्तदनु वैष्णवराजो राजमान इव तिग्ममरीचिः ।
आक्षिपन्निव सुधामिव कान्ति-मब्जचारुवदनः स महात्मा ॥३॥
ईश्वरस्य कलया तु विजातो-ऽद्वैतवर्य्य इतरैरनुगैः सः ।
आननर्त्त हरिपादरसार्द्रो मत्तसिंह इव दुर्द्दमनान्तः ॥४॥
तं विलोक्य मुदितैर्नयनाब्जैः साधवः सदसि तस्य मुखेन्दुम् ।
अद्भुतं पपुरवश्यहृदस्ते प्रेमसागररसेषु निमग्नाः ॥५॥

अनन्तर पूर्णचन्द्र सदृश दण्डधर श्रीहरिदास–श्रीहरिकीर्त्तन करो, "इस प्रकार वचन के द्वारा त्रिजगत् के ताप को विनष्ट कर सब को प्रबोधित करते हुये प्रथम प्रविष्ट हुये थे ॥१॥

श्रीहरिदास के मुखपद्म विनिसृत वचनामृत पानकर वैष्णववृन्द आनन्दित हुये थे, एवं पुलक तथा अश्रुवारि से शोभित होकर श्रीहरि कीर्त्तन किये थे ॥२॥

मनोहर अब्जवदन महात्मा अद्वैत दिनकर तुल्य कान्ति मे देदीप्यमान होकर कान्ति से सुधाकर को पराजित कर मत्तसिंह के समान श्रीहरिचरण सरोज मकरन्द मत्त होकर नृत्य किये थे, एवं उन के सहचरवर्ग भी प्रेमविभोर हुये थे ॥३-४॥

साधुवर्ग समास्थल में अवश होकर नयनों के द्वारा उनकी मुखेन्दु सुषमा का पान कर प्रेमसागर में निमग्न हुये थे ॥५॥

गोपीवेशधरको बलदेवः प्राविशद्रसविशेषविनोदी ।
प्राणनाथकरपल्लवप्रधृतो नयनवारिपरिपूर्णसुदेहः ॥६॥
वासुदेवकृतवेशविशेषः प्राविशत् स भगवानमृतांशुः ।
तप्तकाञ्चनवपुः कनकाद्रि-शृङ्गराज इव जङ्गमवेशः ॥७॥
गोपीकेव वरकञ्चुलिवक्षाः शङ्खकङ्कणधरोऽरुणवस्त्रः ।
नूपुरेण नुतपादसुपद्मः सूक्ष्ममध्यवपुषा स ननर्त्त ॥८॥
ज्योतिषातिमिलिते भुवस्तले देहजेन नृहरेः कृते तदा ।
दिव्यगन्धपवनः स कम्पयन् मालती मलयजो बबौ मुहुः ॥९॥
खेदशोककलया विदितोऽपि पूर्णमण्डल इव प्रचकाशे ।
चन्द्रमा दिवि सुरेशमहेश-लोकपालसगणावृतमार्गे ॥१०॥

रस विशेष विनोदी बलदेव प्राणनाथ के करधारण पूर्वक प्रेमाश्रु से शोभित होकर गोपीवेश धारण कर प्रवेश किये थे ॥६॥

तप्तकाञ्चन वपु कनकाद्रि के शृङ्गराज के तुल्य जङ्गम वेग शोभित वासुदेव वेशविभूषित भगवान् अमृतांशु का प्रवेश भी हुआ ॥७॥

वक्षस्थल में गोपिका के तुल्य उत्तम कञ्चुलि धारण कर शङ्ख कङ्कण शोभित हस्त, अरुण वसन, नूपुर शोभित पाद पङ्कज, एवं क्षीणकटि युक्त होकर आप नृत्य किये थे ॥८॥

नरहरि की देह कान्तिसे भूतलका अंधकार विदुरित हुआ था, दिव्य गन्धयुक्त मालतीको कम्पित कर मलयज समीरण प्रवाहित होने लगा ॥९॥

खेद शोक कलायुक्त सुप्रसिद्ध चन्द्रमा आकाश में सुरेश महेश लोकपालगण के सहित गगन में शोभित हुये थे ॥१०॥

कीर्त्तनं स भगवानतितेजा नर्त्तनञ्च मुदितः प्रचकार ।
भावमाशु विदधे कमलायाः कान्तिभावभृद्वपुषोऽस्याः ॥११॥
तत्र देवगृहमध्यगतायाः कृष्णदिव्यवपुषः प्रतिमायाः ।
सन्निकर्षमुपसृत्य विनीतो नव्यवस्त्रदशया कुसुमानि ॥१२॥
विग्रहादपनयन् पुनरेव तत्र तानि निदधे सुमनांसि ।
प्रेमभक्तिरसपूरितकोटि-मातृस्नेहपरिपूरितोऽभवत् ॥१३॥
तां स्त्रियं प्रमुदिताः परिनेमुः संस्तवेन श्रुतिभिः प्रतुष्टुवुः ।
आज्ञाया सकलदेवमयस्य तस्य हृष्टमनसो द्विजमुख्याः ॥१४॥
तत्क्षणात् पुनरभूद्भगवत्याः सर्वशक्तिमयतां तु वहंत्या ।
भाव एव सुजना मुदमापु-स्तुष्टुवुः सुरकृतैः स्तवराजैः ॥१५॥

अति तेजीयान् भगवान् आनन्दसे कीर्त्तन सन्नर्त्तन प्रचार किये थे, एवं कमला का भाव विभूषित गात्र आप हुये थे ॥११॥

वहाँ के देव मन्दिर में प्रविष्ट होकर दिव्यवपु श्रीकृष्ण प्रतिमा के सन्निकट में जाकर कुसुम एवं वसनभूषण संग्रह किये थे, श्रीविग्रह से कुसुम अपसारित कर सद्य प्रस्फुटित कुसुम अर्पण किये थे, अनन्तर मातृस्नेह परिपूरित भक्तिरसपूर्ण विग्रह रूप में शोभित हुये थे १२-१३

द्विजाग्रणीवृन्द, लक्ष्मी स्वरूपिणी को आनन्दचित्त से प्रणाम कर स्तव किये थे, सर्वदेवमय की आज्ञा से विप्रवर्ग आनन्द चित्त से श्रुतिविहित अनुष्ठान किये थे ॥१४॥

तत्क्षणात् प्रभु भगवतीभाव से सर्वशक्तिमयता का प्रकटन किये थे, सुजनवृन्द उनको देखकर आनन्दित होकर देवकृत स्तवराज के द्वारा उनका स्तव किये थे॥१५॥

आसने समुपविश्य सुक्लिप्ते देवतापतिकृती पुनराह।
प्राविशन्नटनवीक्षणकामा-ऽत्रागतास्मि भवतां कुतुकेन ॥१६॥
देहि देवि तव पादयुगाब्जे प्रेमभक्तिमिति ते पुनरूचुः।
अब्रवीच्च मयि ते यदि भक्ति-र्जायते यदि वदिष्यति लोकः
॥१७॥
चाण्ड एष इति सुस्मितवक्त्रा तानुवाच तर्हि ते भुवि नेमुः।
ब्रह्मणस्तमनु सा हरिदास मर्कइन्दुसदृशं समग्रहीत् ॥१८॥
पञ्चहायन इवाभवत्तदा सोऽपि तत्र तदभूदतिचित्रम्।
तत्र कोऽपि समुवाच मुरारिं दीनमेनमवलोकय देवि ॥१९॥
तन्निशम्य नयनाब्जयुगेन प्रेमतोयमसृजत् करुणार्द्रा।
तत्क्षणात् समनुभूय च सा तत्पूजनं निजजनस्य सुवेशा ॥२०॥

मनोरम आसन में उपवेशन पूर्वक देवपतिकृती पुनर्वार कहे थे, कौतूहलाक्रान्त होकर मैं यहाँपर आपसब का सङ्कीर्त्तन नृत्य देखने के निमित्त आया हूँ ॥१६॥

उनसब ने कहा—हे देवि! आप के चरणकमलों में भक्ति प्रदान करें, सुनकर प्रभुने कहा— मेरे प्रति यदि आपसब की भक्ति हो तो लोक कहेंगे, यहसब चाण्ड शाक्त हैं, सुस्मित वदन मे प्रभु उस प्रकारकहनेपर ब्राह्मणवृन्द उनको प्रणाम कियेथे,अनन्तर आपअर्कइन्दु सदृश हरिदास को निज अङ्क में उठालिये थे ॥१७-१८॥

हरिदास उस समय पञ्च हायन के बालक के समान हुये थे वह अतीव आश्चर्य्यका विषय था। उस समय सबने कहा—हे देवि! दीन मुरारि के प्रति आप दृष्टि प्रदान करें ॥१९॥

सुनकर नयनाब्ज युगल से प्रेमाश्रु निर्गत होने लगा। करुणार्द्र चित्त से तत्क्षणात् प्रभु प्रेमविभोर भी हो गये थे. भक्तवृन्द उस समय निज प्रियजन जानकर पूजनादि क्रिया सम्पन्न किये थे ॥२०॥

स्तन्यमाशु विदधे सुरवर्ज्ज्यान् पाययन्नसुरवाहिनीपतिः ।
तां विलोक्य करुणार्द्रसुनेत्रा- मीश्वरं निजजना मुदमापुः
॥२१॥

तत्क्षणाद्भगवतः पुनरेव भाव ईशितुरभूदवलोक्य ।
नेमुरार्द्रनयना जगदीशं तुष्टुवुश्च मुदिता द्विजवर्य्याः ॥२०॥

एवं निनाय भगवान् सकलां निशां स
प्रातर्जगाम निजमन्दिरमिन्दुवक्त्रः ।
हस्तगृहीतवरदण्ड इवातिचण्ड-
रश्मेः शिखेव नृहरिर्ददृशे जनेन ॥२३॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे सर्वशक्ति प्रकाशोनाम षोड़शः सर्गः

देववर्ग को आप स्तन्यदान किये थे, असुरवाहिनी पति यह देखकर आश्चर्य्यान्वित हुये थे,निजजनगण करुणार्द्र सुनेत्राको देखकर अतीव आनन्दित हुये थे ॥२१॥

उस समय सद्य ही भगवान् को ईश्वर भावाक्रान्त देखे थे, परमात्म रूप में प्रभु को अवलोकन कर द्विजवर्य्यगण आर्द्र नयन से जगदीश को प्रणाम एवं स्तव किये थे ॥२२॥

इस प्रकारसे प्रभुने सकल निशा अतिवाहित किये थे,प्रातःकाल समागत होनेपर इन्दुवदन प्रभु निज मन्दिर में गमन किये थे,उससमय प्रभु को दण्डहस्त अति प्रचण्ड मार्त्तण्ड के समान दर्शन जनगण किये थे ॥१३॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे सर्वशक्ति प्रकाशोनाम षोड़शः सर्गः

सप्तदशः सर्गः

—※—

श्रीचन्द्रशेखराचार्य्यरत्नवाट्यां महाप्रभुः ।
ननर्त्त यत्र तत्रासीत्तेजस्तत्त्ववदद्भुतम् ॥१॥
सप्ताहं शीतलं चन्द्रतेजसा सदृशं हरिम् ।
चञ्चलेव सुसम्प्रेक्ष्यं चित्ताह्लादकरं शुचिः ॥२॥
ये ये तत्रागता लोका ऊचुस्तत्र कथं दृशोः ।
उन्मीलने न शक्ता स्म विदुयद्वत् प्रेक्ष्य भूतले॥३॥
तत् श्रुत्वा वैष्णवाः सर्वे हर्षादूचुर्न किञ्चन ।
जानन्तोऽपि महाभागा वहिर्मुखजनान् प्रति ॥४॥
अथ पप्रच्छ श्रीवासो भगवन्तं जगद्गुरुम् ।
कलावेव हरेर्नामकीर्त्तनं समुदाहृतम् ॥५॥

श्रीचन्द्रशेखरकेभवनकी रत्नवाटिकामें श्रीमहाप्रभु हरिसंकीर्त्तन नृत्य किये थे, उस समय अति अद्भुत तेज का प्रकाश हुआ था ॥१॥

एक सप्ताह कालयावत् प्रभु को सबलोकों ने चन्द्र तेज के समान अवलोकन किया। एवं विदुयत् के समान प्रभु को देखकर पवित्र चित्ताह्लाद को प्राप्त किया ॥२॥

वहाँपर जितने लोक आये थे, वे सब कहे थे, हमसब भूतल में विदुयत्के सदृश तेजको देखकर कैसे नेत्रोन्मीलन करने में सक्षम होंगे ? ३॥

समस्त वैष्णववृन्द उस कथन को सुनकर आनन्द से विभोर होकर कुछ भी नहीं कहे थे, कारण आपसव जानते थे कि–वहिर्मुख जनगण के प्रति प्रभु का भाव इस प्रकार ही है ॥४॥

अनन्तर भगवान् जगद्गुरु को श्रीवास निवेदन किये थे, प्रभो!

किं सत्यादियुगस्यास्ति फलं न्यूनं कथञ्चन ।
तत् श्रुत्वा भगवान् प्राह श्रूयतां कथयामि ते ॥६॥
सत्ये धर्म्मस्य पूर्णत्वाद्ध्यानेनैवोपसाध्यते ।
तत्फलं यज्ञमात्रेण त्रेतायां द्वापरे युगे ॥७॥
पूजनेन कलौ पापैर्न शक्तास्ते हरिः स्वयम् ।
नामस्वरूपो भगवानागत्य शुशुभे प्रभुः ॥८॥
कृतादिषु त्रयः शक्त्या ध्यानयज्ञार्च्चनादयः ।
दारुणे च कलौ पापे स्वयमेवानुपद्यते ॥९॥
तत् श्रुत्वा हर्षितो विप्रः श्रीवासः पण्डितोत्तमः ।
मेने सर्वपुरुषार्थसारं श्रीनाममङ्गलम् ॥१०॥

आपने कहा कि– कलि में ही श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन विहित है, किन्तु संशय यह है कि– सत्यादियुग का महत्त्व कया इस से न्यून है ? यह सुनकर प्रभुने कहा– सुनो, में उस विषय में कहता हूँ ॥६॥

सत्ययुग में पूर्ण धर्म विद्यमान होने के कारण ध्यान के द्वारा पूर्ण फललाभ होता है, उक्त फल लाभ परिपूर्ण रूप से त्रेतायुग में यज्ञ के द्वारा होता है, द्वापरयुग में किन्तु पूजन के द्वारा फललाभ होता है, कलियुग में श्रीहरि विद्वेष होने के कारण श्रीहरि के आदेश पालन जनगण नहीं करते हैं,अतः पापप्रवृत्ति के कारण उक्त ध्यान यज्ञ, पूजन कर्म में अधिकार उनसब का नही होता है, अतः स्वयंहरि भगवान् नाम रूप में कलियुग में आविर्भूत होकर शोभित होते हैं ॥७-८॥

द्वापर कलि युग में जनगण श्रीहरिके आदेश पराङ्‌मुख होकर सत्यादि युगत्रय विहित ध्यान,यज्ञ अर्च्चनादि कर्म में अधिकारी नहीं होतेहैं ॥९

सुनकर श्रीवास विप्र– अति आनन्दित हुये, एवं पण्डितोत्तम श्रीवास कहे थे,– मैं जानगया—श्रीहरिनाम ही मङ्गलमय एवं सर्व पुरुषार्थ सार है ॥१०॥

हरिसङ्कीर्त्तनं कृत्वा नगरे नगरे प्रभुः।
म्लेच्छादीनुद्दधारासौ जगतामीश्वरो हरिः ॥११॥
एकदा भगवानाह नेत्रवारिभराप्लुतः।
स्थातुं नाहं समर्थेऽस्मि गच्छामि मथुरां पुरीम् ॥१२॥
छित्वा यज्ञोपवीतं स्वं कृष्णविश्लेषकातरः।
श्रुत्वा तद्वचनं तस्य प्राह वैद्यो मुरारिकः ॥१३॥
भगवन् सकलं कर्त्तुं शक्तोऽसि सर्वतत्त्ववित्।
गन्तुं स्थातुं त्वमार्य्येण तथापि नार्हसि ध्रुवम्। १४॥
त्वया चेत् क्रियते नाथ स्वतन्त्रात् सकला जनाः।
स्वातन्त्रेचण करिष्यन्ति पतिष्यन्त्यशुचौ पुनः ॥१५॥
एतन्मत्वा स्वय तात स्वाश्रमाद्वाश्रमान्तरम्।
कर्त्तव्यन्तु त्वया ते के कथयन्तु महत्तमाः ॥१६॥

इस प्रकार जानकर हे तात ! आप स्वय आश्रमसे आश्रमान्तर ग्रहण करेंगे, इस विषय में महत्तम व्यक्ति गण कुछ कहने में असमर्थ हैं ॥११॥

नगर नगर में श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन के द्वारा जगदीश्वर प्रभु हरि म्लेच्छ प्रभृतिओं को उद्धार किये हैं ॥१२॥

एक दिन, नेत्रवारि भराप्लुत होकर भगवान् बोले थे,—मैं यहाँ रह नहीं सकता हूँ, अतः मथुरापुरी को जा रहा हूँ ॥१३॥

इस प्रकार कहकर कृष्णविश्लेष कातर होकर निज यज्ञोपवीत को च्छिन्न कर दिये थे, उनकी वाणी को सुनकर वैद्य मुरारि ने कहा भगवान् ! आप सर्वसगर्थ हैं, आप सर्ब तत्त्ववित् हैं,तथापि आप गमन करने में एवं रहने में असमर्थ हैं ॥१४-१५॥

हे नाथ ! आपयदि स्वतन्त्र आचरण करेंगे तो, समस्त जनगण परायण होकर अत्यन्त अशुचि नरक गमन तरेंगे ॥१६॥

कृष्णैव गमनं तेऽद्य कृतं स्यात् सर्वदेहिनाम् ।
चैतन्यरहितानाञ्च किं तावत् कथयामि ते॥१७॥
भक्तैः संवेष्टितो नित्यं नित्यानन्दसमन्वितः ।
गदाधरेण गन्धाद्यैः सेवितो भक्तगो हरिः ॥१८॥
तत् श्रुत्वा भगवांस्तूष्णीम्भूत्वासीत् प्रेमविह्वलः ।
कृष्णसङ्कीर्त्तनानन्दपूर्णमनोरथः स्वयम् ॥१९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे श्रीमुरारिगुप्तानुशासनं
नाम सप्तदशः सर्गः

देहधारियोंका प्राण श्रीकृष्ण ही हैं आपका गमन आज होनेपर सब अचेतन हो जायेंगे, आपको मैं कया निवेदन करूँ ॥१६॥

अनन्तर श्रीप्रभु नित्यानन्द समन्वित भक्तवृन्दकेद्वारा परिवेष्टित होकर नित्य अवस्थान करते थे, एवं श्रीगदाधर प्रभृति के द्वारा नित्य सेवित गन्धादि के द्वारा होते थे, कारण, श्रीहरि भक्तबत्सल हैं ॥१८॥

प्रभु– समस्त वृत्तान्त अवगत होकर प्रेमविह्वल अन्तःकरण से तुष्णीम्भाव अबलम्बन किये थे, एवं श्रीकृष्ण सङ्कीर्त्तनानन्द से पूर्ण मनोरश हुये थे ॥१९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे श्रीमुरारिगुप्तानुशासनं
नाम सप्तदशः सर्गः

अष्टादशः सर्गः

—※—

ततः कियद्दिने प्राह भगवान् कार्य्यमानुषः ।
स्वप्ने दृष्टो मया कश्चिदागत्य ब्राह्मणोत्तमः ॥१॥
सन्न्यासमन्त्रं मत्कर्णे कथयामास सुस्मितः ।
तत् श्रुत्वा व्यथितो रात्रौ दिवा विरोदिमि ॥२॥
कथं प्रियं हरिं नाथं त्यक्त्वान्यदुच्चितं मम ।
मुरारिः प्राह तत् श्रुत्वा तन्मन्त्रे भगवान् स्वयं ॥३॥
षष्ठीसमासं मनसा विचिन्त्य त्वं सुखीभव ॥४॥
तत्रोवाच प्रभुर्वाचं तथापि खिद्यते मनः
शब्दशक्त्या करिष्यामि किमित्युक्त्वा रुरोद सः ॥५॥

कार्य्यमानुष भगवान् कतिपयदिन के पश्चात् कहे थे मैंने स्वप्न में देखा, एक ब्राह्मणोत्तम आकर मुझको सन्न्यास मन्त्रकर्ण में हँस हँस कर कहे थे, सुनकर रात्रि में मैं अत्यन्त व्यथित हुआ, दिवस में भी मैं रोदन करने लगा ॥१-२॥

प्रिय श्रीहरि को परित्याग कर कैसे मैं अपर कुछ ग्रहण करूँ ? मन्त्र स्वयं भगवान् हैं ॥३॥

मुरारि ने कहा-उक्त मन्त्र में षष्ठी समास है, इस प्रकार जान कर आप सुखी बनें ॥४॥

उस में भी प्रभुने कहा— षष्ठी समास करने पर भी मनः सन्तुष्ट नहीं हो रहा है, शब्दशक्ति के साथ अपर कुछ करना सामर्थ्यातीत है, इस प्रकार कहकर प्रभु रोने लग गये ॥५॥

तत् श्रुत्वा व्यथिताः सर्वे कृष्णविश्लेषकातराः ।
यथा भाविनि माथुरे विक्लवा व्रजसुभ्रुवः ॥६॥
ततः कियद्दिने तत्र श्रीमत् केशवभारती ।
न्यासिश्रेष्ठो महातेजा दीप्यमान यथा रविः ॥७॥
पूर्वजन्मार्ज्जितैः पुण्यैः सर्वैस्तैरागतः स्वयम् ।
तत्र भाग्यवशात् कृष्णं तप्तचामीकरप्रभम् ॥८॥
ददर्श पुण्डरीकाक्षं प्रेमविह्वलितं हरिम् ।
दृष्ट्वा चानन्दपूर्णोऽसौ बभूव न्यासिसत्तमः ॥९॥
न्यासीश्वरं पुरो दृष्ट्वा भगवानीश्वरः स्वयम् ।
प्रेमानन्दपरिपूर्णः समुत्थाय ननाम तम् ॥१०॥
कृष्णप्रेमाम्बुधाराभिः परीतं तं विलोक्य स ।
प्राह तुष्टो महाबुद्धिः श्रीमत्केशवभारती ॥११॥

सुनकर सज्जनवृन्द विह्वल होकर रोदन करने लगे थे, वह रोदन-- कृष्णविश्लेष कातर व्रजाङ्गना के रोदन के तुल्य ही था ॥६॥

कुछ ही दिन के पश्चात् रविके समान अतितेजस्वी न्यासिश्रेष्ठ पूर्वार्जित पुण्यवल से श्रीकेशब भारती का आगमन वहाँपर हुआ न्यासीश्रेष्ठ ने तप्त काञ्चन तुल्य कान्ति प्रेमविह्वल चित्त पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण को देखा। देखकर न्यासिश्रेष्ठ अतिशय आनन्दित हुये थे ॥७-८-९॥

स्वयं भगवान् श्रीहरि न्यासिश्रेष्ठ को सम्मुख में देखकर प्रेमपूर्ण होकर उठकर स्वागत किये थे, एवं प्रणाम किये थे ॥१०॥

कृष्ण प्रेमाश्रु धारासे परिव्याप्त गौरहरिको देखकर महाबुद्धि श्रीकेशव भारती अति सन्तुष्ट होकर कहे थे ॥११॥

त्वं शुको वाथ प्रह्लाद इति मे निश्चिता मतिः ।
किंवा त्वं भगवान् साक्षादीश्वरः सर्वकारणः ॥१२॥
तत् श्रुत्वा व्यथितो नाथः प्रशंसां स्वां महामतिः ।
रुरोद द्विगुणं प्रेमवारिधारापरिप्लुतः ॥१३॥
ततः प्रोवाच तं दृष्ट्वा विस्मितो न्यासिसत्तमः ।
भगवन्तं भवान् कृष्ण ईश्वरो नात संशयः ॥१४॥
आत्मप्रशंसां महतीं श्रुत्वा वैक्लव्यमावहन् ।
नत्वा तं न्यासिनां श्रेष्ठं जगाम निजमन्दिरम् ॥१५॥
न्यासं कर्तुं मनश्चक्रे त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ।
भगवान् सर्वभूतानां पावनः श्रीनिकेतनः ॥१६॥
ततो मुकुन्दः प्रोवाच वैष्णवान् भो द्विजोत्तमाः ।
पश्य नाथ जगद्योनिं यावदत्रावतिष्ठते ॥१७॥
गमिष्यति कियत्काले त्यक्त्वा गेहं जगद्गुरुः ।
सर्वे ते व्यथिता श्रुत्वा वचनं तस्य धीमतः ॥१८॥

आप,प्रह्लाद अथवा शुक हैं,अथवा साक्षात् भगवान् श्रीहरि हैं ! इसमें कोई संशय नहीं है ॥१२-१३-१४॥

महती आत्म प्रशंसा को सुनकर अतिविह्वल हुये थे, न्यासिवर को प्रणाम कर प्रभु मन्दिर को चले गये थे ॥१५॥

समृद्धिमत् निजगृहको परित्याग कर सर्वभूत पावन श्रीनिकेतन भगवान् सन्न्यास ग्रहण करना निश्चय किये थे ॥१६॥

अनन्तर मुरारि ने वैष्णववृन्द को कहे थे-- हे द्विजोत्तमवृन्द ! आप सब जगदीश्वर का दर्शन करें, जबतक प्रभु यहाँपर विराजमान हैं ॥१७॥

जगद्गुरु चले जायेंगे , सुनकर सब व्यक्ति दुःखी हुये थे ॥१८॥

ततः प्रोवाच भगवान् श्रीवासं द्विजपुङ्गवम् ।
भवतामेव प्रेमार्थे गमिष्यामि दिगन्तरम् ।।१९।।
साधुभिर्नावमारुह्य यथा गत्वा दिगन्तरम् ।
अर्थमानीय बन्धुभ्यो दीयते तदहं पुनः ।।२०।।
दिगन्तरात् समानीय दास्यामि प्रेमसन्ततिम् ।
यया सर्वसुराराध्यं श्रीकृष्णं परिपश्यसि ।।२१।।
पुनः प्रोवाच तत् श्रुत्वा श्रीवासः श्रीहरिं प्रभुम् ।
त्वया विरहितो नाथ कथं स्थास्यामि जीवितः ।।२२।।
तत् श्रुत्वा भगवान् प्राह तव देवालये स्वयम् ।
नित्यं तिष्ठामि विप्रेन्द्र न चित्ते विस्मयं कुरु ।।२३।।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विस्मितोऽभूद्द्विजर्षभः ।
ईश्वरः सर्वसंव्यापी कस्यायं वर्त्तते वशे ।।२४।।

अनन्तर भगवान् द्विजश्रेष्ठ श्रीवास को कहे थे– आपसब के प्रेमार्थ में दिगन्तर को जा रहा हूँ ।।१९।।

साधुवृन्द के सहित नाव के द्वारा अपर दिक् में जा कर वहाँ अर्थाहरण कर बन्धुवर्ग को प्रदान करना है, एवं प्रेम प्रदान करेंगे, जिससे सर्वसुखाराध्य श्रीकृष्ण का दर्शन होगा ।।२०-२१।।

वाक्य सुनकर श्रीवास प्रभु श्रीहरि को कहे थे,– हे नाथ ! आप को छोड़कर हमसब जीवित कैसे रहेंगे ?२२।।

सुनकर प्रभुने कहा– आप के देवालय में मे नित्य रहूँगा, हे विप्रेन्द्र ! चित्त में विस्मय न करें ।।२३।।

श्रीप्रभु के वचन को सुनकर द्विजश्रेष्ठ ने विस्मित होकर कहा प्रभु स्वतन्त्र हैं, सर्वव्यापक हैं ।।२४।।

तत्र श्रीहरिदासेन सार्द्धं सायं गतो हरिः ।
मुरारिवेश्म कारुण्यात् सोऽभ्यगच्छ रेः पदम् ॥२५॥
नत्वासनमुपानीय दत्त्वा सन्तुष्टमानसः ।
हरिदासं प्रणम्याथ सन्निकर्षे स्थितः स्वयम् ॥२६॥
तमुवाच दयाम्भोधिर्मुरारिं शृणु मद्वचः ।
यदुदासि सदा नित्यं तदित्थं कुरु मद्वचः ॥२७॥
सावधानेन भवता श्रोतव्यं वचनं मम ।
उपदेशं ददाम्यद्य तव तत् सम्प्रधार्य्यताम् ॥२८॥
अद्वैताचार्य्यवर्य्योऽसौ महान् वै सद्गुणाश्रयः ।
ईश्वरांशोऽस्य सेवाञ्च कुरु यत्नेन सादरम् ॥२९॥
इत्येवं ज्ञापितो गुह्यो मया त्वत्सुखसिद्धये ।
इत्युक्त्वा स ययौ देवः स्वां पुरीं भक्तवत्सलः ॥३०॥

अनन्तर श्रीहरिदास के सहित प्रभु सायं काल में मुरारि के भवन में उपस्थित हुये थे, कारुण्य से प्रभु को आते देखकर मुरारि श्रीहरि के समीप में उपस्थित हुये थे ॥२५॥

मुरारि श्रीप्रभु चरणों में प्रणतिपूर्वक सन्तुष्टमनाः होकर उत्तम आसन प्रदान किये थे एवं श्रीहरिदास को प्रणाम कर समीप में उपवेशन किये थे ॥२६॥

दयासागर प्रभुने मुरारिको कहा--मेराकथन में मनोयोग करो, मैं उपदेश प्रदान करूँगा, उसका धारण यत्नपूर्वक करें आप सावधान से मेरा उपदेश श्रवण करें ॥२७-२८॥

अद्वैत आचार्य्य सद्गुणाश्रय सुमहान् हैं,ईश्वरांश हैं, यत्नपूर्वक उनकी सेवा करें ॥२९॥

अति गोपनीय यह तत्य है, सुखप्राप्त करने के निमित्त मैंने कहा

अथापरदिने गत्वा कण्टकग्राममुत्तमम् ।
सन्न्यासं कृतवान् कृष्णः श्रीमत्केशवभारतीम् ॥३१॥
कृतार्थयन् गुरुं कृत्वा तं ब्रह्मपारगोत्तमम् ॥३२॥

इति हरेश्चरितं संश्रृणोति यः
सपदि पापगणं परिहाय सः ।
विशति पादतले नृहरेर्लभे
दतुलभक्तिमसङ्गमनार्य्यतः ॥३३॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे सन्न्यासंसूत्रं नामाटष्दशः सर्गः

समाप्तश्चायं द्वितीयः प्रक्रमः

यह कहकर भक्तवत्सलप्रभु निजमन्दिर को चले गये थे ॥३०॥

अनन्तर अपरदिन श्रीकृष्ण प्रभु– श्रीमत् केशवभारती के आवासस्थल कण्टक नगर में उपस्शित हुये ये, एवं श्रीकेशवभारती को कृतार्थ करते हुये उनसे सन्न्यास ग्रहण किये थे ॥३१॥

ब्रह्मपारग को गुरु,परिपूर्ण श्रीप्रभु किये थे ॥३२॥

इस प्रकार श्रीहरिचरित्र का श्रवण जो जन करते हैं, वे पापसमूह को परियाग पूर्वक नृहरि के पदतल को प्राप्त कर अतुलभक्ति प्राप्त करते हैं, जो भक्ति अनार्य्य सङ्ग से अति दुष्प्राप्य है ॥३३॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते द्वितीयप्रक्रमे सन्न्यासंसूत्रं नामाष्टादशः सर्गः

समाप्तश्चायं द्वितीयः प्रक्रमः

तृतीयप्रक्रमे

प्रथमः सर्गः

श्रुत्वा हरेः कथनमद्भुतमप्रपञ्चं
दामोदरः पुनरुवाच वरं मुरारिं ।
तत् कथ्यतां कथमसौ भगवांश्चकार
न्यासं विदेशगमनं पुरुषोत्तमञ्च ॥१॥

दृष्टा जगाम मुनिसङ्गनिषेवितानि
तीर्थानि कानि च मनोज्ञकृपः पुराणः ।
श्रुत्वा वचो द्विजवरस्य जगाद वैद्यो
हृद्यां कथां शृणु हरेः कथयामि तुभ्यम् ॥२॥

तत्राशु शक्तिमतुलां भगवान् ददातु
वक्तुं यथा मम भवेत् कुशला सुवाणी ।
यस्याद्भुतश्रुतिसुधारसनैः सुवाणी
यन्नामसंस्मृतिरसाद्विवशा विमुक्तिः ॥३॥

श्रीदामोदर पण्डित श्रीहरि के अद्भुत चरित्र श्रवण करने के पश्चात् मुरारि कवि को कहे थे, आप उस विवरण को कहे, भगवान् उस प्रकार आचरण क्यों किये थे, भगवान् सन्न्यास ग्रहण एवं धनाहरण निमित्त विदेशगमन क्यों किये थे ॥१॥

मैंने विविध मुनिसङ्ग निषेवित तीर्थों का निषेवण भी किया है, द्विजवर दामोदर के कथन को सुनकर मुरारिवैद्य ने कहा आप को मैं मनोज्ञ हरि कथा श्रवण कराता हूँ,आप अवहित चित्त से श्रवण करें ॥२

भगवान् आशु मुझ को अतुला शक्ति प्रदान करें, जिससे कथा कीर्त्तन के निमित्त कुशलावाणी को मैं प्राप्त करूँ, जिन की अत्यद्भुत

तं नित्यविग्रहमजं वरहेमगौरं
चैतन्यदेवममलं पुरुषं भजामि ।
यत्पादपद्मनखरद्युतिरञ्जितेन
चित्तेन शुद्धमनसः सहसा विदुस्तत् ॥४॥
ब्रह्मस्वभावभगवद्भजनामृतं च
तं देववृन्दपरिवन्दितपादमीड़े ।
यत्पादपद्ममकरन्दमजस्रं पीत्वा
श्रीशङ्करोऽपि भगवाननुरागपूर्णः ॥५॥
एवं च वैद्यमुपदिश्य निजाश्रयं स
गत्वा स्वभक्तगणसेवनजानुशक्त्या ।
शान्तश्च सर्वरसिकेश्वरगौरचन्द्रो
मुग्धं निनाय रजनीं च तदुत्थितोऽगात् ॥६॥

सुधाविनिन्दित हृत् कर्ण रसायन लीला कथा है, जिनके नाम श्रवण स्मरण से संसार विनष्ट होता है ॥३॥

उन नित्यविग्रह अज वर हेमगौर अमलदेव श्रीचैतन्य प्रभु का भजन मैं करता हूँ, जिनके पादनखर द्युति रञ्जित चित्त एवं शुक्ल मन के द्वारा जनगण सहसा उनको अवगत होने हैं ॥४॥

देववृन्द परिवन्दित चरण कमल की वन्दना मैं करता हूँ। जिनके पादपद्म मकरन्द का पान अजस्ररूप में करके श्रीशङ्कर भगवान् भी भगवदनुराग पूर्ण हुये हैं ॥५॥

उक्त प्रकार से वैद्य मुरारि को उपदेश प्रदानानन्तर निज भवन को प्रभु चले गये थे, एवं निज भक्त वृन्द की परिचर्य्या से आनन्दित हुये थे, सर्व रसिकेन्द्र शिरोमणि गौरचन्द्र शान्ति एवं मुग्धता से रात्रि अतिवाहित करतः, उठकर गृह से निर्गत हो गये थे ॥६॥

उत्तीर्य्यं दिव्यतटिनीं भगवान् जगाम्
ज्ञात्वाथ खिन्नमनसो द्विजवर्य्यमुख्याः ।
वैक्लव्यमापुरतुलं रुरुदुश्च तप्ताः
शोकार्द्दिता विमनसोऽतिक्लेशा बभूवुः ॥७॥
त्वासप्तमेऽह्नि परिनष्टत्विषो ह्यवाप
श्रीचन्द्रशेखरगुणाकररत्नवर्य्यः
आचार्य्यरत्नवरतप्तसुवर्णगौरः
कान्त्याक्षिपन्निव सुधाकरपूर्णशोभाम् ॥८॥
पप्रच्छुरब्जनयनस्य कथासुधां ते
तं तानुवाच तत् कथयामि सर्व्वम् ।
कृष्णः सगद्गदगिरा द्विजवर्य्यमुख्यान्
श्रीचन्द्रशेखरगिरामरवर्य्यमुख्यां ॥९॥
गच्चद्विभोः पथि नरा वदनं निरीक्ष्य
नेत्रैः पपुः पुरुषभूषणगात्रशोभाम् ।

दिव्य नदी के तट को पार कर भगवान् चले गये थे। यह जान कर द्विजवर्य्यवृन्द खिन्नमन से विक्लवता को प्राप्त कर रोदन किये थे, एवं परिताप शोक, वैमनस्य प्रभृति के द्वारा अति क्लिष्ट हुये थे ॥७

सातदिन के मध्य मैं श्रीचन्द्रशेखर, गुणाकर रत्न आचार्य्य रत्न प्रभृति हीनप्रभ हो गये थे, जिस प्रकार सुधाकर की पूर्ण शोभा प्रचण्ड मार्त्तण्ड की तिग्म रश्मि से म्लान हो जाती है ॥८॥

कमल नयन की चरित कथासुधा का समस्त विवरण मैंने उन सब के समीप से अवगत हुआ है, उक्त वृत्तान्त समूह का वर्णन मैं आपके समीप में करूँगा, अमरवर्य्य मुख्य श्रीकृष्ण ने गद्गदायमान वाणी से द्विज वर्य्यवृन्द को एवं श्रीचन्द्रशेखर को जो कुछ कहा था ॥९॥

न्यासाय तस्य गमनं च पुनर्विदित्वा
हृष्ट प्रणेमुरमुमम्बुजपादयुग्मम् ॥१०॥
ननर्त्त तस्मिन् भगवान्मुकुन्दः
प्रेमार्द्रवक्षाः पुलकाचिताङ्गः ।
हृष्टा जगुः कृष्णपदाब्जगीत-
माचार्य्यरत्नप्रमुखा महत्तमाः ॥११॥
तस्मिन् क्षणे कण्टकनामपुर्य्यां
समागता ब्राह्मणसज्जनोत्तमाः ।
नार्य्यश्च बालाश्च सुहृष्टवृद्धा
गृहीतहस्तावधिरान्धकुब्जाः ॥१२
स्त्रियश्च काश्चित् धृतपूर्णकुम्भा
धृतार्च्चनाः कक्षतटेषु काश्चित् ।
काश्चित्द्वयस्याधृतबाहुयुग्माः
सम्पूर्णगर्भास्त्वरितं समीयुः ॥१३

विभु पथ में गमन कर रहे थे, नरगण उनको देखकर उनको वदन शोभा की पान अवितृप्त नयनों से किये थे, एवं पुरुष भूषण की गात्र शोभा का भी पान किये थे। सन्न्यास ग्रहण हेतु प्रभु गमन कर रहे हैं, जानकर जनगण उन के पादपद्म को आनन्द से प्रणाम किये थे।१०

श्रीहरिसङ्कीर्त्तन में भगवान् मुकुन्द पुलकाचित होकर नृत्य किये थे, उक्त श्रीहरिसङ्कीर्त्तन में आचार्य्य प्रभु महत्तमगण आनन्द चित्त से श्रीकृष्ण नाम सत्कीर्त्तन किये थे ॥११॥

उस समय कण्टक नामक पुरी में उत्तम ब्राह्मण सज्जनवृन्द का समागम हुआ, नारी, बालक, वृद्धगण एवं अपर के हस्तावलम्बन कर

पपुर्हि सन्तप्तहृदस्तु सर्वा
जतार्द्दनस्याम्बुजवक्त्रसीधुम् ।
बालार्कमिश्रं हि सुवर्णपद्म
मिवापरा वीक्ष्य सुविस्मितास्ताः ॥१४
उचुश्च कस्यायमपूर्वदर्शनः
समुद्यदिन्दुप्रतिमाननाभः ।
शुभाय लोकस्य भवाय जातो
मात्रास्य पुण्येन धृतः स्वगर्भे ॥१५॥
असौ कुमारो जितकामदेवः
कान्त्या गिरा निर्जितवाक्पतिः शुभः ।
भार्य्यास्य केनापि सुकर्मणाभूत्
केनापि काराविरहातुरास्फुटम् ॥१६॥

बधिर अन्ध कुब्ज का भी आगमन हुआ था। स्त्रीगण कक्षतल में पूर्ण कुम्भ स्थापन कर शोभित हुई थीं, कतिपय रमणी वयस्या के हस्त धारण कर अन्तर्वत्नी होकर अति सत्वर उपस्थित हुई थीं।१२-१३

जनार्दन के मुख पद्मामृत का पान सब व्यक्ति अवितृप्त होकर किये थे, एवं बालार्क के किरण प्राप्त कर सुवर्ण पद्म जिस प्रकार शोभित है, कतिपय व्यक्ति प्रभु को देखकर उस प्रकार सुविस्मित हुये थे।१४।

उन सब ने कहा–अपूर्वदर्शन व्यक्ति को किसने अपने उदर में धारण किया है, सद्योदित शशाङ्कतुल्य वदन, प्रभु समस्त जगत को सुखी करने को निमित्त ही आविर्भूत हुये हैं, जननीने इनको अति पुण्य से ही निज गर्भ में धारण किया है ॥१५॥

यह कुमार कान्ति से कामदेव को भी पराजित कर रहा है, वाणी द्वारा वृहस्पति को पराजित किया है, भात्री भी अति पुण्यवती है,

मातास्य पुत्रस्य मुखं न दृष्ट्वा
जीवत्यजीवा बहुदुःखतप्ता ।
यथा हि कृष्णो मथुरां दिदृक्षु
र्गतो व्रजस्थाश्च बभूवुरार्त्ताः ॥१७॥
काश्चिद्विदग्धाः स्फुटमेव चाहु
र्गोपाङ्गनाभावविभावितोऽसौ ।
श्रीनन्दपुत्रः स्वयमाविरासीत्
सन्न्यासवेशेन स्वकार्य्यसाधकः ॥१८॥
एवंविधान्या बहुधा सुवाचो
बभूवुरन्योन्यकथाप्रसङ्गैः ।
मुखं पिवन्त्यो न विदुः स्वदेहं
विश्वस्तरस्याम्बुजलोचनस्य ॥१६॥

जिसने इनको सुपुण्य फलसे वरण करने का अवसर प्राप्त किया है, एवं किसको विरहसागर में निमज्जित कर कुमार यहाँ आया है ॥१६॥

इनकी माता पुत्र-मुख को न देखकर बहु दुःखतप्त होकर जीवित हैं, कृष्ण मथुरा चले जानेपर जिस प्रकार व्रजस्थजनगण आर्त्त हुये थे ।१७।

कुछ विदग्ध व्यक्तिगण कहे थे कि–यह गोपाङ्गना भाव विभावित श्रीनन्दनन्दन है, सन्न्यासवेश धारण कर निज कार्य साधन के निमित्त आविर्भूत हुये हैं, इस रीति से अनेक व्यक्ति की अनेक प्रकार उक्ति हुई थीं । कथा प्रसङ्ग में परस्पर अम्बुजलोचन श्रीविश्वम्भर की कथा ही लोक कहते रहते थे, एवं श्रीमुखारविन्द की सुधा पान करके लोक निजदेह को भी भूल गये थे ॥१८–१६॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे कण्टकनगरनागरीवचनं
नाम प्रथमः सर्गः ।

द्वितीयः सर्गः

नृत्यावसाने भगवान् रुरोद
प्रेम्ना हरेः सोऽपि विभिन्नधैर्य्यः ।
दृष्ट्वा तदा तत्र समागता वै
रुदन्ति ते प्रेमजलाविलाक्षाः ॥१॥

ततःसमुत्थाय हरिः सगद्गद
स्वरेण तान् प्राह समागतान् जनान् ।
मां तात मातश्च विधेहि साम्प्रतं
शुभाशिषो येन हरिस्मृतिः स्यात् ॥२॥

श्रुत्वाभिलज्जाकुलिता विवस्त्रा
गतास्ततस्ते प्ररुदन्त एव
श्रीकृष्णप्रेमापरिपूर्णदेहा
बभूवुः सद्भक्तिरसेन पूर्णाः ॥३॥

तान् सान्त्वयित्वा निजदर्शनामृतैः
स गौरचन्द्रो भगवान् जगाम ।

भगवान् नृत्यावसान होने पर श्रीहरि प्रीति से विभिन्न धैर्य होकर अतिशय रोदन करने लगे थे, देखकर वहाँपर जो लोक आये थे समस्त लोक प्रेमाश्रु परिपूरित नेत्र से रोदन करने लगे थे ॥१॥

अनन्तर उत्थित होकर समागत जननिकर को गदगद वाणी से कहे थे—मुझको आप सब माता पिता जानें, जिससे आप शुभाशिष प्राप्त कर श्रीहरिस्मृति का अधिकारी बनेंगे ॥२॥

श्रवण कर लज्जाकुलित होकर सब जन रोदन करने लगे थे, एवं श्रीकृष्ण प्रेमपरिपूरित सद्भक्ति रसपूर्ण हो गये थे ॥३॥

निज दर्शनामृत प्रदान करके भगवान् गौरचन्द्र वैष्णववृन्द के

गुरोर्निवासं सह वैष्णवाग्रैः
श्रीकेशवाख्यस्य महानुभावः ॥४॥
नत्वा गुरोः पादयुग निवासं
तस्मिन् स चक्रे करुणाम्बुधिर्हरिः ।
श्रीरामनारायणनाममङ्गलं
गायन् गुणान् प्रेमविभिन्नधैर्यः ॥५॥
तथापराह्ने नृहरेरवाप्त्यै
न्यासोक्तकर्माणि चकार शुद्धः ।
आचार्यरत्नो भगवांश्चकार
कृष्णस्य पूजां विधिवद्विधिज्ञः ॥६॥
ततः समीपं स गुरोर्हितार्थी
गत्वावदत् कर्णसमीप ईशः ।
स्वप्ने मया मन्त्रवरो हि लब्धः
शृणुष्व तत् किं तव सम्मतं स्यात् ॥७॥

सहित श्रीकेशव नामक महानुभाव गुरु के निवास में उपस्थित हुये थे ॥४॥

करुणाम्बुनिधि श्रीहरि, श्रीगुरुचरणों में प्रणति पूर्वक वहाँपर निवास किये थे, एवं वहाँ श्रीरामनारायण मङ्गलमय नाम कीर्त्तन कर विभिन्न धैर्य हुये थे ॥५॥

अनन्तर अपराह्नकाल समागत होनेपर श्रीकेशव भारती नृहरि का सन्न्यास संस्कार किये थे, विधिज्ञ भगवान् आचार्य्यरत्न श्रीकृष्ण पूजन किये थे ॥६॥

श्रीगुरु के हिताकाङ्क्षी प्रभु—श्रीगुरु के कर्ण समीप में निज मुख स्थापन पूर्वक कहे थे—आप श्रवण करें, मैंने स्वप्न में यह मन्त्र पाया

वारत्रयं तत्श्रवणान्तिकं स्वरं
प्रोवाच न्यासोक्तमनुं विशुद्धम् ।
श्रुत्वावदत् सोऽपि हरेरिदं स्यात्
सन्न्यासमन्त्रं परमं पवित्रम् ॥८॥
व्याजेन दीक्षां गुरवे स दत्त्वा
लोकैकनाथो गुरुरव्यायात्मा ।
गुरो इदस्वाद्य मनीषितं मे
सन्न्यासमित्याह पुटाञ्जलिः प्रभुः ॥९॥
ततः शुभे संक्रमेण रवेः क्षणे
कुम्भं प्रयाति मकरान्मनीषी
सन्न्यासमन्त्रं प्रददौ महात्मा
श्रीकेशवाख्यो हरये विधानवित् ॥१०॥
ततः सरोमाञ्चितदेहयष्टि-
रानन्दनेत्राम्बुभिरार्द्रवक्षाः ।

है, यह ठीक है अवथा नहीं है ॥७॥

उक्त मन्त्र का पाठ प्रभु कर्णकुहर में तीन बार किये थे, श्रीगुरुदेव ने मन्त्र श्रवण के अनन्तर कहा यह विशुद्ध सन्न्यास मन्त्र है ॥८॥

छल पूर्वक सर्वलोकैकनाथ अव्ययात्मा जगद्गुरु ने मन्त्र प्रदान कर पुटाञ्जलि पुरःसर प्रभु ने प्रार्थना की—हे गुरो ! मुझको सन्न्यास प्रदान करें ॥९॥

तदनन्तर रवि संक्रमण के समय अर्थात् मकर राशि से कुम्भ राशि में सूर्य्य संक्रमण होने पर मनीषी महात्मा श्रीकेशव भारती यथाविधि श्रीहरि को सन्न्यास प्रदान किये थे ॥१०॥

अनन्तर रोमाञ्चितदेह अश्रुपूर्ण नेत्र एवं अश्रुवारि सिक्त वक्षः

संन्यस्त एवाहमिति स्वयं हरिः
सगद्गदं वाक्यमुवाच देवः ॥११॥
गच्छंस्तमालोक्य हरिं गुरुः स्वयं
दण्डं सचेलं त्वरया ददौ करे
भो भो गृहाणेति वदन् गुरोर्व्वचः
श्रुत्वा गृहीतुं गुरुभक्तिलम्पटः ॥१२॥
गुरोर्निदेशं बहुमन्यमान-
स्तत्रावसत्तद्दिवसं जितारिः ।
रात्रौ वसन् कीर्त्तनमाशुचक्रे
नृत्यश्च तस्मिन् गुरुणा समं प्रभुः ॥१३॥
ननर्त्त तस्मिन् जगतां गुरोर्गुरुः
कृष्णेन सार्द्धं महता सुखेन ।
आनन्दपूर्णस्तु पुनः स मेने
ब्राह्मं सुखं तुच्छतरं महात्मा ॥१४॥

स्थलयुक्त होकर प्रभु ने कहा–"मैंने समस्त न्यास किया है" ॥११॥

श्रीहरि को गमनोद्यत देखकर स्वयं गुरुदेव ने श्रीहरि को सत्वर वस्त्र के सहित दण्ड प्रदान किया, 'भो ! भो ! ग्रहण करो' श्रीगुरुदेव के वचन को सुनकर गुरुभक्ति निष्णात प्रभु ने दण्ड ग्रहण किया ॥१२॥

श्रीगुरुदेव के आदेश को बहुमान प्रदान पूर्वक उस दिन जितारि प्रभु रात्रिवास किये थे, रात्रि में श्रीहरि सङ्कीर्त्तन किये थे, जिसमें श्रीगुरुदेव के सहित प्रेमविभोर हाकर प्रभु नृत्य किये थे ॥१३॥

जगद्गुरु के गुरुदेव, श्रीकृष्ण के सहित अति आनन्द से वहाँ पर नृत्य किये थे, एवं आनन्द पूर्ण होकरब्राह्मयसुख को भी अति तुच्छ माने थे ॥१४॥

नृत्यावसाने हरिमब्रवीत् स
कोऽपीह मे दण्डमिमं कराग्रात् ।
आकृष्य मां प्राह भुजद्वयेन
स्पृष्ट्वा स्वयं त्वं नटनं कुरुष्व ॥१५॥
ततोऽहमानन्दपरिप्लुतो मुदा
प्रविश्य नृत्यं कृतवान् सुविह्वलः ।
श्रुत्वा वचस्तस्य सुविस्मितास्ते
स वैष्णवाः प्रेमविभिन्नधैर्य्याः ॥१६॥
श्रुत्वा गुरोर्वाक्यमनल्पमर्थवन्-
ननर्त्त तस्मिन् स्वजनैरनुव्रतः ।
हर्षेण युक्तो महता महात्मा
स्वयं हरिः स्वात्मरतो गुणाश्रयः ॥१७॥
स भारती प्रेमपरिप्लुतात्मा
कमण्डलुः दण्डमपीह दूरे ।

नृत्यवसान होने पर प्रभु के हस्त से किसी ने दण्ड ग्रहण कर भुजद्वय के द्वारा स्पर्श कर प्रभु को कहा–आप स्वयं नृत्य करें ॥१५॥

अनन्तर आनन्द परिप्लुत होकर सङ्कीर्त्तन भवन में प्रवेश कर विह्वल चित्त से प्रभु नृत्य किये थे, देखकर वैष्णववृन्द प्रेम विभोर हो गये थे ॥१६॥

स्वयं हरि—आतमरत अगुणात्मा होकर भी श्रीगुरु वाक्य को अति महत्त्वपूर्ण मान कर निज जनगण के सहित श्रीहरि-सङ्कीर्त्तन नृत्य किये थे ॥१७॥

भारती भी प्रेमपरिपूरितात्मा होकर कमण्डलु दूर में निःक्षेप

क्षिप्त्वा ननर्त्त प्रभुणा समं वै
सन्न्यासधर्मस्य पवित्रहेतुना ॥१८॥
इति स्वयं यद्भगवत्कृतं शुभं
सन्न्यासमानन्दकरं द्विजन्मनाम् ।
शृणोति यस्तस्य भवेद्विमुक्ति-
र्लभेच्च तत्तन्मनसा यदिच्छति ॥१९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे
सन्न्यासाश्रमपावनं नाम
द्वितीयः सर्गः

कर श्रीप्रभु के सहित सन्नयास धर्म को पवित्र करने के निमित्त नृत्य किये थे ॥१८॥

इस प्रकार स्वयं भगवान् के द्वारा अनुष्ठित आनन्द कर सन्न्यास प्रकरण का श्रवण जो करता है—उसकी मुक्ति होगी, एवं अभीप्सित फल लाभ भी होगा ॥१९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे
सन्न्यासाश्रमपावनं नाम
द्वितीयः सर्गः

तृतीयः सर्गः

अथ नत्वा गुरोः पादं तमनुज्ञाप्य माधवः
तदाज्ञया व्रजद्देशं राढ़ं गुढ़ो महाभुजः ॥१॥
नित्याबधूतेन सह कृष्णगाथां मुहुर्म्मुहुः ।
पथि गच्छन् लपन् नृत्यन् गायन् स्वभक्तिभावितः ॥२॥
ध्यायन् कृष्णपदाम्भोजमात्मनात्मात्मविग्रहम् ।
व्रजन् प्रेमाश्रुधाराभिर्निर्झरैर्गिरिश्रृङ्गवत् ॥३॥
विप्लुताक्षः क्वचित् कम्पतुलकाञ्चितविग्रहः ।
विह्वलः स्खलितः क्वापि क्वचिद्द्रुतगतिर्व्रजन् ॥४॥
मत्तकरीन्द्रवत् क्वापि तेजसा ववृधे क्वचित् ।
क्वचिद्गायति गोविन्द कृष्ण कृष्णेति सादरम् ॥५॥
तत्र देशे हरेर्नामाऽश्रुत्वा चातीवविह्वलः ।

अनन्तर श्रीगुरु पादपद्म में प्रणाम कर एवं उनको निवेदन कर माधव उनकी आज्ञा से राढ़ देश की यात्रा किये थे ॥१॥

पथ में प्रभु श्रीअवधूत नित्यानन्द के सहित पुनः-पुनः कृष्णगाथा गान करते-करते भक्ति विभोर हुये थे ॥२॥

आत्मात्म विग्रह श्रीकृष्णचरणाम्भोज का ध्यान करते–करते श्रीप्रभु प्रेमाश्रुधारानिर्झर के द्वारा गिरिश्रृङ्गवत् शोभित हुये थे ॥३॥

निर्निमेष नयनों से कभी गमन करते थे, कभी पुलकाञ्चित विग्रह होकर रहते थे, कभी विह्वल होकर स्खलित होते थे एवं कभी अति द्रुतगति से गमन करते थे ॥४॥

स्थान विशेष में मत्त करीन्द्र के समान गमन करते थे, कभी अति तेजस्वी दिखाई देते थे, कभी "कृष्ण-कृष्ण" गान करते थे, एवं आदर पूर्वक "गोविन्द-गोविन्द" गान करते थे ॥५॥

उस देश में श्रीहरिनाम श्रवण न कर अतीव विह्वल हुये थे ।

प्रविश्याहं जले क्षिप्रं त्यजामि देहमात्मनः ॥६॥
न शृणोमि हरेर्नाम कथं ब्राह्मणसंस्थितिः ।
इति निश्चित्य तोयस्य समीपं स व्रजन् प्रभुः ॥७॥
ददर्श बालकान् तत्र गवां सङ्गविहारिणः ।
नित्यानन्दबधूतेन शिक्षितान् हरिकीर्त्तनम् ॥८॥
तत्रैको बालकोऽत्युच्चं र्हरिं वद हरिं वद ।
इति प्रोवाच हर्षेण पुनः पुनरुदारधीः ॥९॥
तत् श्रुत्वा हर्षितो देवः संरक्षन् देहमात्मनः ।
तत्रैव प्ररुरोदार्त्तो विह्वलश्चापतद्भुवि ॥१०॥
सान्त्वितश्चावधूतेन वृन्दारण्यस्य वार्त्तया ।
किमद्‌भुतं ततो गत्वा शिक्षां चक्रे महामतिः ॥११॥
नवद्वीपं प्रगच्छ त्वं मां प्राह श्रीनिकेतनः ।

एवं निश्चय किये थे कि—जल में प्रवेश कर प्राण त्याग करूँगा ॥६॥

श्रीहरिनाम श्रवण नहीं कर रहाहूँ, अतः इस ब्राह्मण देह की आवश्यकता ही क्या है ? इस प्रकार निश्चय कर जलाशय के निकट में उपस्थित हुये थे ॥७॥

वहाँ प्रभु ने बालकों को देखा बालक गण गोचारण कर रहे थे, नित्यानन्द अवधूत से शिक्षा प्राप्त कर उनमें से एक बालक उच्चस्वर से "हरिबोल-हरिबोल" कहा था। उदारसिन्धु प्रभु—उस हरिनाम को सुनकर आनन्दित हुये, एवं निज देह रक्षा करना परमावश्यक है, यह निश्चय किये थे एवं वहाँ पर अति विह्वल होकर भूतल में निपतित हुये थे ॥८-९-१०॥

वृन्दावन वार्त्ता को कहकर अवधूत ने प्रभु को सान्त्वना प्रदान की, आश्चर्य यह है कि—महामति प्रभु वहाँ जाकर शिक्षा प्रदान किये थे ॥११॥

ततोऽहं शोकदुःखार्त्तो नवद्वीपं व्रजन्नपि ॥१२॥
नमो नारायणायेति मद्वाक्यं भक्तसन्निधौ ।
वक्तव्यं भवता येन ममानन्दो भविष्यति ॥१३॥
श्रुत्वा सर्वं हरेर्वाक्यं गौराङ्गे न्यस्तजीवनः ।
स्थितोऽहं परमार्त्तोऽपि गौरचन्द्रविचेष्टितम् ॥१४॥
ज्ञातं वाह्योपसंक्रान्तं निभृतं परमाद्भुतम् ।
सगद्गदं स च प्राह श्रीकृष्णनाममङ्गलम् ॥१५॥
हसति स्खलति क्वापि कम्पति गायति क्वचित् ।
रोदिति व्रजति क्वापि पतति स्वपिति क्षितौ ॥१६॥
गोपीभावैर्दासभावैरीशभावैः क्वचित् क्वचित् ।
आत्मतन्त्रः स्वात्मरतः शिक्षयन् स्वजनानयम् ॥१७॥
तृतीयदिवसं यावन्न सस्मार स्वविग्रहम् ।

श्रीनिकेतन ने मुझको कहा–"आप नवद्वीप को जाओ" तदनन्तर मैं शोक दुःखार्त्त होकर गमनोद्यत होने पर प्रभु ने कहा–भक्त सन्निधि में "नमो नारायण कहें" उससे महानन्द होगा ॥१२-१३॥

श्रीहरि के वाक्य को सुनकर श्रीगौराङ्ग गत प्राण में परमार्त्त होकर रहा, एवं गौरचन्द्र विचेष्टित को वाह्य अभ्यन्तर रूप से अवगत हुआ, उस समय प्रभु ने गदगदायमान स्वर से श्रीकृष्णनाम मङ्गल का गान किया। प्रभु—कभी हँसते थे, कभी स्खलित होते थे, उनके देह कम्पित होता था, कारण—गाते थे, रोदन करते थे, कभी चलते थे–गिर जाते थे एवं क्षिति में सो जाते ते ॥१४-१५-१६॥

गोपी भाव, दास भाव एवं ईश्वर भाव से कभी-कभी आत्मतन्त्र स्वात्मरत प्रभु—स्वजनगण को शिक्षा प्रदान किये थे ॥१७॥

इस रीति से तृतीय प्रहर अतिक्रान्त होने से भी जिस समय

महाभीतो व्याकुलोऽहं किं करोमीति चिन्तितः ।१८॥
ततः परदिने देहं सस्मार मधुसुदनः ।
ततोऽहमागतो गेहमाज्ञयाः न्यासिनां गुरोः ॥१९॥
आचार्यगेहे श्रीकृष्णः परश्वो वा गमिष्यति ।
तत्रैव भवतां भावि दर्शनं तस्य निश्चितम् ॥२०॥
इति श्रुतं श्रीहरिकीर्त्तननादिकं
मया च दृष्ट्वा भगवत्कृतं शुभम् ।
समग्रमेतत् कथितं सुमङ्गलं
हरे र्गुणं सर्वसुखप्रदं नृणाम् ॥२१॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे
राढ़देशभ्रमणं नाम तृतीयः सर्गः ॥

श्रीप्रभु ने निज विग्रह का स्मरण भी नहीं किया तो-मैं अत्यन्त भय से व्याकुल हो गया, एवं सोचने लगा, अधुना क्या करना है? ॥१८॥

अनन्तर अपर दिन निज देह का स्मरण किये थे, अनन्तर न्यासी शिरोमणि की आज्ञा से मैं गृह में आ गया था ॥१९॥

श्रीकृष्ण—परसों आचार्य्य गृह को जायेंगे, वहाँ आप सब के सहित सुनिश्चित मिलन होगा ॥१०॥

इस प्रकार मैंने श्रीभगवत् आचरित श्रीहरि-कीर्त्तनादि का श्रवण किया, एवं सुमङ्गल आचरण भी देखा, समस्त सुमङ्गल आचरण का वर्णन भी मैंने किया, कारण—श्रीहरिगुण ही मनुष्यों को सुखप्रद है ॥२१॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे
राढ़देशभ्रमणं नाम तृतीयः सर्गः ॥

चतुर्थः सर्गः

—*—

आचार्यरत्नो हि निशम्य तद्वचो
हरेर्गुणास्वादविभिन्नधैर्य्यः ।
आर्त्तस्वरैर्वा रुरुदुः सुदुःखिता
अद्वैतमुख्या द्विजसज्जनास्ततः ॥१॥

अथ श्रीजगदीशो हि भक्तानामार्त्तिनाशकः ।
अद्वैताचार्यनिलये गच्छामीति मनो दधे ॥२॥
परिव्रज्य राढ़देशं लोकैकनयनोत्सवः ।
अवधूतं महात्मानं प्रोवाच मधुरं वचः ॥३॥
गच्छ त्वं जाह्नवीतीरे नवद्वीपं मनोरमम् ।
मातरं परया भक्त्या मम नामपुरःसरम् ॥४॥
संशान्तय्य सुखीकृत्वा श्रीकृष्णचरितादिना ।
तत्रत्यान् वैष्णवान् सर्वान् श्रीवासादीन् मम प्रियान् ॥५॥

उक्त विवरण को आचार्यरत्न श्रवण कर श्रीहरिगुणास्वादन से विभिन्न धैर्य होकर अत्यन्त दुःखित होकर आर्त्तस्वर से रोदन किये थे ॥१॥

अनन्तर जगदीश्वर श्रीगौरहरि—भक्तार्त्ति विनाश करने के निमित्त अद्वैताचार्य निलय को जायेंगे, इस प्रकार सङ्कल्प किये थे ।२।

जनगण नयनोत्सव श्रीगौरहरि राढ़देश भ्रमण करने के पश्चात् महात्मा अवधूत को मधुर वाणी से कहे थे ॥३॥

आप जाह्नवी तीरस्थ मनोरम नवद्वीप में गमन कर परम भक्ति से मेरा नाम ग्रहण पूर्वक जननी के चरणों में प्रणाम करेंगे ।४॥

एवं श्रीकृष्णचरित प्रभृति वर्णन के द्वारा मा को सान्त्वना प्रदान कर तत्रत्य वैष्णव वृन्द को एवं मदीय श्रीवास प्रभृति को

समानयाचार्यगेहं यावत्तत्र व्रजाम्यहम् ।
श्रुत्वाज्ञां जगदीशस्य जगाम त्वरया मुदा ॥६॥
नवद्वीपं श्रिया युक्तं श्रीवासस्याश्रमं शुभम् ।
विज्ञाप्य केशवाज्ञां स श्रीवासादिभिरन्वितः ॥७॥
श्रीशचीचरणद्वन्द्वं नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ।
सान्त्वयित्वा च तां भक्त्या नित्यानन्दो दयानिधिः ॥८॥
तया पाचितमन्नश्च भुक्त्वा स्थित्वा परे दिने ।
सर्वैस्तैर्ब्राह्मणैः शूद्रैर्वैद्यैरपि महामनाः ॥९॥
जगामाद्वैतनिलयं सहर्षस्त्वरयान्वितः ।
शची च परया प्रीत्या पुत्रं श्रीपुरुषोत्तमम् ॥१०॥
मत्वा जगाम तत्रैव गेहेऽद्वैतस्य सत्वरा ।
सर्वे ते तद्दिनं श्रुत्वा भुक्तान्नं पावनं महत् ॥११॥
श्रीयुताद्वैतवर्यस्य शिवांशस्य महात्मनः ।
ततः परदिने पुष्पग्रामादागच्छति प्रभौ ॥१२॥
सर्वे ते मुदिता जग्मुस्तन्मङ्गलमहोत्सवाः ।
अश्रुकम्पपुलकाद्यैः पूर्णा परमविह्वलाः ॥१३॥

आचार्य गृह में ले आइये, तब तक मैं वहाँ जा रहा हूँ ।

जगदीश्वर गौरहरि की आज्ञा को सुनकर सत्वर आनन्द से अवधूत चन्द्र—अति शोभित श्रीनवद्वीपस्थ श्रीवास के आश्रम में उपस्थित हुये थे। एवं श्रीकेशव की आज्ञा को श्रीवास प्रभृति के समीप में निवेदन किये थे। अनन्तर श्रीवास प्रभृति भक्त वृन्द के सहित जननी श्रीशची देवी के चरणों में कृताञ्जली पूर्वक नमस्कार कर दयानिधि नित्यानन्द उनको सान्त्वना प्रदान किये थे ॥५-८॥

जननी के द्वारा पाचित अन्न सेवन कर अपर दिन समस्त

तप्तकाञ्चनवपुर्धृतदण्डो
रक्तवस्त्रपरिवेष्टितदेहः ।
मेरुश्रृङ्ग इव गैरिकयुक्त-
स्तेजसा हरिरिव प्रचकासे ॥१४॥
तं विलोक्य नृहरिं हरिसासाः
प्राणमात्मन इवाशु प्रणेमुः ।
दण्डवद्भुवि निपत्य महान्तः
कान्तवक्त्रकमलं मुमुदुश्च ॥१५॥
नेत्रवारिझरपूरितदेहो
हर्षगदगदरवाः पुलकाङ्काः ।

ब्राह्मण, शूद्र एवं वैद्य वर्ग के सहित महामनाः नित्यानन्द सहर्ष अद्वैत निलयाभिमुख में प्रस्थान किये थे। मा शचीदेवी परम प्रीति से पुत्र को श्रीपुरुष त्तम मान कर सत्वर अद्वैत गृह गमन किये। उक्त सज्जन वृन्द उस दिन शिवांश स्वरूप महात्मा श्री अद्वैत आचार्य गृह में पावन सर्वोत्कृष्ट प्रसादान्न ग्रहण किये थे। अनन्तर परदिन कुसुम पुर में प्रभु श्रीगौरहरि का आगमन होने पर सकल जन मङ्गल महोत्सव में आनन्दित होकर अश्रु कम्प पुलक प्रभृति से पूर्ण होकर परम विह्वल चित्त से वहाँ पर उपस्थित हुये थे ॥९-१३॥

वहाँ तप्तकाञ्चन समकान्ति, धृतदण्ड, रक्तवस्त्र परिवेष्टित देह, गैरिकयुक्त मेरुश्रृङ्ग के समान रवितुल्य द्युति से श्रगौरहरि सुशोभित थे ॥१४॥

श्रीहरिदासादि जनगण नृहरि श्रीगौराङ्ग को देखकर निज जीवन सर्वस्य मान कर आशु प्रणाम किये ये। एवं महान्तवृन्द पुनः पुनः दण्डवत् भूतल में निपतित होकर प्रणाम कर एवं कमनीय वदन कमल को अबलोकन कर आनन्दित हुये थे ॥१५॥

तान् विलोक्य भगवान् कृपाम्बुधि-
र्दृष्टिवृष्टिभिरलङ्कृतदेहान् ॥१६॥
स्पर्शनेन मुदितान् हर्षितेन
भाषितेन दृढ़हस्तग्रहेण ।
पूर्णकामविभवान् स्मितकान्त-
दिव्यपद्मवदनः स हि चक्रे ॥१७॥
तेऽपि हृष्टमनसः पुलकेन
पूरिताङ्गविभवाः सुखमीयुः ।
तैः सुरेश इव देवसमूहै-
रागतः स भगवान् सहसैव ॥१८॥
अद्वितीयगुरुवर्य्यानिकेतं
रोचयन् स नितरां पादपद्मैः ।

उन सबके अङ्ग नेत्रवारि प्रस्रवण से परिपूर्ण थे, हर्ष गद्गद वाणी थी, अङ्ग समूह पुलकाचित थे, कृपाम्बुधि की दृष्टि-वृष्टि के द्वारा अलङ्कृत सज्जनवृन्द को भगवान् श्रीगौरहरि ने देखा ॥१६॥

एवं किसी को स्पर्श कर—आनन्द से, स्मित हास्य से, मधुर भाषण द्वारा, दृढ़ हस्त ग्रहण से स्मित कान्त दिव्य पद्मवदन श्रीप्रभु उनसब को पूर्णमनोरथ किये थे ॥१७॥

सज्जन वृन्द भी हर्षित एवं पुलक निचित तनु होकर परम आनन्दित हुये थे, इन्द्र जिस प्रकार देव समूह वेष्टित होकर उपस्थित होते हैं, भगवान् गौरहरि भी उस प्रकार सज्जन वृन्द परिशोभित होकर सहसा अद्वैताचार्य के भवन में उपस्थित हुये थे ॥१८॥

अद्वैत गुरुवर्य्य के निकेतन को निज पादपद्म दीधिति के द्वारा समुद्भाषित कर तिग्म दीधिति के समान श्रीगौरसुन्दर शोभित

आसने समुपविश्य सुक्लिप्ते
राजमान इव तिग्मदीधितिः ॥१६॥
संजगौ हरिकथां सगद्गदं
नेत्रवारिभिरलङ्कृतदेहः ।
वदरिकाश्रम इव ऋषिमध्ये
राजति स्म स नारायणदेवः ॥२०॥
श्रीशचीं प्रणिपत्याह सादरं करुणामयः ।
तिष्ठामि सततं मातस्तव सन्निहितो ह्यहम् ॥२१॥
अद्वैताचार्यवर्य्येण दत्तमन्नं चतुर्विधम् ।
बुभुजे यज्ञभुङ्नाथो भक्तैर्भक्तजनेष्टदः ॥२२॥
तत्र सुप्तो रजन्यां स शेषे यामे समुत्थितः ।
गायन् कलपदं कृष्णं ननर्त्त स्वजनैः सह ॥२३॥

हुये थे ॥१९॥

वदरिकाश्रम में श्रीनारायण ऋषि जिस प्रकार ऋषिगण के मध्य में शोभित होते हैं, उस प्रकार श्रीगौरहरि निज भक्तवृन्द के मध्य में सात्त्विक भाव के द्वारा अलङ्कृत होकर गद्गद स्वर से श्रीहरिकथा कीर्त्तन किये थे ॥२०॥

जननी शचीदेवी को प्रणाम कर करुणामय श्रीहरि आदर पूर्वक कहे थे—हे मातः! मैं आपके सन्निकट में सतत अवस्थान करूँगा ॥२१॥

भक्तजनेष्टद यज्ञभुक्नाथ श्रीगौरहरि-भक्तवृन्द के सहित अद्वैत आचार्यवर्य द्वारा प्रदत्त चतुर्विध अन्न ग्रहण किये थे ॥२२॥

वहाँ पर रजनी में निद्रित होने के पश्चात् शेषयाम में उत्थित होकर मधुर स्वर से श्रीकृष्णनाम कीर्त्तन पुरःसर निज जन के सहित नृत्य किये थे ॥२३॥

अथ प्रभाते विमले श्रीवासादीन् द्विजोत्तमान् ।
वाचा मधुरयोवाच गच्छत स्वाश्रमान् प्रति ॥२४॥
यास्यामि देवदेवेश पुरुषोत्तमदर्शने ।
सार्वभौमद्विजेन्द्रेण सार्द्धं पश्यामि तं हरिम् ॥२५॥
युष्माभिरत्र कर्त्तव्यं सदैव हरिकीर्त्तनम् ।
विमत्सरैर्विशेषेण जागरे हरिवासरे ॥२६॥
एवं विसृज्य तान् सर्वानद्वैताचार्यमग्रतः ।
समालिङ्ग्य च बाहुभ्यां ययौ प्रेमाश्रुलोचनः ॥२७॥
ततस्तृणं स्वदशनैर्धृत्वा श्रीहरिदासकः ।
पपात दण्डवद्भूमौ पादमूले जगत्पतेः ॥२८॥
तद्दृष्ट्वा व्यथितो नाथस्तमुवाचाश्रुलोचनः ।
एवंरूपेणाहमेव जगन्नाथपदाम्बुजे ॥२९॥

अनन्तर विमल सुप्रभात होने पर द्विजश्रेष्ठ श्रीवास प्रभृति को मधुर वाणी से कहे थे—आप सब निज भवन में प्रस्थान करें ॥२४॥

मैं सार्वभौम विप्रेन्द्र के सहित देवदेवेश पुरुषोत्तम दर्शनार्थ जाकर श्रीहरि का दर्शन करूँगा ॥२५॥

आप सब यहाँ निरन्तर कीर्त्तन करेंगे, विशेषतः निर्मत्सर होकर श्रीहरि बासर में जागरण कर कीर्त्तन करेंगे ॥२६॥

उन सब को विदा कर सर्वाग्र में श्रीअद्वैत आचार्य को बाहुद्वय के द्वारा आलिङ्गन कर प्रेमाश्रुलोचन श्रीहरि प्रस्थान किये थे ॥२७॥

अनन्तर निज दशनों के द्वारातृण धारण कर श्रीहरिदास भूमि में जगत्पति श्रीगौरहरि के पदतल में निपतित हुये थे ॥२८॥

उनको देखकर अश्रुलोचन श्रीहरि व्यथित होकर कहे थे–इस प्रकार मैं श्रीजगन्नाथदेव के श्रीचरणों में प्रार्थना करूँगा ॥२९॥

निपत्य संवदिष्यामि यथा त्वयि कृपा हरेः ।
भवेन्निश्चितमित्युक्त्वा समालिङ्गच च तत् पुनः ॥३०॥
विससर्ज्ज च तं प्रीत्या तमुवाच द्विजर्षभः ।
श्रीयुताद्वैतवर्य्यस्तु भगवन्तं जगद्गुरुम् ॥३१॥
भगवद्गमनं श्रुत्वा तव मे न कथं भवेत् ।
प्रेमा नाथ तवेयं किं कृपा तं प्राह केशवः ॥३२॥
एवं स्याच्चेत्तव प्रेमा कथं मे गमनं भवेत् ।
इत्युक्त्वा तं समालिङ्ग दृढ़स्निग्धैरनुव्रतैः ।३३॥
गदाधरादिभिर्विप्रैर्गच्छन्तं तं द्विजोत्तमः ।
गोपीनाथाचार्यमुख्यः प्रोवाच प्रीणयन् हरिम् ॥३४॥
भगवंस्त्वद्वपुरहं द्रष्टुमिच्छामि कामम् ।
तत् श्रुत्वा वचनं तस्य वसनं समपाकरोत् ॥३५॥
अनावृतं कायदण्डं तप्तचामीकरप्रभम् ।
घनापाये यथा मेरुशृङ्गं चन्द्रकराश्वितम् ॥३६॥

दण्डवत् प्रणाम कर मैं—श्रीजगन्नाशदेव को निवेदन करूँगा, आप के प्रति जैसे उनकी कृपा हो, मेरी धारणा है—उनकी कृपा निश्चित होगी, यह कहकर पुनर्वार उनको आलिङ्गन किये थे। एवं प्रीति पूर्वक जाने के निमित्त कहे थे। उस समय जगद्गुरु भगवान् को अद्वैताचार्य कहे थे—आपका गमन संवाद शुन कर मेरा आनन्द नहीं हुआ, केशव कहे थे—यदि आप में प्रेमोदय इस समय होता तो मेरा गमन असम्भव होता, यह कहकर प्रभु ने उनको दृढ़ आलिङ्गन पूर्वक निज जनगण के सहित प्रस्थान हेतु मनोनिवेश किये थे ॥२९-३३॥

गदाधर प्रभृति विप्रगण के सहित गमनरत श्रीप्रभु को गोपीनाथ आचार्य प्रमुख विप्रगण कहे थे—हे प्रभु ! मैं आपका श्रीअङ्ग दर्शन

इति श्रुत्वा हरेः कीर्त्ति प्रयाणं पुरुषोत्तमे ।
लभते परमप्रेमानन्दं गौरपदाम्बुजे ॥३७॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा नमस्कृत्य जगाम स द्विजोत्तमः ।
भगवानपि संहृष्टो जगाम पुरुषोत्तमम् ॥३८॥
पुरुषोत्तमदेवस्य सम्यग्दर्शनजं फलम् ।
लभेत मनुजो नित्यं पठनात्तत्फलं लभेत् ॥६६॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे श्रीअद्वैतवाटी
विहारो नाम चतुर्थः सर्गः ।

करना चाहता हूँ, सुन कर प्रभु उत्तरीय को अपसारित निजाङ्ग से किये थे ॥३४-३५॥

अनावृत श्रीअङ्ग को उत्तप्त सुवर्ण के समान उन्होंने देखा एवं घनापसारण से मेरुश्रृङ्ग जिस प्रकार चन्द्र-कराञ्चित होता है, उस प्रकार श्रीअङ्ग प्रतिभात हुआ ॥३६॥

श्रीहरि का पुरुषोत्तम क्षेत्र प्रयाण वृत्तान्त जो जन श्रवण करेगा वह गौरपदाम्बुज में परम प्रेमानन्द प्राप्त करेगा ॥२७॥

दर्शन, श्रवण नमन करके द्विजोत्तम प्रत्यावर्त्तन किया। भगवान् भी आनन्द चित्त से पुरुषोत्तम के ओर प्रस्थान किये थे ॥३८॥

पुरुषोत्तमदेव का सम्यक् दर्शनजफल मानव इसके पाठ से प्राप्त करेगा ॥३६॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे श्रीअद्वैतवाटी
विहारो नाम चतुर्थः सर्गः ।

पंचमः सर्गः

ततः प्रतस्थे भगवान् मुकुन्द-
गंदाधराद्यैर्द्विजसज्जनैः प्रभुः ।
पुरोऽवधूतं प्रणिधाय देवो
रराज काव्येन यथोड़ुपेशः ॥१॥
गच्छन् क्वचिद्गायति कृष्णगीतं
क्वचिद्वदेदर्थमलब्धसंज्ञम् ।
क्वचिद्द्रुतं याति शनैः क्वचित् स्खलद्-
गतिः क्वचित् प्रेमविभिन्नधैर्यः ॥२॥
सायं क्वचिद्भैक्ष्यमुपस्थितं भवे-
त्तदन्नमश्नाति हरिर्यथाविधि ।
रात्रौ च गायत्यथ रौति धैर्यं
विसृज्य देवो महतां सुखाय ॥३॥

अनन्तर भगवान्—मुकुन्द प्रभु, गदाधरादि द्विज-सज्जनों के सहित अवधूत को सम्मुख में रख कर शुक्राचार्य के सहित चन्द्रमा के समान शोभित हुये थे ॥१॥

गमन करते-करते कभी "कृष्ण नाम" गान गौरहरि करते थे, कभी अस्पष्ट कुछ कहते थे, कभी द्रुत गमन करते थे, कभी धीरे-धीरे चलते थे, कभी स्खलित गति से चलते थे एवं कभी प्रेम विभिन्न धैर्य होकर रहते थे ॥२॥

सायं काल होने पर कभी भिक्षा ग्रहण करते थे, एवं गौरहरि यथा विधि कभी अन्न भोजन करते थे। रात्रि में धैर्य शून्य होकर श्रीहरि नाम-गान करते थे, रोदन करते थे एवं महत् सुख हेतु धैर्य्य त्याग कर विलाप करते थे ॥३॥

स्वयं पपाठ भगवान् श्लोकमेकं शृणुष्व तम् ।
यत् श्रुत्वा तत्पदाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी ॥४॥
राम राघव राम राघव राम राघव पाहि माम् ।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव त्राहि माम् ॥५॥
एवं कलपदं गायन् हसंस्तत्त्वविदाम्बरः ।
इमेऽनुशिक्षयन् लोकान् लोकानां पालकोऽव्ययः ॥६॥
पथिकान् याचकान् दृष्ट्वा क्वचिद्दानी ममागतः ।
आहूय तान्निवृत्तोऽभूत् स्वदमेव गतक्लमः ॥७॥
कदाचिदपरो दानी पथि गत्वा जगद्गुरुम् ।
वारयामास दानार्थी यात्रिकाणां गणैर्वृतम् ॥८॥
तमाह भगवान् गच्छ दूरं त्वं करसंज्ञया ।
ततोऽगच्छत्तदानीं स भगवान् मुदितो ययौ ॥९॥

भगवान् स्वयं एक श्लोक पाठ किये थे – उसको श्रवण करें । जिसके श्रवण से श्रीहरिचरणों में अभदायिनी रति होती है ॥४॥

रामराघव रामराघव रामराघव पाहिमाम् ।
कृष्णकेशव कृष्णकेशव कृष्णकेशव त्राहिमाम् ॥५॥

तत्त्वज्ञ शिरोमणि प्रभु— इस प्रकार मधुर स्वर से गान कर लोकपाल अव्यय हरि लोक शिक्षा प्रचार किये थे ॥६॥

याचक पथिक वर्ग को देखकर दानी वहाँ पर कर ग्रहण हेतु आये थे, किन्तु उन सब को देखकर आनन्दित होकर क्लेश शून्य हुये थे ॥७॥

एकदिन अपर दानी जगद्गुरु को पथ में देखकर दान लेने की इच्छा से यात्रीगण के सहित प्रभु को निषेध किया था ॥८॥

भगवान् ने कहा था—"तुम दूर हो जाओ, एवं कर लेने की बात

अवधूतकरे दण्डं दत्त्वा स्वीयं जगद्गुरुः ।
अग्रे जगाम च पश्चात् नित्यानन्दः शनै र्ययौ ॥१०॥

दूयमानेन मनसाचिन्तयत् स उदारधीः ।
अहं विहरमानोऽसौ प्रभुर्म्मे दण्डधारकः ॥११॥

असौ श्रीभगवान् साक्षाद्दृश्यते प्रज्वलन्नलम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मधरो देवः श्रियान्वितः ॥१२॥

लौकिकीं दर्शयंश्चेष्टां न्यासद्दण्डधरो हरिः ।
मुरलीवादनः पूर्वं जगन्मोहनरूपकः ॥१३॥

राधारसविलासी च श्रीहरेः सन्निधौ स्थितः ।
तं दृष्ट्वा प्राह भगवान् दण्डं मे देहि माचिरम् ॥१४॥

न करो" अनन्तर भगवान् आनन्दित होकर गमन किये थे ॥९॥

जगद्गुरु अवधूत के हस्त में दण्ड प्रदान कर पुरोभाग में चले जा रहे थे, नित्यानन्द धीरे-धीरे उनके पीछे-पीछे गमन किये थे ॥१०॥

उदारचेता: श्रीनित्यानन्द ने चिन्ता की, विहरण परायण मेरा प्रभु गौरहरि हैं, मैं उनका दण्डधारक हूँ। साक्षात् भगवान् गौरहरि जाज्वल्य मान विभा वसु के समान शङ्ख-चक्र गदा-पद्म एवं लक्ष्मी समन्वित होकर यथेष्ट विलसित हैं ॥११-१२॥

लोकशिक्षा प्रदान लीला प्रकटन हेतु स्वयं गौरहरि सन्न्यासी होकर दण्ड धारण किये हैं। पहले जगन्मोहन रूपधारी मुरली वादन पटु राधारस विलासी गोकुल नायक रूप में लीलाविनोद किये थे। इस प्रकार मन में चिन्ता कर श्रीप्रभु के निकट आप उपस्थित हुये थे, उनको देख कर श्रीप्रभु ने कहा— "सत्वर मेरा दण्ड मुझको दो" ॥१३-१४॥

अवधूतस्ततः प्राहः दैवाद्भूमौ पदं ममः ।
प्रस्खलत्तेन दण्डस्ते भग्नो भीत्येत्युवाच सः ॥१५॥

ततश्चुकोप भगवान्वधूतं जगाद च ।
दण्डे मे संस्थिता देवाः शिवाद्याः सह शक्तयः ॥१६॥

तेषां पीड़ां विधाय त्वं बभञ्ज मम दण्डकम् ।
देवपीड़ाकृतं दोषं नो जानासि किमल्पकम् ॥१७॥

तत श्रुत्वा प्राह तं देवो हितं तेषां कृतं मया ।
ततः क्षणात्क्ताक्तरोषो भगवानिदमब्रवीत् ॥१८॥

गत्वा च श्रीजगन्नाथं दृष्ट्वा पुरुषोत्तमम् ।
स्थित्वा कतिपयं मासं पार्श्वे श्रीचक्रिणो मया ॥१९॥

अवधूत चन्द्र ने कहा—दैवात् पैर फिसल जाने से मैं भूतल में गिर गया, और दण्ड को लेकर ही गिरा था, उससे दण्ड टूट गया। इस प्रकार कह कर भय एव सङ्कोच को भी प्रकट उन्होंने किया।१५।

सुनकर भगवान् क्रुद्ध हो गये, और अवधूत चन्द्र को कहे थे, मेरा दण्ड में निज-निज शक्ति के सहित शिवादि देवगण अवस्थित हैं, आपने उन सब को कष्ट देकर मेरा दण्ड को तोड़ डाला, आप क्या देवद्रोही रूप दोष को थोड़ा भी नहीं जानते हैं ॥१६-१७॥

सुनकर अवधूत चन्द्र प्रत्युत्तर में कहा—हे देव ! मैंने उन देवताओं का मङ्गल ही किया, कारण—देवगण निज-निज शक्ति के के सहित दण्ड को अवलम्बन कर पराधीनवत् बद्ध हुये थे।" उससे प्रभु—रक्ताक्त नयन होकर कहे थे— "मेरा निश्चय था कि—मैं पुरुषोत्तम क्षेत्र में जाकर श्रीजगन्नाथ दर्शन करूँगा। अनन्तर चक्रपाणि के समीप में कतिपय मास व्यतीत कर दण्ड न्यास करूँगा,

न्यासो दण्डस्य कर्त्तव्यो ममासीन्मतिरीदृशी ।
तमसौ च बभञ्जोर्व्यां क्षिप्तवान् किं करोम्यहम् ॥२०॥

इत्युक्त्वा तत् क्रीड़ाकृत्वा प्रोवाच मधुराक्षरम् ।
मदभिप्रायमेव त्वं कर्त्तुमर्हसि सर्व्वदा ॥२१॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे
दण्डभञ्जनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥

आपने तो दण्ड को उसके पहले ही तोड़ डाला, और मिट्टी में फेंक भी दिया, अब मैं क्या करूँ ? ॥१८-१९-२०॥

लीला पूर्वक प्रभु उस प्रकार कह कर मधुराक्षर से कहे थे—"मेरा अभिप्राय का जान कर ही आप सर्वथा सब कार्य्य सर्वदा करें" ॥११॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे
दण्डभञ्जनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥

षष्ठः सर्गः

इत्युक्त्वा प्रययौ देवो हरिकीर्त्तनतत्परः ।
पथस्था देवता दृष्ट्वा नत्वा स्तुत्वा यथाविधि ॥१॥
तमोलिप्ते महापुण्ये हरेः क्षेत्रे जगद्गुरुः ।
ब्रह्मकुण्डे कृतस्नानो ददर्श मधुसूदनम् ॥२॥
ततो जगाम भगवान् दिनैः कतिपयैः प्रभुः ।
रेमुणायां महापुर्य्यां द्रष्टुं गोपालदेवकम् ॥३॥
वाराणस्यामुद्धवेन स्थापितं पूजितं पुरा ।
ब्राह्मणानुग्रहार्थाय तत्र गत्वा स्थितं हरिः ॥४॥
गोपीनाथमिति केचिदाहु स्तं करुणानिधिम् ।
क्षीरचौरादिलीलां यश्चकार भक्तहेतवे ॥५॥

उस प्रकार कहकर श्रीहरि-कीर्त्तन ततपर श्रीगौरहरि गमन करने लगे, पथ में अवस्थित देववर्ग का दर्शन कर यथाविधि नति स्तुति भी किये थे ॥१॥

तमोलिप्त महापुण्यात्म हरिक्षेत्र में जगद्गुरु श्रीगौरहरि–ब्रह्म कुण्ड में स्नान फिर श्रीमधुसूदन का दर्शन किये थे ॥२॥

अनन्तर कतिपय दिन के बाद प्रभु महापुरी रेमुणा में उपस्थित होकर श्रीगोपालदेव का दर्शन किये थे। गोपालदेव पहले वृन्दावन में उद्धव के द्वारा स्थापित होकर पूजित होते थे, पश्चात् ब्राह्मण के प्रति अनुग्रह कर साक्षी प्रदान हेतु वहाँ उपस्थित हुये थे ॥३-४॥

वहाँ जाकर करुणानिधि गोपीनाथ का दर्शन भी प्रभु ने किया, जिनकी प्रसिद्धि क्षीरचोरा गोपीनाथ नाम से है, भक्त के निमित्त आपने क्षीर चोरी किये थे ॥५॥

सर्वं प्रमाणमेवात्र भक्तवाक्यानुगो हरिः ।
ददर्श तत्र गत्वासौ भगवान् प्राकृतं यथा ॥६॥

दण्ड वद्भुवि निपत्य सुरेशं
तत् प्रणम्य करणार्द्रमुखेन्दु ।
नर्त्तनं निजजनैः सह चक्रे
कीर्त्तनं सरसिजायनेत्रः ॥७॥

तत्क्षणाम्मुररिपोः प्रतिमाया
मौलिलग्नमुकुटं च समाप ।
तदववलोक्य करपद्मयुगेन
तद्दधार श्रीशचीसुत एषः ॥८॥

तत् प्रसादमधिगत्य स्वमुर्द्ध्ना
संदधार च रराज च हृष्ट ।
अद्भूतं तमवलोक्य सुरेशं
खे ननन्द नतकन्धरचित्तः ॥९॥

भक्त वत्सल श्रीहरि-भक्त वाक्य से ही प्रमाणित होते हैं, वहाँ जाकर भगवान् श्रीगौरहरि साधारण जनवत् देव दर्शन किये थे ॥६॥

सुरेश के सम्मुख में दण्डवत् प्रणति कर करुणार्द्र मुख से स्तुति प्रभृति कर निज जनगण के सहित कमल नयन श्रीहरि सङ्कीर्त्तन किये थे ॥७॥

उस समय में ही श्रीकृष्ण विग्रह के मस्तक स्थित मुकुट गिर कर प्रभु के सम्मुख वर्त्ती हुआ, प्रभु ने मुकुट को निज करकमल युगल से धारण किया ॥८॥

प्रसाद रूप मुकुट को प्राप्त कर प्रभु ने निज मस्तक में धारण

तत्र नृत्यमकरोदतुलश्री-
र्न्यासिनाम्वरः सुधाकरकान्तिः ।
वैष्णवै सह दिनान्तरमन्तः
सायमेव चिरमास महात्मा ॥१०॥

तं विलोक्य मुदिता जनसंघा
स्तुष्टुवुर्मुहुरमुं प्रशशंसुः ।
तत्र सोऽपि रजनीं प्रणिनाय
भक्ष्यमन्नमुपभोज्य मुनीशः ॥११॥

प्रातरम्बुजमुखः स जगाम
देशमन्यनगराणि लङ्घयन् ।
प्राप्य कालमनु कम्बुसुकण्ठो
वेगिनीं सुरनदीझरच्युताम् ॥१२॥

किया,एवं अतिशय आनन्दानुभव किया। अद्‌भुत वीर्य सम्पन्न श्रीशचीसुत भगवान् को देखकर गगन में नत कन्धर चित्त होकर देवगण आनन्दित हुये थे ॥९॥

न्यासिवर सुधाकर कान्ति गौरचन्द्र अतुल श्रीहरि कीर्त्तन के सहित वहाँ नृत्य किये थे। द्वितीय दिन सायंकाल पर्यन्त निरवधि श्रीहरि-कीर्त्तन किये थे ॥१०॥

जनगण उस प्रकार श्रीहरि-कीर्त्तन को देख कर आनन्द से पुनः-पुनः स्तव एवं प्रशंसा किये थे। अनन्तर रजनी समागत होने पर प्रभु भक्तवृन्द गण के सहित प्रसादान्न ग्रहण किये थे ॥११॥

प्रातःकाल होने पर कमल वदन प्रभु नगर समूह अतिक्रम कर सुकण्ठ से श्रीहरि नाम ग्रहण कर सुरनदी के समीप में उपस्थित हुये थे ॥१२॥

तां विलोक्य वरवैतरणीं स
सर्वपातककुलं जनतायाः ।
दर्शनेन यमवैतरणीं सा
जातु भाति किमु तत् स्नपनेन ॥१३॥
स्नानमत्र विधिना स विधाय
तं ददर्श वरशूकररूपम्
यस्य दर्शनवशान्मनुजानां
सप्तसप्ततिकुलं दिवमीयात् ॥१४॥
तं विलोक्य मुदितः स जगाम
याजपुरनामनगरीं द्विजभूमिम् ।
यत्र यज्ञमकरोच्चतुर्म्मुखः
शासनं द्विजवराय ददौ च ॥१५॥
यत्र मृत्युमधिगम्य तु विश्वाः
पापिनोऽपि शिवरूपधराः स्युः ।

वहाँ पर आपने वरवैतरणी नदी को देखा, वैतरणी नदी जनता की पापराशि को विदूरित करती है, दर्शन का यह फल है, स्नान करने से तो यम वैतरणी का पार हो जाता है ॥१३॥

विधि पूर्वक आपने वैतरणी में स्नान किया, एवं वहाँ पर स्थित अत्युत्कृष्ट शूकर रूपधारी श्रीहरि का दर्शन भी किया । जिनके दर्शन से मनुष्य सप्त सप्ततिकुल पर्यन्त स्वर्ग सुख-भोग करता है ॥१४॥

उनको देखकर आनन्दित होकर द्विजभूमि याजपुर नामक नगरी में उपस्थित हुये थे । जहाँ चतुर्म्मुख ब्रह्मा ने यज्ञ कर द्विजवर को उक्त स्थान प्रदान किया था ॥१५॥

तत्र लिङ्गशतशो हि समीक्ष्य
शङ्करस्य शिरसानमदीशः ॥१६॥
स जगाम विरजामुखपद्म-
दर्शनाय भगवान् करुणाब्धिः ।
यां विलोक्य जगतां जनुकोटि-
मात्रमघं ह्यखिलं प्रजहाति ॥१७॥
तां विलोक्य प्रणमन् समयाचत्
प्रेमभक्तिमतुलां जगदीशः ।
आजगाम गयनाभिमनर्घ्यं
पैत्रतीर्थमरविन्दमुखेशः ॥॥१८॥
ब्रह्मदण्डपयसि द्विजवर्य्यः
स्नानमाशु विदधे विधानवित् ।
यत्र यज्ञवराहप्रकाश-
दर्शनेन जगतां सुखमासीत् ॥१९॥

जहाँ पर पापिव्यक्तिगण मृत्यु होने पर शिव रूप को प्राप्त करते हैं, वहाँ पर शत-शत शिव-लिङ्ग का दर्शन कर भगवान् गौरचन्द्र शिरसा नमस्कार किये थे ॥१६॥

करुणानिधि भगवान् गौरहरि श्रीभगवन्मुखारविन्द सन्दर्शन हेतु विरजा में उपस्थित हुये थे। जिनका दर्शन करने पर कोटि जन्मार्जित पाप समूह विनष्ट होते हैं ॥१७॥

जगदीश्वर गौरहरि–श्रीभगवन्मुखारविन्द सन्दर्शन कर अतुल प्रेमभक्ति की प्रार्थना किये थे। अनन्तर आप गयनाभि नामक पितृ तीर्थ में उपस्थित हुये थे ॥१८॥

विप्राग्रगण्य श्रीगौरहरि विधानुसार ब्रह्म दण्ड तीर्थ में आशु

बभ्राम तत्र भगवान् नगरीं निरीक्ष्य
भूतेशलिङ्गमवलोक्य महानुभावः ।
वाराणसीमिव सदाशिवराजधानीं
यत्र त्रिलोचनमुखाः शिवलिङ्गकोटिः ॥२०॥

श्रुत्वा हरेरिदमनन्तसुखं लभेत
पुण्यां कथां सकलपापहरां मनुष्यः ।
तीर्थाटनस्य च फलं पितृतीर्थसर्व-
यज्ञक्रियाफलमशेषगुणान्वितः स्यात् ॥२१॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे
दक्षिणदेशभ्रमणं नाम
षष्ठः सर्गः ॥

स्नान किये थे। यहाँ यज्ञ वराह सन्दर्शन से जगत्वासी सुखी होते हैं ॥१९॥

भगवान् गौरहरि—महेश लिङ्ग समूह सन्दर्शन करतः नगरी में भ्रमण किये थे। यहाँ वाराणसी के तुल्य त्रिलोचन प्रमुख कोटिशः शिवलिङ्ग विद्यमान हैं ॥२०॥

श्रीगौरहरि का चरित्र श्रवण से अनन्त सुखभागी मनुष्यगण होते हैं, भगवान् गौरहरि की कथा पुण्यात्मिका है, एवं सकल पाप हरणकारिणी हैं। तीर्थाटन का फल लाभ भी चरित्र श्रवण से होता है, एवं मानव अशेष यज्ञीय फलों से पूर्ण होता है ॥२१॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे
दक्षिणदेशभ्रमणं नाम
षष्ठः सर्गः ॥

सप्तमः सर्गः

ततः प्रणम्य तं भक्त्या मुकुन्दोऽम्बष्ठ ईश्वरम् ।
प्राह प्रफुल्लवदनः सहर्षं जगदीश्वरम् ॥१॥
भगवन्नत्र नास्ते वै दानिनो भयमन्वपि ।
जानासि सर्वतो लोकान् ये वसन्त्यत्र दुर्मदान् ॥२॥
तत् श्रुत्वा भगवान् प्राह स्मितकान्तनवाननः ।
एतावद्भयमस्माकं पालनं भवता कृतम् ॥३॥
इत्युक्त्वा प्रययौ भिक्षां कर्त्तुं लोकेषु शिक्षया ।
लक्ष्मीकान्तः स्वयं कृष्णो न्यासिवंशधरो हरिः ॥४॥
नित्यानन्दावधूतश्च सर्वशक्तिसमन्वितः ।
श्रीमद्गदाधरो विप्रो मुकुन्दाद्याश्च सज्जनाः ॥५॥
जग्मुर्भिक्षाटनेनात्र दानी तामप्यवर्ज्जयत् ।
बद्धा मुकुन्दं संरक्ष्य दिनमेवानयत् क्रुधा ॥६॥

अनन्तर भगवान्–गौरहरि को भक्ति पूर्वक प्रणति कर अम्बष्ठ मुकुन्द सहर्ष कहे थे—भगवन् ! यहाँ दानी का भय स्वल्प भी नहीं है। जानते हैं—यहाँ के अधिबासी जनगण दुर्मद लोक समूह को जानते हैं ॥१–२॥

सुनकर स्मितकान्त नवानन भगवान् कहे थे—भय से मुक्त कर पालन करना मेरा कार्य है। यह कहकर प्रभु—लोक शिक्षा हेतु भिक्षार्थ निकल पड़े थे। लक्ष्मीकान्त स्वयं कृष्ण भी सन्न्यासी वेश धारण कर भिक्षा किये थे ॥३–४॥

सर्वशक्ति समन्वित नित्यानन्द अवधूत, श्रीमद्गदाधर विप्र एवं मुकुन्दादि सज्जनगण–भिक्षा करने के निमित्त गमन किये थे। दानी मुकुन्द को बाँध कर ले गया, और एकदिन बन्ध कर रखा ॥५–६॥

ततः सायाह्नवेलायां गृहीत्वा कम्बलोत्तमम् ।
मोचयामास तान् सर्वान् ततो विमनसो ययुः ॥७॥
ते गत्वा ब्राह्मणान् भिक्षां कृत्वा बुभुजिरे ततः
नित्यानन्दो महातेजाः केन लक्ष्यः स्वयं प्रभुः ॥८॥
ततस्ते मण्डपं जग्मुः शयनार्थं द्विजाश्रमे ।
नित्यानन्दो हसन् बद्धं तत्रागत ऊदारधीः ॥९॥
तत्रैव भगवान् भिक्षां कृत्वा स्वयमुपस्थितम् ।
तं दृष्ट्वाकथयत् सर्वं दानिभिर्यत् कृतं बलात् ॥१०॥
तत् श्रुत्वा भगवान् तिष्ठ भद्रं भद्रं भविष्यति ।
तदीया शक्ती राजानं प्रेषयामास सत्वरं ॥११॥

अनन्तर एक उत्तमकम्बल लेकर सायंकाल में सब के सहित मुकुन्द को छोड़ दिया, उससे सब लोक असन्तुष्ट हो गये थे ॥७॥

वे सब मुक्त होकर पुनर्बार ब्राह्मण के घर में भिक्षार्थ गये थे, एवं भिक्षा कर भिक्षालब्ध अन्न भोजन किये थे। अनन्तर तेजस्वी नित्यानन्द प्रभु का आगमन हुआ, नित्यानन्द प्रभु ने पूछा—श्रीप्रभु को किसी ने कहीं देखा है ? ॥८॥

अनन्तर वे सब शयनार्थ द्विज के आश्रमस्थ मण्डप में उपस्थित होने पर दानी बद्ध व्यात्तियों को उपहास करतः उदार बुद्धि सम्पन्न नित्यानन्द का आगमन हुआ ॥९॥

वहाँ पर स्वयं भगवान् गौरहरि—भिक्षा करके स्वयं उपथित हुये थे। उनका देखकर भक्तगण दानियों ने बल से जो कुछ किया, उस सब का वर्णन उनके समीप में किये थे ॥१०॥

सुनकर भगवान् बोले—रहो, अच्छा होगा ! अच्छा होगा ! उसकी शक्ति क्या है, मैं देखता हूँ। कहकर राजा के पास सत्वर

तत्क्षणात्तत्र दानीशः समागत्य पदाम्बुजम् ।
हरेर्ववन्द तं प्राहुर्मुकुन्दाद्या महत्तमाः ॥१२॥
प्राह च तत्कृते सर्वान् दण्डवाटस्थितान् जनान् ।
प्रहरिष्यामि तान् दुष्टान् न करिष्यन्ति ते यथा ॥१३॥
तद्भृत्यैर्यत् कृतं कर्म तत् श्रुत्वा दुःखितोऽभवत् ।
दानीशः कम्बलं नूतनं बहुमूल्यं प्रदत्तवान् ॥१४॥
इत्युक्त्वा प्रणमन् सोऽपि गतः स्वगृहमृद्धिमत् ।
सर्वं त्यक्त्वा हरेः पादं चिन्तयामास शुद्धधीः ॥१५॥
एवं तेषाञ्चाभिमानं शमयित्वा निशां सुखम् ।
सुप्त्वा निनाय देवेशः प्रातरुत्थाय सत्वरः ॥१६॥
जगाम विरजां द्रष्टुं सर्वलोकैकपावनीम् ।
यां दृष्ट्वा श्रद्धया भक्त्या मुच्यते भवबन्धनात् ॥१७॥

व्यक्ति को भेज दिये । संवाद सुनकर दानीपति भी तत्क्षणात् आकर प्रभु पदाम्बुज में गिर गया, एवं चरण वन्दन करने लगा, दानीपति को मुकुन्द प्रभृति ने दान घाटी में रहने वाले का अत्याचार को कहा सुनकर दानीपति ने कहा—समस्त दुष्ट दान घाटी स्थित व्यक्तियों को मैं मारूँगा, और इस प्रकार दण्ड दूंगा, जिससे वे सब पुनर्बार वैसा आचरण न करें ॥११-१२-१३॥

भृत्यों के कर्म समूह को सुनकर दानीपति दुःखित हुये थे । एवं बहुमूल्य नूतन कम्बल उन सब को दिये थे ॥१४॥

इस प्रकार विनय प्रकट कर दानीपति सर्व सम्पद युक्त निज गृह में प्रविष्ट हुये थे, एवं सब कुछ छोड़ कर शुद्ध बुद्धि होकर श्रीहरि चरणों में अपने को नियुक्त किये थे ॥१५॥

प्रभु ने इस रीति से दानीपति एवं भक्तवर्ग का अभिमान को

भगवद्दर्शने यादृक् फलमाप्नोति मानवः ।
तादृक् फलमवाप्नोति विरजामुखदर्शने ॥१८॥
यत्रास्ति भगवान् देवः साक्षात् श्रीमत्त्रिलोचनः ।
काश्यां वा विरजायां वा मृतिर्मोक्षप्रदायिनी ॥१९॥
वाराणस्यां मृते यादृक् प्रीतिमाप्नोति शङ्करः ।
ततोऽधिकतरा प्रीतिर्विरजायां मृते भवेत् ॥२०॥
तं दृष्ट्वा प्रययौ कृष्णः सर्वलोकैकपावनः ।
कृष्णसङ्कीर्त्तनं कृत्वा भक्तवर्गसमन्वितः ॥२१॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे श्रीविरजादर्शनं नाम सप्तमः सर्गः ।

विचूर्ण कर रजनी में सुख निद्रा भोग किये थे। अनन्तर सत्वर जाग्रत होकर प्रातः काल में ही सकल लोक पावनी विरजा दर्शनार्थ गमन किये थे। जिसका सन्दर्शन से भव-बन्धन विनष्ट होता है ॥१६-१७॥

भगवद् दर्शन से जो फल लाभ होता है, विरजा मुख दर्शन से भी वह फल होता है ॥१८॥

जहाँ पर भगवान् साक्षात् देव त्रिलोचन विराजते हैं, यह स्थान काशी एवं विरजा है। अतः उभय स्थान ही उक्त स्थान में प्राण त्यागकारी को मुक्ति प्रदान करते हैं ॥१९॥

वाराणसी में देह त्याग करने पर शङ्कर जिस प्रकार सन्तुष्ट होते हैं, उससे भी अधिक प्रसन्न होते हैं—विरजा में प्राण त्याग करने पर, अतः विरजा को देखकर सर्व लोक पावन कृष्ण—कृष्ण सङ्कीर्त्तन भक्तवृन्द के सहित करके वहाँ से प्रस्थान किये थे ॥२०-२१॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे श्रीविरजादर्शनं नाम सप्तमः सर्गः ।

अष्टमः सर्गः

ततः प्रयातो द्विजराजविक्रमः
क्रमेण यत्राखिललोकपालैः ।
एकाम्रकाख्ये गिरिजासमन्वितो
गिरीशदेवो गिरिराजमूर्द्धनि ॥१॥

ददर्श तत्राखिलशोभयोज्ज्वलं
चलत्पताकं शिवमन्दिरं महत् ।
सुधावलिप्तं वरशृङ्गमुन्नतं
सुतोरणं श्वेतगिरिमिवापरम् ॥२॥

निपत्य भूमौ प्रणनाम देवः
शिवालयं शूलविचित्रचूड़म् ।
पताकया नाकनदीविभङ्गं
दधन् समारोहति हेलयेव ॥३॥

ततो जगामेश्वरदर्शनाय
पुरीं पुरारेः परया मुदा सः ।

अनन्तर द्विजराज विक्रम गौरचन्द्र—एकाम्र नामक स्थान में उपस्थित हुये थे, जहाँ समस्त लोकपालों के सहित गिरिजा समन्वित गिरीशदेव गिरिराज शिखर में अवस्थित है ॥१॥

वहाँपर आपने देखा–अखिल शोभा-समुज्ज्वल चञ्चल पताका समन्वित शिव मन्दिर विराजित है। वह सुधालिप्त तोरण युक्त वृहत् श्वेत गिरि के सर्वोन्नत शृङ्ग के समान शोभित था ॥२॥

भूमि में निपतित होकर प्रभु ने पताका युक्त त्रिशूल विशिष्ट स्वर्णदी तरङ्गमाला से आलिङ्गित श्रीशिवालय को प्रणाम किया ॥३॥

अनन्तर आप विशेश्वर दर्शनार्थ आनन्द से त्रिपुरारि की पुरी

बसन्ति यत्रेश्वरलिङ्गकोट्यो
विश्वेश्वराद्याश्च सुपुण्यतीर्थाः ॥४॥
प्रासादकोट्यो वरतोरनाढ्या
राजन्ति राजच्चलचेलचूड़ाः ।
आमुक्तभूषा मनुजा मनोज्ञ-
गन्धार्च्चिता इन्द्रपदार्पितेहाः ॥५॥
तीर्थानि कोट्यो मणिकर्णिकाद्या
बसन्ति यत्राशु विमुक्तदेहाः ।
गच्छन्ति निःश्रेयसमुग्रयोगै-
र्यं योगिनो यान्ति चतुर्युगेन ॥६॥
विन्दून् समाहृत्य समस्ततीर्थात्
कृतं महाविन्दुसरोवराख्यम् ।
दण्डं कृतं देववरेण यत्र
स्नानाल्लभेच्चैव पदं विशुद्धम् ॥७॥

में उपस्थित हुये थे। जहाँ ईश्वर—कोटिलिङ्ग होकर विराजित हैं, एवं विश्वेश्वरादि सुपुण्यतीर्थ विराजित हैं ॥४॥

जहाँ उत्तम तोरण युक्त विविध प्रासाद, पताका समन्वित चूड़ा से सुशोभित हैं, मनुष्यगण—भूषण युक्त मनोज्ञ गन्धार्चित एवं योग सम्पत्ति युक्त हैं ॥५॥

मणिकर्णिका प्रभृति विविध तीर्थ विराजित हैं, जहाँ पर योगिगण—चतुर्युग काल में योगावलम्बन से देहत्याग पूर्वक निःश्रेयस को प्राप्त करते हैं ॥६॥

समस्त तीर्थ से विन्दु ग्रहण कर देववर ने महाविन्दु सरोवर

काशीं विहायाशु विशुद्धविक्रमो
वासाय यत्राखिलतीर्थपुण्यान् ।
आहूय तत्क्षेत्रवरे वरेण्यः
संस्थापयामाश महेशदेवः ॥८॥

स कृत्तिवासाः स्वयमेव देवः
स लिङ्गरूपी वसतीश्वरी च ।
भुङ्क्ते स्वयं भोगवरानशेयान्
दिव्यान् यतीन्द्रैरभिवन्द्यमानः ॥९॥

सुगन्धमाल्यैर्वरचन्द्रवर्त्ति-
दीपावलीभिः समलङ्कृताङ्गाम् ।
वैदूर्यघोषैर्वरशङ्खनादै-
र्देवीभिरानृत्यपराभिराढ्याम् ॥१०॥

नामक सरोवर का निर्माण किया है, उसमें स्नान करने पर विशुद्ध पद प्राप्ति होती है ॥७॥

विशुद्ध विक्रम वरेण्य महादेव ने काशी को छोड़ कर वहाँ पर निवास करने के निमित्त अखिल पुण्य तीर्थों को आवाहन कर क्षेत्रवर में स्थापन किया है ॥८॥

स्वयं कृत्तिवासदेव ईश्वर लिङ्ग रूप में वहाँ पर निवास करतः यतीन्द्र वृन्द के द्वारा वन्दित होकर अशेष अनुपम भोग समूह को प्राप्त करते हैं ॥९॥

सुगन्ध माल्य एवं दीप-मालिका के द्वारा समलंकृत उत्तम शङ्खनाद एवं वेद-ध्वनि द्वारा परिपूरित, तथा नृत्य परायणा देवीगण के द्वारा सुशोभित उक्त स्थान है ॥१०॥

विवेश भृत्यैर्भवनं पुरारेः
सुधांशुगौरस्य हरिः परेशः ।
यथा महेन्द्रस्य महोत्सवाढ्यां
पद्मोद्भवः कृष्णपदाब्जभृङ्गः ॥११॥
स कृत्तिवासं शिरसा ववन्द
निवासदेहं भुवि दण्डवत् स्वम् ।
गिरा गिरीशं च सगद्गदेन
तुष्टाव संहृष्टतनुरथाङ्गी ॥१२॥
नमो नमस्ते त्रिदशेश्वराय
भूतादिनाथाय मृड़ाय नित्यम् ।
गङ्गातरङ्गोत्थितबालचन्द्र-
चूड़ाय गौरीनयनोत्सवाय ॥१३॥
सुतप्तचामीकरचन्द्रनील
पद्मप्रवालाम्बुदकान्तिरक्तैः ।

भृत्य वर्ग के सहित गौरहरि —पद्मोद्भवकृष्णपदाब्जभृङ्ग परमहरि सुधांशु गौर पुरारि के भवन में प्रविष्ट हुये थे ॥११॥

प्रभु ने भूमि में दण्डवत् निपतित होकर सर्व भूतावास कृत्तिवास को प्रणाम किया, एवं गद्गद वाणी एवं रोमाञ्चित कलेवर से गिरीश की स्तुति की ॥१२॥

त्रिदशेश्वर को पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ, भूतादिनाथ भृङ्ग को नित्य प्रणाम करता हूँ, गङ्गा-तरङ्गोत्थित बाल चन्द्रचूड़ गौरी नयनोत्सव महादेव को प्रणाम करता हूँ ॥१३॥

सुतप्त चामीकरचन्द्र नीलपद्म प्रवालाम्बुद कान्ति के द्वारा

स नृत्यरङ्गेष्टवरप्रदाय
कैवल्यनाथाय वृषध्वजाय ॥१४॥
सुधांशुसूर्याग्निविलोचनेन
तमोभिदे ते जगतः शिवाय ।
सहस्रशुभ्रांशुसहस्ररश्मि-
सहस्रसंजित्त्वरतेजसेऽस्तु ॥१५॥
नागेशरत्नोज्ज्वलविग्रहाय
शार्दूलचर्म्मांशुकदिव्यतेजसे ।
सहस्रपत्रोपरि संस्थिताय
वराङ्गदामुक्तभुजद्वयाय ॥१६॥
सुनूपुरारञ्जितपादपद्म-
क्षरत्सुधाभृत्यसुखप्रदाय ।
विचित्ररत्नौघविभूषिताय
प्रेमाणमेवाद्य हरौ विधेहि ॥१७॥

नृत्यरङ्गेष्ट बरप्रद कैवल्यनाथ वृषभध्वज को प्रणाम करता हूँ ॥१४॥

सुधांशु सुर्य्याग्नि विलोचन के द्वारा अज्ञानान्धकार विनाशी सहस्र शुभ्रांशु एवं सहस्र रश्मि विजयी तेज सम्पन्न जगन्मङ्गल स्वरूप श्रीशिव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१५॥

नागेश रत्नोज्ज्वल विग्रह शार्दूलचर्म्मांशुकधारी एवं दिव्य तेजोधारी, उत्तम अङ्गद शोभित विस्तृत भुजद्वय शोभित, सहस्रपत्र कमलोपरि विराजमान शङ्कर को प्रणाम करता हूँ ॥१६॥

सुनूपुर रञ्जित पादपद्म, अमृत प्रदान के द्वारा भृत्यदुःखापहारक, विचित्र रत्नौघविभूषित श्रीहरि के प्रति, हे शङ्कर! आज मुझको

श्रीराम गोविन्द मुकुन्द शौरे
श्रीकृष्ण नारायण वासुदेव ।
इत्यादिनामामृतपानमत्त-
भृङ्गाधिपायाखिलदुःखहन्त्रे ॥१८॥

श्रीनारदाद्यैः सततं सुयोप्य-
जिज्ञासितायाशु वरप्रदाय ।
तेभ्यो हरेर्भक्तिसुखप्रदाय
शिवाय सर्वगुरवे नमो नमः ॥१९॥

श्रीगौरीनेत्रोत्सवमङ्गलाय
तत्प्राणनाथाय रसप्रदाय ।
सदा समुत्कण्ठगोविन्दलीला-
गानप्रवीणाय नमोऽस्तु तुभ्यम् ॥२०॥

प्रेम प्रदान करें ॥१७॥

श्रीराम ! गोविन्द ! मुकुन्द ! शौरे ! श्रीकृष्ण ! नारायण ! वासुदेव ! इत्यादि नामामृत पानमत्त भृङ्गगण के अधिप स्वरूप, निखिल दुःखापहारक श्रीशिव को नमस्कार करता हूँ ॥१८॥

श्रीनारद प्रभृति मुनिगण कर्त्तृक निरन्तर सुगोप्य श्रीहरितत्त्व जिज्ञासित होते हैं, एवं उनसब आशु वर प्रदान करते हैं, श्रीहरिभक्ति सुखप्रद जगत्गुरु स्वरूप श्रीशिव को पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥१९॥

श्रीगौरी नेत्रत्सव मङ्गल रूप, गौरी प्राणनाथ, रसप्रद, निरन्तर श्रीगोविन्द लीला स्वादनोत्कण्ठित श्रीहरिनाम परायण श्रीशिव ! आपको प्रणाम ॥२०॥

एतत् शिवस्याष्टकमद्‌भुतं महत्
शृण्वन् हरिप्रेम लभेत शीघ्रम् ।
ज्ञानञ्च विज्ञानमपूर्व्ववैभवं
यो भावपूर्णः परमं समादरम् ॥२१॥

इति स्तुवन्त * * * मुत्सुकाः
शिवस्य भृत्या वरमाल्यगन्धैः ।
विभूषयामासुरनुत्तमाङ्गं
ततो बहिर्वेश्मसु सन्निविष्टः ॥२२॥

भक्तार्पितान्नं बुभुजे ततोऽसौ
सुप्त्वा मुदातत्र निशां निनाय ।
प्रातः समुत्थाय स कृष्णलीलां
गायन् सुखेनापि बभुव पूर्णः ॥२३॥

अति अद्‌भुत महत् श्रीशिवाष्टक श्रवण से श्रीहरि प्रेम-लाभ होता है, एवं ज्ञान, विज्ञान, अपूर्व वैभव, परम समादर को प्राप्त कर कृष्ण भाव विभोर मानव होगा ॥२१॥

इस प्रकार स्तव परायण नृहरि—गौरचन्द्र को देखकर शिव भृत्यगण समुत्सुक होकर उत्तम गन्ध चन्दन माल्य द्वारा विभूषित किये थे। अनन्तर गौरहरि निज जनगण के सहित श्रीमन्दिर के वहिस्थ प्रकोष्ठ में अवस्थान किये थे ॥२२॥

अनन्तर भक्तगण प्रदत्त प्रसादान्न ग्रहण कर आनन्द पूर्वक सुख-निद्रा से रात्रि यापन किये थे। अनन्तर प्रातःकाल में उत्थित होकर श्रीकृष्ण लीला कीर्त्तन कर परमानन्दित हुये थे ॥२३॥

पठेद्य इत्थं स्तवमम्बुजाक्ष-
कृतं पुरारेः पुरुषोत्तमस्य ।
प्रेमाणमेवात्र लभेत नित्यं
सुदुर्लभं यन्मुनिदेववृन्दैः ॥२४॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे
महादेवदर्शनं नाम अष्टमः सर्गः ॥

कमल नयन श्रीगौरहरि के द्वारा कृत पुरारि की स्तुति का श्रवण जो व्यक्ति करेगा, वह पुरुषोत्तम श्रीहरि के चरणारविन्द में मुनिदेववृन्द का सुदुर्लभ प्रेम लाभ करेगा ॥२४॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे
महादेवदर्शनं नाम अष्टमः सर्गः ॥

नवमः सर्गः

—※—

स्नात्वा स विन्दुसरसि दृष्ट्वा भुवनेश्वरम् ।
सुखमासीनो भगवान् प्रेमानन्दपरिप्लुतः ॥१॥
ततो भुक्त्वा वरान्नं स भक्तैः सङ्कल्पितः प्रभुः ।
सुस्वाप तत्र संहृष्टो ध्यायन् कृष्णपदाम्बुजम् ॥२॥
चिन्तयामास भगवान् देवदेवस्य शूलिनः ।
महाप्रसादो लभ्येत तदा भुज्यामहे वयम् ॥३॥
इति चिन्तयतस्तस्य महादेवप्रसादकम् ।
पाणिभ्यां ब्राह्मणः कश्चिदादाय सम्मुखे स्थितः ॥४॥
उवाच च महाप्रसादं गृह्यतामिति ।
तत् श्रुत्वा सहसोत्थाय गृहीत्वा शिरसा नमः ॥५॥

विन्दु सरोवर में स्नान के बाद श्रीभुवनेश्वर का दर्शन कर भगवान् गौरहरि—प्रेमानन्द परिप्लुत होकर विश्राम किये थे ॥१॥

अनन्तर उत्तम प्रसादान्न भक्तवृन्द के द्वारा समर्पित श्रीप्रभु ग्रहण किये थे । अनन्तर श्रीकृष्ण पदाम्बुज ध्यान करते-करते सुख निद्रानुभव किये थे ॥२॥

एवं चिन्ता किये थे—देवादिदेव महादेव का प्रसादान्न यदि लाभ होता तो हम सब भोजन करते ॥३॥

इस प्रकार चिन्तान्वित होकर प्रभु थे, उस समय एक ब्राह्मण हस्तद्वय के द्वारा प्रसाद ग्रहण कर सम्मुख में उपस्थित हुये थे ॥४॥

ब्राह्मण बोले—"यह महादेव का प्रसाद है, ग्रहण करें" श्रवण मात्र से ही श्रीप्रभु—आसन से उत्थित होकर मस्तक के द्वारा प्रसाद को प्रणाम कर ग्रहण किये थे ॥५॥

महाप्रसादं संगृह्य पपौ भृत्यैः सुधामिव ।
शिवप्रियो हि श्रीकृष्ण इति सन्दर्शयन् हरिः ॥६॥
सुखाय पुनरेवामौ प्रातरुत्थाय सत्वरः ।
स्नात्वा वै विन्दुसरसि शिवं नत्वा ययौ हरिः ॥७॥
एतन्निशम्य देवस्य शिवनिर्माल्यभक्षणम् ।
प्रत्युवाच महातेजाः श्रीदामोदरपण्डितः ॥८॥
नाश्नाति शिवदेवस्य निर्माल्यं भृगुशापतः ।
कथं ज्ञात्वा स भगवान् बुभुजे तन्नरोत्तमः ॥९॥
तत् श्रुत्वा प्राह विप्रेन्द्रं मुरारिः श्रूयतामिति ।
कथां श्रीशिवदेवस्य निर्माल्यामृतभक्षणे ॥१०॥
वस्तुतस्तु महादेवः श्रीकृष्णस्य शुभागमे ।

महाप्रसाद को ग्रहण कर भृत्यवर्ग के सहित अमृत के समान आदर पूर्वक भोजन किये थे, एवं प्रतिपादन किये थे कि—श्रीकृष्ण शिवप्रिय हैं ॥६॥

प्रत्यूष में सुख पूर्वक शय्या त्याग कर सत्वर विन्दु सरोवर में स्नान कर श्रीशिव को प्रणाम कर गौरहरि प्रस्थान किये थे ॥७॥

महातेजाः श्रीदामोदर पण्डित—श्रीप्रभु के द्वारा श्रीशिव निर्माल्य भक्षण वृत्तान्त को सुन कर कहे थे ॥८॥

भृगुशाप के कारण—महादेव का निर्माल्य ग्रहणीय नहीं है, किन्तु श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीशिव निर्माल्य ग्रहण क्यों किये ? ॥९॥

यह सुन कर विप्रेन्द्र को मुरारि कहे थे—श्रवण करें, श्रीशिव निर्माल्य भक्षण विषय कथा का वर्णन मैं करता हूँ ॥१०॥

वस्तुतस्तु श्रीकृष्ण का शुभागमन होने पर महादेव ने हर्ष से

आतिथ्यं विदधे हर्षात्तेन किञ्च परं शृणु ॥११॥

वैष्णवश्रेष्ठबुद्ध्या ये पूजयन्ति महेश्वरम् ।
तैर्दत्तं गृह्णते सोऽसि तदन्नं पावनं महत् ॥१२॥

श्रीकृष्णकृष्णभक्तानां भेदबुद्ध्या पतन्त्यधः ।
दुर्वैरान् शिक्षयन्तांश्च भक्तरूपः स्वयं हरिः ॥१३॥

आचरत्यपि देवेशो हितकृत् सर्वदेहिनाम् ।
निर्माल्यमादरेणैव गृहीत्या जगदीश्वरः ॥१४॥

जनैः संस्थापिते लिङ्गे भेदबुद्ध्या च पूजिते ।
तत्रैव शापो विप्रस्य नहि स्यादैक्यतः क्वचित् ॥१५॥

हरिशङ्करयोरैक्यं स्वयम्भूलिङ्गसन्निधौ ।
अभेदबुद्ध्या पूजायां नहि शापो भवेत् क्वचित् ॥१६॥

उनका आतित्थ्य सत्कार किया, उससे प्रभु ने उनके द्वारा प्रदत्त उपहार ग्रहण किया। अपर वृत्तान्त यह है—वैष्णव श्रेष्ठ बुद्धि से महेश्वर का पूजन जो व्यक्ति करते हैं, उनके द्वारा प्रदत्त अन्न ग्रहण होता है, कारण—वह अन्न अत्यन्त पावन है ॥११-१२॥

श्रीकृष्ण—कृष्ण भक्तों में अभिन्नता है, उन दोनों में भेद बुद्धि करने से नरकपात रूप संसार क्लेश होता है। अतः भक्तरूप स्वयं हरि, भक्त भगवद् विद्वेषी व्यक्तियों को शिक्षा प्रदान, प्रभु ने निजाचरण पूर्वक किया ॥१३॥

देवदेव गौरहरि उस प्रकार ही आचरण कर रहे हैं, जिससे सकल देहधारिव्यक्तिगण सुखी बनें। अतएव आदर पूर्वक शिव निर्म्माल्य ग्रहण कर जगदीश्वर प्रभु ने स्थापन किया कि—श्रीशिव

तेन तत्राधिका प्रीतिर्हरिशङ्करयोर्भवेत् ।
अभेदेऽत्र स्वयम्भौ च पूजा सर्वातिशायिनी ॥१७॥

महाप्रसादं तत्रैव भुक्त्वा मोक्षमवाप्नुयात् ।
महारोगात् प्रमुच्येत स्थिरसम्पत्तिमाप्नुयात् ॥१८॥

ये मोहात्तन्न खादन्ति ते भवन्त्यपराधिनः ।
हरौ शिवे च निःश्रीका रोगिणश्च भवन्ति ते ॥१९॥

वैष्णवैः तूजितो यत्र श्रीशिवः परमादरात् ।
अनादिलिङ्गमासाद्य श्रीकृष्णप्रीतिहेतवे ॥२०॥

लिङ्ग की पूजा भेद-बुद्धि से करने से ही "अग्राह्यं शिव निर्माल्यम्" शिव निर्माल्य ग्रहणीय नहीं है, इस प्रकार भृगुशाप विधेय होता है। किन्तु श्रीहरि के सहित अभेद बुद्धि से पूजन करने पर उक्त दोष नहीं होता है। स्वयम्भू लिङ्ग में हरिशङ्कर की पूजा हरिहर की अभेद बुद्धि से करने पर उक्त विप्रशाप कभी प्रयोज्य नहीं होता है ॥१४-१६॥

उस प्रकार आचरण से श्रीहरि शङ्कर के प्रति अतिशय प्रीति मानव की होती है, अतः श्रीहरिहर, पूजक के प्रति अत्यन्त सन्तुष्ट होते हैं, अभेद बुद्धि से श्रीशिव माधव की पूजा गरीयसी है ॥१७॥

वहाँ पर महाप्रसादान्न ग्रहण करने पर महारोग से मानव मुक्त होकर महासम्पत्ति का अधिकारी होता है ॥१८॥

मोह वशतः जो व्यक्ति श्रीशिव निर्म्माल्य ग्रहण नहीं करते हैं, श्रीशिव एवं हरिहर के निकट वे अपराधी होते हैं, दरिद्र एवं रोगी भी होते हैं ॥१९॥

परमादर मे वैष्णव के द्वारा पूजित अनादिलिङ्ग का निर्माल्य श्रीकृष्ण प्रीति के निमित्त आदर पूर्वक ग्रहण करें ॥२०॥

तत्रैव संशयो नास्ति निर्माल्यग्रहणे क्वचित् ।
भक्तिरेव सदा विप्र शुभदा सर्वदेहिनाम् ॥२१॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे श्रीशिव निर्माल्य भेद व्यवस्थानाम नवमः सर्गः ।

श्रीशिव निर्माल्य ग्रहण विषय में उक्त रीति से कोई संशय नहीं है। प्राणी मात्र के प्रति श्रीहरि भक्तरूप में प्रीति सर्व शुभङ्करी है। जिस प्रकार मानव निजाङ्ग मस्तक हस्त-पदादि में पराये बुद्धि नहीं रखते हैं। उस प्रकार भगवद् भक्तगण भी देव-देवी एवं प्राणी मात्र में भेद बुद्धि अर्थात् पर बुद्धि नहीं करते हैं। यह भक्ति है, इससे मानव मात्र का कल्याण होता है ॥२१॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे श्रीशिव निर्माल्य भेद व्यवस्थानाम नवमः सर्गः ॥

दशमः सर्गः

—※—※—

पुनः शृणुष्व देवस्य चैतन्यस्य महात्मनः ।
कथां मनोहरां पुण्यां नूतनामृतवर्षिणः ॥१॥

ततः प्रयातो भगवान् मुदान्वितो
निजैरजः साधुजनैकबन्धुः ।
कपोतसंपूजितलिङ्गमुत्तमं
दृष्ट्वा प्रणम्याशु पुनर्ययौ हरिः ॥२॥

पुण्यान् शिवस्यान्यतमांश्च लिङ्गान्
विलोक्य हर्षेण नमन् पुनर्ययौ ।
नदीं महावीर्यवतीं स भार्गवीं
तस्यां कृतस्नानविधिः पुनर्ययौ ॥३॥

ततोऽवलोक्याशु हरेः सुमन्दिरं
सुधानुलिप्तं शरदिन्दुसुप्रभम् ।

नूतनामृतवर्षि महात्मा श्रीकृष्णचैतन्यदेव की पवित्र मनोहर कथा का श्रवण पुनर्बार आप करें ॥१॥

अनन्तर साधुजनबन्धु भगवान् गौरहरि—निज जनगण के सहित आनन्द चित्त से कपोतेश्वर महादेव का दर्शन कर एवं प्रणाम कर वहाँ से देव दर्शन के निमित्त गमन किये थे ॥२॥

अन्य समस्त पुण्यात्म शिवलिङ्ग को दर्शन कर पुलकित होकर प्रणाम किये थे एवं महावेगवती भार्गवी नदी के तट देश में उपस्थित होकर भार्गवी नदी में यथाविधि स्नानादि कृत सम्पन्न किये थे ॥३॥

वहाँ से प्रस्थान कर नीलगिरि के विभूषण स्वरूप महोज्ज्वल श्रीहरिमन्दिर का दर्शन किये थे । जो श्रीमन्दिर सुधानुलिप्त शारदीय

रथाङ्गयुक्तं पवनोद्धूतांशुकं
विभूषणं नीलगिरेर्महोज्ज्वलम् ।।४।।

कैलासशृङ्गं मुहुराक्षिपच्च
कान्त्या समुच्छेषतया सुधाम्ना ।
प्रभञ्जनाकल्पितचेलहस्तै-
राहूयमानं कमलेक्षणं तम् ।।५।।

पपात भूमौ सहसा हतारि-
र्हरिर्गतस्यन्दममन्तरात्मा ।
विलोक्य सर्वे मुमुहुस्तदीयाः
प्राणेन हीनास्तनवो यथार्याः ।।६।।

ततः क्षणेनोत्थितमीशमुत्सुका
विलोक्य जीवं परिबभ्रुरिन्द्रियाः ।

शशधर सुषमा से विमण्डित था, शिखरोपरि चक्र शोभित था, एवं समीरण के द्वारा परिचालित पताका से सुशोभित था ।।४।।

कान्ति के द्वारा कैलासशृङ्ग को पुनः-पुनः तिरस्कृत कर अशेष माधुर्य मण्डित मन्दिर शिखर मानों पवन परिचालित पताका रूप हस्त के द्वारा कमलेक्षण श्रीगौरहरि को स्वागत करने लगे थे ।।५।।

श्रीमन्दिर दर्शन कर अघदमन श्रीगौरहरि सहसा भूतल में निपतित होकर प्रणत हुये थे। श्रीगौरहरि को प्रणत अवस्था में निश्चेष्ट देखकर प्राण हीन तनु के समान जड़िमा को आर्य भक्तगण प्राप्त किये थे ।।६।।

अनन्तर क्षणकाल के मध्य में प्रभु उत्थित हुये थे, श्रीप्रभु की

तथैवमात्मानमतद्विदो जनाः
स्वभावतस्तान् भगवानथाब्रवीत् ॥७॥

भवन्तु एवात्र हरेर्गृहोपरि
स्थितं महानीलमणिप्रभं प्रभूम् ।
बालं प्रपश्यन्तु ततो न दृष्ट्वा
दृष्ट्वा तथोचुः प्रतिमा प्रभोर्द्विजाः ॥८॥

मोहः पुनः स्यादिति शङ्कमान-
स्तानब्रवीत् पश्य हरेर्गृहध्वजम् ।
आलक्ष्य बालं मुहुराक्षिपन्तं
वक्त्रेण पूर्णामृतरश्मिकोटिम् ॥९॥

आलोलरक्ताङ्गुलिशोणपद्म
तलेन मामाक्रमति स्म पाणिना ।

जाग्रत अवस्था को देखकर देह में प्राण सञ्चार से इन्द्रियगण जिस प्रकार आनन्दित होते हैं, उस प्रकार भक्तगण आनन्दित हुये थे। उस प्रकार अवस्था क्रान्त भक्तवृन्द को देखकर भगवान् गौरहरि भक्तवृन्द को कहे थे ॥७॥

मन्दिर के उपरिभाग में स्थित महानीलमणिप्रभ बालक को आप सब ने देखा? उन सब ने कहा—नहीं देखा। अनन्तर उन सब ने श्रीप्रभु के विग्रह को ही देखा था ॥८॥

मोह उत्पन्न होगा, इस शङ्का से द्विजवृन्द को प्रभु ने कहा—श्रीहरि मन्दिर के उपरि स्थित पताका को देखो, यह कहकर प्रभु ने किशोर कृष्णाकृति को देखकर उनकी पूर्णामृत सुषमा से निज को अप्लावित किया ॥९॥

दक्षेण सव्येन च वेणुरन्ध्र-
विन्यस्तवक्त्राङ्गुलिनातिशोभितः ॥१०॥
असौ सुधारश्मिसहस्रकान्तिः
को वा मनो मोहयति स्मितेन ।
स एवमुत्कातितरां जगाम
द्रुतं द्रुतस्वर्णरुचिः सभृत्यैः ॥११
प्रासादमालोक्य जगत्पतेर्मुहु
र्मुहुस्खलन्नेत्रजवारिधारया ।
शृङ्गः सुमेरोरिव निर्झरान्वित
स्तीर्थं मृकण्डोरगमत् सुतस्य ॥१२॥
चक्रेण चक्रे स्वयमुग्रचक्रिणा
तीर्थं महेशाय सुदीप्तिमत्तटम् ।

उन्होंने और भी देखा—बालक ने आलोल रक्ताङ्गुलि शोण पद्म रूप पाणितल के इङ्गित के द्वारा मुझको आह्वान किया, तथा बाम हस्त के द्वारा वेणु को स्वीय मुखाम्बुज में स्थापन कर वादन भङ्गी से बालक सुशोभित है ॥१०॥

यह सुधारश्मि सहस्र क्रान्ति सदृश कौन है, मेरा मन को स्मित हास्य के द्वारा मुग्ध कर रहा है। इस प्रकार कहते-कहते द्रुत सुवर्ण-कान्ति गौरहरि निज भृत्य के सहित उत्सुकतातिरेक से द्रुत गमन किये थे ॥११॥

श्रीजगन्नाथदेव के प्रासाद को देखकर निर्झर समन्वित सुवर्ण पर्वत के समान प्रेमाश्रु से प्रभु शोभित हुये थे। अनन्तर मृकण्डतीर्थ के निकट गमन किये थे ॥१२॥

स्नात्वा च यस्मिन् शिवलोकमाप्ता
स्तत्राशु गत्वा विधिवच्चकार ॥१३॥
स्नात्वा ततः शङ्करलिङ्गमीश्वरो
जपन्नधोरं प्रणनाम दण्डवत् ।
स्तुत्वा महेशस्तुतिभिः सुमङ्गलै-
र्जगाम यज्ञेशमहालयं प्रभुः ॥१४॥
प्रहृष्टरोमा नयनाब्जवारिभिः
परीतवक्ष्याः परमात्मचिन्तया ।
विवेश देवेशगृहं महोत्सवं
ननाम दृष्ट्वा जगतां पतिं प्रभुम् ॥१५॥
पपात भूमौ पुनरेव दण्डवन्
नमन्मुहुः प्रेमभराकुलाननः ।

जहाँपर स्वयं उग्रचक्रिणा निज चक्र के द्वारा तीर्थ निर्मान कर महेश को प्रदान किये थे, उस सुदीप्तिमन तटयुक्त तीर्थ के सन्निकट में प्रभु उपस्थित हुये थे। जहाँ स्नान करने से शिव-लोक लाभ होता है। वहाँ पर विधिवत आशु स्नान कार्य्य सम्पन्न किये थे, एवं श्रीशङ्कर के दर्शन कर शिवनाम उच्चारण पूर्वक दण्डवत् प्रणाम किये थे। इस प्रकार नतिस्तुति कृत्य समापन पूर्वक प्रभु—यज्ञेश महालय में उपस्थित हुये थे ॥१३–१४॥

प्रभु के अङ्ग समूह पुलकायित हुये थे, नयनाब्ज वारि से वक्षःस्थल विधौत हो रहा था, एवं मन, परमात्म की चिन्ता में विलीन था। इस अवस्था में प्रभु—महामहोत्सव पूर्व श्रीजगन्नाथ मन्दिर में प्रवेश कर जगत्पति को दर्शन कर प्रणाम किये थे ॥१५॥

ततः क्षणान्मुष्टिकरं विभावय
ज्जगत्पतिं सोऽतिरुरोद विह्वलः ॥१६॥

दृष्ट्वा तमित्थं पुरुषोत्तमो हरिः
प्रसार्य पाणि कमलाङ्गकोमलम् ।
अदर्शयद्रक्ततलं ततो मुदा
चैतन्योदेवो हृषितो जहास ॥१७॥

उवाच चैवं करुणाम्बुधे त्वं
प्रसीद देवेश महेशवन्दित ।
पुनर्न दृष्ट्वा करपल्लवाङ्गुलिं
रुरोद तस्मिन् द्विगुणं स विह्वलः ॥१८॥

पुनश्च दृष्ट्वातिमहोत्सवान्वितो
हर्षाश्रुधाराप्लुतदेहयष्टिः ॥१९॥

पुनर्बार प्रभु ने भूमि में दण्डवत् निपतित होकर पुनः-पुनः प्रणाम किया, एवं प्रेमभर से अति विह्वल होकर रोदन किया ॥१६॥

पुरुषोत्तम हरि—श्रीगौरहरि को देखकर हस्त प्रसारित कर करकमल की रक्तिमा को प्रदर्शित किये थे, देखकर श्रीचैतन्यदेव आनन्द चित्त से हास्य किये थे ॥१७॥

एवं उन्होंने कहा–महेश वन्दित हे देवेश ! प्रसीद, हे करुणाम्बुधे ! त्वं प्रसीद, पुनर्बार–करपल्लवाङ्गुलि को प्रभुने न देखकर अति विह्वल होकर द्विगुण रोदन किया ॥१८॥

पुनर्बार देव दर्शन कर प्रभु की अतिआनन्द से अङ्गयष्टि हर्षाश्रु धारा से आप्लुत हो गई ॥१९॥

एवं तयोरुद्भटचेष्टितं जनाः
शृण्वन्ति गायन्ति परं व्रजन्ति ते ।
पदं मुरारेः परमार्थदर्शिनो
न यत्र भूयः पतनं क्वचिद्भवेत् ॥२०॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे पुरुषोत्तमदर्शनं
नाम दशमः सर्गः ॥

इस प्रकार जगदीश एवं गौरसुन्दर की उद्भट चेष्टा को देखकर जनगण–यदि श्रवण एवं गान करते हैं, तो मुरारि के धाम को प्राप्त करेंगे, जहाँ गमन करने पर पुनर्बार कभी पतन नहीं होता है ॥२०॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे पुरुषोत्तमदर्शनं
नाम दशमः सर्गः ॥

एकादशः सर्गः

—*-*—

तत् श्रुत्वा प्राह बिप्रेन्द्रः श्रीदामोदरपण्डितः ।
कथं दृष्टो भगवता पुरुषोत्तम ईश्वरः ॥१॥
दृष्टः केन किमकरोत् स्वयमेव जनार्द्दनः ।
तत् श्रुत्वा प्राह स गुप्तस्तुष्टो वैद्यो कथां शुभाम् ॥२॥
श्रृणुष्वावहितं ब्रह्मन् दिव्यां त्रैलोक्यपावनीम् ।
कथां श्रीजगदीशस्य दर्शनानन्दसम्भवाम् ॥३॥
गत्वादौ वासुदेवस्य सार्वभौमस्य वेश्मनि ।
सत्वरं स समुत्थाय ननाम दण्डवत् सुधीः ॥४॥
दृष्ट्वा तं प्राह भगवान् सगद्गदगिरा हरिः ।
कथं द्रक्ष्यामि देवेशं जगन्नाथं सनातनम् ॥५॥

विप्रेन्द्र दामादर पण्डित, उक्त विवरण को सुनकर पूछे थे— पुरुषोत्तम ईश्वर को गौरहरि ने किस प्रकार दर्शन किया ॥१॥

किस प्रकार आपने दर्शन किया, एवं स्वयं जनार्दन ने भी क्या किया ? प्रश्न को सुनकर वैद्यगुप्त अति सन्तुष्ट होकर मङ्गलमयी कथा का कथन प्रारम्भ किये थे ॥२॥

उन्होंने कहा—हे ब्रह्मन् ! श्रीजगदीश के दर्शनानन्द सम्भव त्रैलोक्य पावनी कथा का श्रवण अवहित होकर करें ॥३॥

प्रथम श्रीवासुदेव सार्वभौम के निलय में श्रीप्रभु उपस्थित हुये थे, प्रभु को देखकर सुधी सार्वभौम उत्थित होकर दण्डवत् प्रणाम किये थे ॥४॥

भगवान् गौरहरि—उस प्रकार अवस्था में उनको देखकर गद्गदायमान् वाणी से कहे थे—देवेश सनातन जगन्नाथदेव का दर्शन कैसे करूँगा ? ॥५॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य सार्वभौमो महायशाः ।
प्रकाशिनयनाब्जेन तद्वपुः समलोकयत् ॥६॥
सुतप्तकाञ्चनाभासं मेरुश्रृङ्गमिवापरम् ।
राकासुधाकराकारमुखं जलजलोचनम् ॥७॥
सुनसं कम्बुकण्ठाढ्यं महोरस्कं महाभुजम् ।
बन्धुकमुकुरारक्तं दन्तच्छदमनोहरम् ॥८॥
कुन्दाभदन्तमत्यन्तचन्द्ररश्मिजितस्मितम् ।
आजानुलम्बितभुजं विलसत्पादपङ्कजम् ॥९॥
कृष्णप्रेमोज्ज्वलं शश्वत् पुलकाञ्चितविग्रहम् ।
कूर्मोन्नतपदद्वन्द्वं दृष्ट्वादौ विस्मितोऽभवत् ॥१०॥
किमसौ पुरुषव्याघ्रो महापुरुषलक्षणः ।

महायशाः सार्वभौम महाशय ने उनके वाक्य को सुनकर विस्फारित नयन कमल से प्रभु के श्रीअङ्ग को देखा ॥६॥

जो सुतप्त काञ्चन के समान कान्ति शोभित द्वितीय मेरुपर्वत के समान था, राकासुधाकर के समान वदन कमल एवं जलज-लोचन मण्डित था ॥७॥

सुन्दर नासिका, कम्बुकण्ठ, विस्तृत वक्षः, विस्तीर्ण भुजयुगल, एवं बन्धुक मुकुरारक्त मनोहर दन्तच्छन्द से शोभित था ॥८॥

कुन्द कुसुम के समान दन्तराजि शोभित थी, एवं स्मित हास्य से चन्द्र की कान्ति पराजित हो रही थी। आजानुलम्वित भुजयुगल एवं विलासयुक्त चरणकमल के द्वारा परिशोभित था ॥९॥

श्रीकृष्ण प्रेमोज्ज्वल शश्वत् पुलकाञ्चित विग्रह एवं कूर्मोन्नत पदद्वन्द्व को देखकर भट्टाचार्य विस्मित हुये थे ॥१०॥

क्या यह पुरुष व्याघ्र महापुरुष लक्षणान्वित देहरूप धारण कर

अवतीर्ण इवाभाति वैकुण्ठाद्देवरूपधृक् ॥११॥
किंवासौ सच्चिदानन्दरूपवान् रसमूर्त्तिमान् ।
किंवासौ सर्वजीवानां हृतकृदीश्वरः स्वयम् ॥१२॥
इति सञ्चिन्त्य मनसा सोऽनुजं प्राह शुद्धधीः ।
गच्छ तं श्रीयुतेनाद्य चैतन्येन महात्मना ॥१३॥
पुरं भगवतः शीघ्रं यथासौ पुरुषोत्तमम् ।
पश्यत्यनन्तपुरुषमनायासेन तत् कुरु ॥१४॥
तत् श्रुत्वा सार्वभौमस्य वचनामृतमद्भुतम् ।
ययौ तस्यानुजो धीमान् चैतन्येन सहायवान् ॥१५॥
तेन सार्द्धं स भगवान् गत्वा श्रीहरिमन्दिरम् ।
ददर्श पुण्डरीकाक्षं पुरुषोत्तममीश्वरम् ॥१६॥

वैकुण्ठ से अवतीर्ण हुये हैं ? ॥११॥

अथवा यह सच्चिदानन्द रूपवान् रसमूर्त्तिमान् हैं ? अथवा सर्व जीवनिकाय हितकारी स्वयं ईश्वर हैं ? ॥१२॥

मन ही मन इस प्रकार चिन्ता कर अनुज के प्रति शुद्धधी भट्टाचार्य ने आदेश किया, "तुम आज महात्मा श्रीचैतन्यदेव के सहित जाओ" ॥१३॥

"भगवान्—पुरुषोत्तम के मन्दिर में आपको शीघ्र ले जाओ, जिससे आप अनायास श्रीजगन्नाथदेव दर्शन कर सकें, वैसा उपाय करो" ॥१४॥

श्रीसार्वभौम के अद्भुत वचनामृत को सुनकर बुद्धिमान् अनुजवर श्रीचैतन्यदेव के सहाय होकर प्रस्थान किये थे ॥१५॥

उनके सहित भगवान् श्रीचैतन्यचन्द्र मन्दिर में उपस्थित होकर पुरुषोत्तम भगवान् पुण्डरीकाक्ष का दर्शन किये थे ॥१६॥

दृष्ट्वोल्पसद्विह्वलिताङ्गयष्टिः
प्रेमाश्रुवारिझरपूरितपीनवक्षाः ।
कम्पोद्गतप्रचुरवारियुतेन्दुवक्त्रो
हेमाद्रिश्रृङ्ग इव वातकृतः पपात ॥१७॥

भूमौ मुमोह भगवान् कृतमुष्टिहस्तो
विस्रस्तवस्त्ररसनो विवशं विदित्वा ।
तं ते द्विजाः सपदि बाहुयुगेन धृत्वा
कृताग्रतो भगवतः परतो निनिन्युः ॥१८॥

श्रीसार्वभौमवर वेश्मनि लब्धसंज्ञः
सङ्कीर्त्तनं नरहरेः पुनरेव चक्रे ।
नृत्यञ्च तत्र पुलकार्वलिपूरिताङ्गो
गाङ्गेय गौरवपुषा पुरुषाधिराजः ॥१९॥

देखकर प्रभु को उल्लास से प्रभु की अङ्गयष्टि विह्वलित हुई। प्रेमाश्रु वारिधारा से पीनवक्षःस्थल आप्लावित हुआ, अङ्ग में कम्पोद्गम हुआ, प्रचुर नयनवारि से वदनचन्द्र आच्छादित हुआ एवं वाताहत हेमाद्रिश्रृङ्ग के समान वपु, भूतल में निपतित हुआ ॥१७॥

भगवान् श्रीचैतन्यदेव-भूमि में निपतित होकर विवश हो गये, मुग्ध हुये, हस्त-मुष्टिबद्ध हो गया, वस्त्र-विस्रस्त हुआ, इससे पूजक ब्राह्मणवृन्द श्रीचैतन्य को प्रेमविवश देखकर सहसा श्रीभगवान् के सम्मुख से बाहुयुगल से धारण कर अन्यत्र ले गये ॥१८॥

श्रीसार्वभौम के उत्तम प्रासाद में आनीत होने से प्रभु की संज्ञा हुई। अनन्तर श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन के सहित श्रीप्रभु नृत्य करने लगे। इस प्रकार पुलकायित परिपूरित गांगेय गौरवपु के द्वारा पुरुषाधिराज श्रीगौरहरि शोभित हुये थे ॥१९॥

भिक्षां चकार भगवान् स निजेन सार्द्धं
भक्तेन दत्तममृतं सुमहाप्रसादम् ।
अन्नं रसायनवरं भवरोगिणां यद्
देवेन्द्रदुर्लभतरं पुरुषोत्तमस्य ॥२०॥

भुक्त्वा यदन्नमखिलं वृजिनं जहाति
धर्मार्थकाममममृतश्च तथा महत्त्वम् ।
प्राप्नोति वालिशजनो यदि नैव भुङ्क्ते
गच्छेत शूकरगतिं स च धर्महीनः ॥२१॥

चैतन्यदेव इह यद्दिवसो विभूत्वा
भुङ्क्ते शिरोऽपि यदि तन्नहि खादतीह ।
दूरादथागतमिति श्वपचेन वापि
स्पृष्टं विलोक्य वत शूकरतामुपैति ॥२२॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे श्रीमहाप्रसाद
महिमा नामकादशः सर्गः ।।

भगवान् गौरहरि—निज जनगण के सहित भिक्षा ग्रहण किये थे, जो महाप्रसाद भक्त जनगण कर्त्तृक प्रदत्त हुआ था। वह रसायनश्रेष्ठ भवरोग निवारक देवेन्द्र दुर्लभतर पुरुषोत्तम के महा प्रसादान्न था ॥२०॥

जिस प्रसादान्न भोजन से निखिल पापविनष्ट होते हैं, धर्मार्थ काम अमृत एवं महत्व लाभ भी होता है। बालिश व्यक्ति यदि उसका सेवन नहीं करता है तो वह धर्म हीन होकर शूकर योनि को प्राप्त करता है ॥२१॥

विभु श्रीचैतन्यदेव—महाप्रसाद को वन्दन कर भोजन करते हैं, वह यदि दूरागत होता है, अथवा श्वपच स्पृष्ट एवं अवलोकित तथापि अति पवित्र है, यदि मनुष्य उसका भोजन प्रीति पूर्वक नहीं करता है, तो वह मनुष्य शूकरता को प्राप्त करेगा ॥२२॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे श्रीमहाप्रसाद महिमा नामैकादशःसर्गः

द्वादशः सर्गः

—*—

भुक्त्वा प्रसादं नृहरेः स्वमन्दिरं
प्रविश्य सायं भगवान् ददर्श ।
धूपेन सन्धूपितमब्जलोचनं
दीपैरनेकैर्बहुमाल्यकेन ॥१॥
विभूषितं पूर्णनिशाधिनाथ-
सहस्रकल्पं नवमेघवर्णम् ।
ननाम भूमौ पुरुषोत्तमाख्यं
विकाशिनेत्रेण पपौ मुहुश्च ॥२॥
आनन्दराशौ परिमग्नचित्तो
नेत्राम्बुधारातिसुधौतवक्षाः ।
रोमाञ्चसञ्चारविभूषिताङ्गो
हेमाद्रिशृङ्गोपमगौरदेहः ॥३॥
रराज राजेव स भूसुराणां
प्रभुः प्रसूनावलिवृष्टिकालम् ।

भगवत् प्रसाद ग्रहण के अनन्तर भगवान् श्रीगौरहरि सायंकाल में धूपसन्धूपित लोचन विविध माल्यालङ्कृत बहु दीपमाला शोभित श्रीजगन्नाथदेव का दर्शन किये थे ॥१॥

पूर्ण निशाधिनाथ सहस्र तुल्य नवनीरद सदृश वर्ण पुरुषोत्तम नामक भगवान् को देखकर भूतल में दण्डवत् प्रणाम प्रभु ने किया, एवं विकचनेत्र से श्रीअङ्गमाधुर्य सुधा का मुहुःपान किया ॥२॥

आनन्द राशि में मग्नचित्त नेत्राम्बुधारा से सुधौतवक्षः हेमाद्रि शृङ्ग तुल्य गौर देह श्रीगौरहरि— विप्रवर्यगण के राजा के समान

तत्रावसत् श्रीपुरुषोत्तमं पुन-
र्नत्वा जगामाश्रममाश्रमेशः ॥४॥
गत्वा निशायां पुनरेव कीर्त्ति
जगौ हरेरद्भुतविक्रमस्य ।
स विह्वलः प्रेमविभिन्नधैर्यो
लुठन् क्षितौ वेद न चापरं कियत् ॥५॥
एवं महात्मा कतिचिद्दिनानि
तत्रावसत् साधुभिरर्च्चिताङ्घ्रिः ।
अशिक्षयत् सज्जनमब्जनेत्रो
मुदा मनोज्ञैर्वचनामृतैश्च ॥६॥
तस्मिन् कदाचित् परिमोहितात्मा
श्रीसार्वभौमः प्रभुमाययौ सः ।
चैतन्यदेवं मनुजं विदित्वा
बभाष ईषन्निजलोकमध्ये ॥७॥

शोभित हुये थे। एवं पुष्पाञ्जलि समर्पण काल पर्यन्त श्रीमन्दिर में अवस्थान पूर्वक पुनर्बार श्रीपुरुषोत्तमदेव को प्रणाम करके आश्रमेश भगवान् गौरहरि निजाश्रम में प्रत्यावर्त्तन किये थे –३ ४॥

अनन्तर रजनी में अद्भुत् विक्रम श्रीहरि की विमल कीर्त्ति गाथा का सङ्कीर्त्तन श्रीगौरहरि किये थे, एवं विह्वल प्रेमविभिन्न धैर्य होकर अवनीतल में लुठित होकर आत्म विस्तृत हुये थे ॥५॥

इस रीति से कतिपय दिन साधु महात्मागण द्वारा समर्च्चित होकर वहाँ पर निवास किये थे। एवं कमल नयन गौरहरि सज्जन वृन्द को वचनामृत द्वारा सत्शिक्षा प्रदान किये थे ॥६॥

उस समय कदाचित् श्रीसार्वभौम का आगमन हुआ था।

स एव मोलोऽपि कृपातिरेकः
श्रीसार्वभौमाय जनार्द्दनस्य ।
यद्यत् करोत्येव हरिः स्वयं प्रभु
स्तदेव सत्यं जगतो हिताय ।।८।।
अयं महावंशसमुद्भवः पुमान्
सुपण्डितः प्रौढ़वयाः कथं चरेत् ।
सन्न्यासधर्मं तदमुं द्विजं पुनः
कृत्वात्मवेदान्तमशिक्षयामहे ।।९।।
ज्ञात्वा हरिस्तत् पुनराह सस्मितो
यज्ञोपवीतं पुनरेव मे भवेत् ।
पुष्पानि पूगान्यनुगन्धवन्ति
माल्यानि विप्राय ददाम्यहं तदा ।।१०।।

उन्होंने श्रीचैतन्यदेव को साधारण मनुष्य जानकर लोकों के सम्मुख कुछ कहा ।।७।।

लीलापरायण प्रभु स्वयं हरि निजेच्छा से जो कुछ करते हैं, उसमें भी जनशिक्षा प्रदान करना ही उद्देश्य रहता है। अतएव सार्वभौम के निमित्त करके प्रभु ने उस प्रकार लीला की ।।८।।

सार्वभौम कहे थे—यह सन्न्यासी महावंश सम्भूत है, सुपण्डित एवं प्रौढ़ वयस्क हैं, इन्होंने सन्न्यास धर्म ग्रहण क्यों किया ? अतः पुनर्बार मैं इनको अध्यात्म विद्या रूप वेदान्त का अध्ययन कराऊँगा ।।९।।

श्रीगौरहरि—सार्वभौम के अभिप्राय को जान गये, एवं ईषत् हास्य कर कहे थे–यदि मेरा यज्ञोपवीत संस्कार पुनर्बार हो तो मैं उस समय विप्रवृन्द को पुष्प, पुग, सुगन्धित माल्यादि अर्पण करूँगा ।।१०।।

इत्याह गत्वा वचनं मुरारेः
श्रीसार्वभौमाय जनो विदित्वा ।
भीत्या न किञ्चित् पुनरेवमुचे
व्रीड़ापरोऽभूत् स तु सम्भ्रमेण ॥११॥

अथापराह्ने द्विजवृन्दसन्निधौ
स सार्वभौमस्य पुरो महाप्रभुः ।
उवाच वेदान्तनिगूढ़मर्थं
वचो मुरारेश्चरणाम्बुजाश्रयम् ॥१२॥

वेदान्तसिद्धान्तमिदं विदित्वा
गतं पुरा यत्तदलं स मत्वा ।
चैतन्यपादाब्जयुगे महात्मा
स विस्मयोत्फुल्लमनाः पपात ॥१३॥

जनगण मुरारि प्रभु गौरहृदि के वचन को सार्वभौम के निकट जाकर कहे थे, एवं सार्वभौम को लज्जित देखकर पुनर्बार कुछ नहीं कह पाये थे ॥११॥

अनन्तर अपर दिन अपराह्न काल में सार्वभौम का आगमन श्रीगौराङ्गदेव के समीप में हुआ था। उस समय प्रभु ने सार्वभौम के समीप में वेदान्त का निगूढ़ार्थ को कहा, जो कि–मुकुन्द चरणाश्रय ही वेदान्त का एकमात्र अर्थ है ॥१२॥

श्रीचैतन्यदेव के मुखारविन्द से वेदान्त सिद्धान्त श्रवण कर महात्मा सार्वभौम विस्मयोत्फुल मानस से श्रीचैतन्य चरणारविन्द में दण्डवत् पतित हो गये ॥१३॥

वेदानुरक्तो भगवान् भवान् प्रभु
धर्मानुरूपश्च कदाचिदन्वपि ।
सम्मोहितात्मा तव मायया प्रभो
लोके पदाब्जश्च तवाहमुग्रतः ॥१४॥
पुरा पृथिव्यां वसुदेवगेहे-
अवतीर्य कंसादिमहासुराणाम् ।
कृत्वा बधं त्वं प्रतिपाद्य धामं
भूदेवगेहे पुनराविरासीत् ॥१५॥
स्वकीयमाधुर्यविलासवैभव
मास्वादयंस्त्वं स्वजनं सुखाय च ।
कृतावतारो जगतः शिवाय
मां पाहि दोनं करुणामृताब्धे ॥१६॥
वैराग्यविद्यानिजभक्तियोग-
शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः ।

एवं कहे थे—आप धर्मानुरक्त सर्वशक्ति सम्पन्न भगवान् हैं, धर्मानुरूप आप आचरण भी समय समय करते हैं। हे प्रभो ! आपकी माया से मैं मुग्ध हूँ, आपके चरणारविन्द का उदय लोक में होने पर भी मैं जानने में अक्षम हूँ ॥१४॥

पूर्व काल में वसुदेव के गृह में अवतीर्ण होकर कंसादिमहा असुर वर्ग को विनष्ट किये थे एवं निज धाम गमन के पश्चात् पुनर्बार ब्राह्मण गृह में आविर्भूत हुये हैं ॥१५॥

निज माधुर्य विलास वैभव का आस्वादन करके निज जनवृन्द को सुखी करके जगत् को मङ्गलाम्बित करने के निमित्त आप अवतीर्ण हैं, हे कृपामृताब्धे ! दीनजन मुझको रक्षा आप करें ॥१६॥

श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी
कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ॥१७॥
कालाद्भ्रष्टं भक्तियोगं निजं यः
प्रादुष्कर्त्तुं कृष्णचैतन्यनामा ।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे
गाढ़ं गाढ़ं लीयतां चित्तभृङ्गः ॥१८॥
इति निगदिवन्तं सार्वभौमं करेण
सरसमतिजवेन स्नेहभावेन धृत्वा ।
निजहृदि विनिधायालिङ्गनं स प्रचक्रे
वरभुजयुगलेन श्रीपतिर्भक्तवश्यः ॥१९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे सार्वभौमानुग्रहो नाम द्वादशः सर्गः ॥

वैराग्य विद्या निजभक्ति योग शिक्षार्थ एक पुराण पुरुष कृपाम्बुधि श्रीकृष्ण—श्रीकृष्णचैतन्य रूप में अवतीर्ण हैं, मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥१७॥

कालक्रम से निज भक्तियोग तिरोहित होने से उसको पुनर्बार प्रकाशित करने के निमित्त श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु आविर्भूत हुये हैं, उनके श्रीचरणारविन्द में मेरा चित्तभृङ्ग निविड़ रूप से आसक्त हो ॥१८॥

इस प्रकार कथनरत सार्वभौम के हस्त को प्रीति पूर्वक अति सत्वर स्नेह भाव से धारण कर निज हृदय में स्थापन किये थे, एवं विशाल भुजयुगल के द्वारा भक्तवश्य श्रीपति प्रभु—सार्वभौम को आलिङ्गन किये थे ॥१९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे सार्वभौमानुग्रहो नाम द्वादशः सर्गः ॥

त्रयोदशः सर्गः

एवं कतिपयं कालं क्रीड़ित्वा सह वैष्णवैः ।
श्रीकाशीनाथमिश्रेण वैष्णवाग्रयेण धीमता ॥१॥
संमन्त्र्य भगवान् कृष्णस्तीर्थानां पावनेच्छया ।
पुण्यान्यक्षेत्रगमने मतिं चक्रे महाद्युतिः ॥२॥
ततो नत्वा जगन्नाथं दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम् ।
नत्वा तं भक्तिभावेन नेत्रधारापरिप्लुतः ॥३॥
उवाच मधुरां वाणीं सगद्गदगिरा हरिः ।
कृताञ्जलिपुटः प्रेमपरिपूर्ण सुविग्रहः ॥४॥
देव त्वत्क्षेत्रवासे मे नाधिकारो यतोऽभवत् ।
ततोऽन्यक्षेत्रगमने मतिर्म्मे जायते प्रभो ॥५॥
वक्तुं राकापतिप्रख्यं शरत्पङ्कजलोचनम् ।
दीर्घविम्वौष्ठरदनच्छदं साधु सुवक्षसम् ॥६॥

इस प्रकार कतिपय दिन वैष्णववृन्द के सहित अवस्थान पूर्वक श्रीप्रभु–अतिवाहित किये थे। अनन्तर वैष्णवश्रेष्ठ बुद्धिमान् श्रीकाशी मिश्र के आमन्त्रण से भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यदेव तीर्थ को पवित्र करने के निमित पुण्यक्षेत्र गमन हेतु निश्चय किये थे ॥१-२॥

अनन्तर पुण्यक्षेत्र पुरुषोत्तम में श्रीजगन्नाथदेव दर्शन कर एवं उनको प्रणाम कर भक्ति भाव से आप्लुतान्तःकरण हुये थे ॥३॥

गौरहरि—नयनाश्रु धारा से परिप्लुत होकर गद्गद स्वर से मधुर वाणी कृताञ्जलि होकर कहे थे ॥४॥

हे देव ! आपके क्षेत्र में निवास करने की योग्यता मेरी नहीं है, अतः मेरी मति अन्य क्षेत्र गमन में हुई है ॥५॥

राकापति सदृश वदन, शरत् पङ्कज लोचन, दीर्घ विम्वौष्ठ दशनच्छद एवं उत्तम विस्तृत वक्षःस्थल को देखकर हे हरे ! किसका

दृष्ट्वा कस्य मनो याति क्षेत्रान्तरगतौ हरे ।
तस्मान्नास्त्यत्र मे देव स्थितौ ते तादृशी कृपा ॥७॥
क्षेत्रान्यन्यानि गच्छामि तव द्रष्टुं जनार्दन ।
तथा मां कुरु मे देव यथा तीर्थमहं व्रजे ॥८॥
यावत् स्याच्चञ्चलं चित्तं न स्याद्यावत् सुनिर्मलम् ।
तावत्तीर्थानि पुण्यानि विचरेत् सर्वतः पुमान् ॥९॥
ततः सुनिर्मले चित्ते स्थिरधीः पुरुषोत्तमे ।
निवासं कुरुते नित्यं पथिकः स्वाश्रये यथा ॥१०॥
एवं वदति चैतन्ये ग्रीवायाश्चानुलम्बितम् ।
माल्यं पपात कृष्णस्य पादसिंहासनोपरि ॥११॥
प्रतिहारी तदादाय जगन्नाथाज्ञया मुदा ।
ददौ प्रसादरूपं तन्माल्यं चैतन्यमूर्द्धनि ॥१२॥

मन क्षेत्रान्तर गमन में उत्सुक होगा ? तज्जन्य हे देव ! मेरे प्रति उस प्रकार कृपा आपकी नहीं है, जिससे मैं यहाँ पर रह सकूँ ॥६-७॥

अतएव हे जनार्दन ! आपके तीर्थ समूह सन्दर्शन हेतु मैं गमन करूँगा। आप कृपा करें, मैं तीर्थ भ्रमण करने में सक्षम हूँ ॥८॥

जब तक चञ्चल चित्त निर्मल नहीं होता है, तब तक मानव, तीर्थ पर्यटन करे ॥९॥

चित्त सुनिर्मल होने पर स्थिरधी पुरुष—श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में निवास करे, जिस प्रकार निजाश्रम में पथिक नित्य निवास करता है ॥१०॥

श्रीचैतन्यचन्द्र इस प्रकार कह ही हहे थे कि—श्रीजगन्नाथदेव के ग्रीवास्थित लम्बित माल्य पादपीठ में निपतित हुआ ॥११॥

प्रतिहारी—आनन्द से श्रीजगन्नाथदेव की आज्ञा से प्रसादी माल्य ले आकर श्रीचैतन्यदेव के मस्तक को भूषित किया ॥१२॥

ततः सोऽपि महातेजाः प्रफुल्लवदनो हरिः ।
स्वप्रेमनामसंपूर्णो गच्छद्द्विरदविक्रमः ॥१३॥
एवं लोकानुशिक्षार्थं भूत्वा प्रेमार्द्रलोचनः ।
काशीमिश्राश्रमं गत्वा तं प्राह श्रीशचीसुतः ॥१४॥
भवन्तु एव पश्यन्तु पुरुषोत्तममीश्वरम् ।
अहं तीर्थाटने यामि जगन्नाथेन वञ्चितः ॥१५
तत् श्रुत्वा व्यथितो भूत्वा काशीनाथः प्रभोः पदे ।
पपात दण्डवत्तस्मिन् क्षितौ स प्ररुरोद च ॥१६॥
कथं नाभूत् पुत्रशोको महारुग्नोऽभवन्न किम् ।
चैतन्यचरणाम्भोजविश्लेषोऽयं कथं मम ॥१७॥
एवं स विलुठन् भूमौ शोकपूर्णा मुहुर्मुहुः ।
सान्त्वितः करुणार्द्रेण पुनरागमनादिना ॥१८॥

द्विरद विक्रम महातेजा प्रफुल्ल वदन श्रीगौरहरि—निज नाम सङ्कीर्त्तन में विभोर होकर गमन किये थे ॥१३॥

इस प्रकार लोक शिक्षार्थ, प्रेमाश्रु लोचन श्रीशचीसुत गौरहरि काशीमिश्र के आश्रम में जाकर उनको कहे थे ॥१४॥

आप सब श्रीपुरुषोत्तम भगवान् का दर्शन करें, मैं श्रीजगन्नाथ देव का कृपापात्र नहीं हूँ, मैं तीर्थाटन करने के निमित्त जाऊँगा ॥१५॥

यह सुन कर काशीनाथ दुःखित हुये थे, एवं श्रीप्रभुचरणों में दण्डवत् पतित होकर रोदन करने लगे ॥१६॥

मेरा पुत्रशोक क्यों नहीं हुआ, मेरा शरीर महारोगग्रस्त क्यों नहीं हुआ, मेरा श्रीचैतन्यचरणाम्भोज का विश्लेष दुःख क्यों हुआ ? ॥१७॥

इस प्रकार विलाप कर काशीमिश्र शोक से भूतल में लोट लगाने लगे, उस समय श्रीप्रभु—उनको सान्त्वना प्रदान हेतु करुणार्द्र चित होकर प्रत्यावर्त्तन किये थे ॥१८॥

ततः श्रीसार्वभौमस्य गृहं गत्वा जगद्गुरुः ।
आज्ञां ययाचे भगवान् तीर्थानां गमनेच्छया ॥१९॥
श्रुत्वा सरोदनं प्राह धृत्वा कृष्णपदाम्बुजम् ।
कथं नाभूद्वज्रपातः शिरसि मे महाभुज ॥२०॥
त्वत्पादरहितं प्राणं कथं धास्याम्यहं प्रभो ।
मां गृहीत्वा यत्र कुत्र गमनं कर्त्तुमर्हसि ॥२१॥
एवं श्रुत्वा प्रहस्यासौ धृत्वा तस्य करद्वयम् ।
आगमिष्याम्यदीर्घेण कालेनेत्याह केशवः ॥२२॥
वदन्तं तं समालिङ्ग्य करुणापूर्णविग्रहः ।
सान्त्वयामास स्वप्रेम्ना नामानुनयकोविदः ॥२३॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे सार्वभौमसान्त्वनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥

अनन्तर जगद्गुरु श्रीगौरहरि–श्रीसार्वभौम के भवन में जाकर उनसे तीर्थ भ्रमण के निमित्त अनुमति प्रार्थना किये थे ॥१९॥

विवरण सुनकर सार्वभौम—श्रीप्रभु चरण कमल को धारण कर रोदन करते हुये कहे थे—हे महाभुज ! मेरे मस्तक में वज्रपात क्यों नहीं हुआ ? ॥२०॥

हे प्रभो ! आपके श्रीचरण कमल दर्शन से वञ्चित होकर मैं कैसे प्राण धारण करूँगा ? मुझको साथ लेकर ही प्रभु जहाँ जाना चाहे जा सकते हैं ॥२१॥

यह सुनकर श्रीप्रभु हँसकर उनके करद्वय धारण कर कहे थे–मैं अति सत्वर ही लौट कर आऊँगा ॥२२॥

सार्वभौम विविध विनति श्रीप्रभु चरणों में कर ही रहे थे। उस समय करुणापूर्ण विग्रह अनुनय कोविद प्रभु उनको प्रीति के द्वारा सान्त्वना प्रदान किये थे ॥२३॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे सार्वभौमसान्त्वनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥

चतुर्दशः सर्गः

ततो जगाम भगवान् लोकानुग्रहकाम्यया ।
कूर्मक्षेत्रे जगन्नाथं ददर्श कूर्मरूपिणम् ॥१॥
कूर्मनामा द्विजः कश्चित्तद्दर्शनमहोत्सवः ।
आतिथ्यं विदधे हर्षान्मानयन् सफलं दिनम् ॥२॥
वासुदेवो द्विजश्रेष्ठो दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम् ।
दद्दर्शनसमुल्लासैः कृष्णं ज्ञात्वा ननर्त्त च ॥३॥
तं कुष्ठरोगिणं विप्रं महाभागवतोत्तमम् ।
आलिङ्ग्य भगवांश्चक्रे स्वर्णकान्तिसमप्रभम् ॥४॥
तौ दृष्ट्वा प्रेमसम्पुर्णौ सभक्तौ प्राह श्रीपतिः ।
मदाज्ञया कृष्णभक्तिं लोकान् ग्राहयतां सुखम् ॥५॥
एवमुक्त्वा गौरचन्द्रस्तथैवान्तर्द्दधे हरिः ।
विस्मापयन् सर्वलोकान् कृष्णकृष्णेति कीर्त्तयन् ॥६॥

लोकानुग्रह परायण श्रीगौरहरि—कूर्मक्षेत्र गमन किये थे, एवं तत्रत्य कूर्मरूपी जगन्नाथ का दर्शन किये थे ॥१॥

वहाँपर कूर्मनामक एक विप्र-प्रभु को देखकर अतीव आनन्दित होकर श्रीप्रभु को निमन्त्रण प्रदान कर निज जीवन एवं दिन को सफल माने थे ॥२॥

द्विजश्रेष्ठ वासुदेव-श्रीपुरुषोत्तम गौरहरि को देखकर दर्शन उल्लास से श्रीकृष्ण जान कर नृत्य किये थे ॥३॥

कुष्ठ रोगी महाभागवतोत्तम विप्र को प्रभु ने आलिङ्गन कर सुवर्ण के समान कान्ति विशिष्ट किये थे ॥४॥

उभय को प्रेम सम्पत्ति सम्पन्न देखकर प्रभु ने कहा—मेरी आज्ञा से समस्त मानव को श्रीकृष्णभक्ति परायण करो ॥५॥

इस प्रकार कहकर श्रीगौरहरि वहाँपर अन्तर्धान हो गये, उससे

कियद्दूरं समागत्य जियड़ाख्यं नृसिंहकम् ।
ददर्श परमप्रीतः प्रेमाश्रुपुलकाञ्चितः ॥७॥
तस्य स्वभक्ताधीनत्वकथां प्राह पुरतनीम् ।
स एव जगतां नाथं स्वयं भक्तजनप्रियः ॥८॥
अत्रैवासीत् पुरा केश्चित् पुण्डयेति समाख्यया ।
कृषीबलो हि विख्यातो मायाम्बुफलमर्जयेत ॥९॥
वराहरूपिणा खण्डं विखण्डं कृतिना समम् ।
युयोध बलवान् गोपः कृतपुण्यो मुरारिणा ॥१०॥
वाणविद्धेन तेनापि रामरामेति कीर्त्तनात् ।
ज्ञातोऽसावीश्वर इति चोपवासादिमाचरत् ॥११॥

समस्त लोक विस्मित हो गये थे। अनन्तर श्रीप्रभु—"कृष्ण-कृष्ण" कीर्त्तन करते हुये कियद्दूर में स्थित जियड़ नृसिंह क्षेत्र में उपस्थित हुये थे। वहाँपर जियड़ नृसिंह को देखकर अतीव आनन्दित होकर प्रेमाश्रु पुलक से सुशोभित हुये थे ॥६-७॥

श्रीजियड़ नृसिंह की पुरातनी वार्त्ता का कथन आपने किया, जिसमें भक्त जनप्रियता का प्रकाश हुआ ॥८॥

प्राचीनकाल में पुण्डया नामक एक कृषक वहाँपर रहता था, उसकी मायाम्बुफल की खेति रही ॥९॥

प्रभुवराह—रूप धारण कर उसके खेत को खण्ड विखण्ड करते थे, बलवान् पुण्यात्मा गोप ने वराह के सहित द्वन्द्व युद्ध किया ॥१०॥

अनन्तर गोप ने वाण के द्वारा वराह के अङ्ग में आघात किया, उस से वह वराह "राम-राम" कीर्त्तन करके अन्तर्द्धान हो गया, उससे गोप ने बराह को ईश्वर जानकर अपराध क्षमापणार्थ उपवास प्रारम्भ किया ॥११॥

दयालुर्भगवानाहुर्दुग्धसेकेन सर्वथा ।
दर्शनं मे प्राप्स्यसि त्वं राज्ञा सह तथा वचः ॥१२॥
श्रुत्वा भगवतो वाक्यं गोपः प्रेमपरिप्लुतः ।
आज्ञामावेदयत् सोऽपि तदाज्ञां च तथाऽकरोत् ॥१३॥
सार्वभौमभट्टाचार्यः स उद्विग्नो ह्यचेतनः ।
एवं भक्तास्तदैवासन् सर्वं उद्विग्नमानसाः ॥१४॥
ततः श्रीकृष्णचैतन्यश्चलितो दक्षिणां दिशम् ।
आलालनाथमागत्य प्रेमाद्द्हमधैर्यतः ॥१५॥
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति उवाचोच्चैर्मुहुर्मुहुः ।
क्षणं विलुठते भूमौ क्षणं मूर्च्छति जल्पति ॥१६॥
क्षणं गायति गोविन्द-कृष्ण-रामेति नामभिः ।

दयालु भगवान्–उससे सन्तुष्ट होकर कहे थे—दुग्ध सेक करनें से मेरा दर्शन पुनर्बार होगा, कृषक ने राजा को कहा था ॥१२॥

श्रीभगवान् की आज्ञा को सुनकर प्रेमपरिप्लुत होकर राजा को भगवदादेश निवेदन किया, राजा ने भी आदेशानुसार कार्य्य करके गोप के सहित श्रीप्रभु का दर्शन किया था ॥१३॥

श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में भक्तवृन्द के सहित सार्वभौम– श्रीप्रभु के अदर्शन से अत्यन्त उद्विग्न चित्त होकर अचेतन प्राय थे, भक्तवृन्द भी उस समय अत्यन्त उद्विग्न चित्त से समय यापन करते थे ॥१४॥

अनन्तर श्रीचैतन्यदेव—दक्षिण दिक् में प्रस्थान किये थे, एवं आलालनाथ में आकर प्रेम से अधैर्य्य प्राप्त किये थे ॥१५॥

उच्चैःस्वर से निरन्तर "कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण" पुनः-पुनः कहते रहते थे, एवं भूतल में लोट लगाते थे, मूर्च्छा प्राप्त करते थे, एवं विविध प्रकार दैन्यालाप करते थे ॥१६॥

महाप्रेमप्लुतं गात्रमालालनाथदर्शने ॥१७॥
कश्चित् पथि जनं दृष्टमालिङ्गत् शक्तिसञ्चरैः ।
स तत्र प्रेमविवशो नृत्यन् गायन्मुदैव च ॥१८॥
निजगेहं जगाम स प्रेमधाराशतप्लुतः ।
अन्यग्रामजनान् दृष्ट्वा प्रेमालिङ्गमकारयत् ॥१९॥
तेन पुनः प्रेमविश्रान्तं गायन्ति च रमन्ति च ।
एवं परस्परा येषु तान् सर्वान् समकारयत् ॥२०॥
आलालनाथक्षेत्रे स रात्रैकं संन्यवासयत् ।
ततः परदिवोत्थाय प्रातःकार्यं समापयत् ॥२१॥
प्रचलन् दक्षिणदेशमुवाच इति नृत्यति ॥२२॥

क्षणकाल में श्रीकृष्ण नाम-गान करते थे, "गोविन्द कृष्ण" — राम-नाम गान कर विभोर होते थे। इस प्रकार आलालनाथ दर्शन कर आप महाप्रेमप्लुत हुये थे ॥१७॥

पथ में एक व्यक्ति को देखकर प्रेमपरिप्लुतान्तः करण से उसको आलिङ्गन किये थे। उससे वह व्यक्ति प्रेम विभोर होकर श्रीकृष्ण सङ्कीर्त्तन के सहित आनन्द चित्त से नृत्य करने लगा ॥१८॥

वह व्यक्ति—प्रेमधाराशतप्लुत होकर निज ग्राम में उपस्थित हुआ, एवं अन्य ग्रामजनों कों देखकर आलिङ्गन किया, उससे वे सब प्रेमपूर्ण हो गये थे ॥१९॥

ग्रामीण जनगण—उस प्रकार कृष्ण विभोर होकर श्रीकृष्ण कीर्त्तन परायण हो गये थे। परम्परा क्रम से समस्त लोकों में इस प्रकार श्रीकृष्ण प्रेम प्रवाह प्रसारित हुआ ॥२०॥

एक रात्रि, आलालनाथ में प्रभु निवास किये थे। परदिन उठ कर प्रातः कार्य समापन किये थे ॥२१॥

अनन्तर इस प्रकार कहते हुये दक्षिण दिक् के ओर चले गये थे ॥२२॥

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे ।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे ॥२३॥
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्ष माम् ।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहि माम् ॥२४॥

इति पठति स मन्त्रं प्रेमविप्लाविताश्रु-
र्लुठति धरणीमध्ये धावति च प्रकम्पैः ।
इह हरिरिति वाक्यैर्बाष्परुद्धावकण्ठो
रुदति तरुलतायां प्रेमदृष्टिं करोति सः ॥२५॥

आगते कूर्मक्षेत्रे च कूर्मरूपी जनार्द्दनः ।
कूर्मनामा च विप्रेन्द्रो गतो सत्कृतिर्मणि ॥२६॥
भोजयत् श्रद्धया स्वन्नं प्रसादं कूर्म ईश्वरम् ॥२७॥
दुग्धसेचनमात्रेण भगवान् स्वमदर्शयत् ।
श्रीविग्रहं सज्जनश्च निवारणं यथाकरोत् ॥२८॥

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे ।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे ॥२३॥
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्ष माम् ।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहिमाम् ॥२४॥

इस प्रकार मन्त्रपाठ कर प्रेमाश्रु परिपूरित होकर धरणी में लुठन् करते थे । क्षणकाल में उत्थित होकर धावित होते थे, कम्पित होते थे, यहाँ श्रीहरि हैं, यह कहकर वाष्प रुद्रकण्ठ होते थे, रोदन करते थे, एवं तरुलता के प्रति प्रेमपूर्ण दृष्टि निक्षेप करते थे ॥२५॥

कूर्मक्षेत्र में पुनरागमन होने पर जनार्दन कूर्म नामक विप्ररूप धारण कर श्रीप्रभु का स्वागत सत्कार किये थे ॥२७॥

कूर्मविप्र ने श्रीप्रभु को उत्तम प्रसादान्न प्रदान किये थे, दुग्धसेचन मात्र से ही भगवान् ने निजरूप सन्दर्शन कराया। इसका प्रचार आपने किया, एवं श्रीविग्रह एवं सज्जनों का समधान भी किया ॥२७-२८॥

कियत्कालावसानेन वार्त्तावित्तश्च कश्चन ।
आगतो दर्शनार्थी स भार्यया समनुव्रतः ॥२९॥
दर्शनानन्दमत्तः श्रीमन्दिरं तं प्रविष्टवान् ।
प्राप्ते श्रीचरणाम्भोजे दृष्ट्वा हर्षमुपागतः ॥३०॥
भगवानाह तं साधुमभीप्सितवरं वृणु ।
जियड़ेति हि मे नाम गृहाण जगदीश्वर ॥३१॥
ओमित्याह जगद्योनिस्तेन च ख्यापितोऽभवत् ।
श्रीजियड़नृसिंहश्च भक्तवश्यो हरिः सदा ॥३२॥
एतदाख्यन् हरिः साक्षात् श्रीगौराङ्गो महाप्रभुः ।
अन्तर्द्दधे हि तत्रैव केन दृष्टः किल स्वयम् ॥३३॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे श्रीजियड़
नृसिंह प्रसङ्गो नाम चतुर्दशः सर्गः ॥

कतिपय काल व्यतीत होने पर वार्त्ताजीवी एक कथक निज भार्या के सहित श्रीप्रभु का दर्शनार्थी होकर वहाँपर उपस्थित हुये थे, दर्शनानन्द मत्त होकर मन्दिर में प्रवेश कर श्रीप्रभु का दर्शन लाभ किये थे, श्रीचरणारविन्द को देखकर विप्र आनन्दित हुये थे ॥२९-३०॥

अनन्तर भगवान् बोले थे—"अभीप्सित वर मागो" विप्र ने बोला—हे जगदीश्वर ! मेरा नाम जीयड़ है, आप उस नाम से विख्यात हों ॥३१॥

प्रभु ने ऊँ कहकर स्वीकार किया, उस समय से प्रभु जीयढ़ नृसिंह नाम से विख्यात हुये । एवं श्रीहरि—भक्त वश्यता को प्रकट सदा किये थे ॥३२॥

साक्षात् श्रीगौराङ्ग महाप्रभु—इस प्रकार कहकर लोकों के देखते-देखते स्वयं अन्तर्द्धान हो गये ॥३३॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीयप्रक्रमे श्रीजियड़
नृसिंह प्रसङ्गो नाम चतुर्दशः सर्गः ॥

पञ्चदशः सर्गः

***

ततः प्रभाते विमले शुभे प्रभु-र्गायन् हरिं प्रेमविभिन्नधैर्य्यः।
ययौ स काञ्चीनगरं जगद्गुरुर्द्रष्टुं श्रीरामानन्दाख्यरायम्।१।
स स्वगृहे कृष्णपूजावसाने ध्यायन् परं ब्रह्म व्रजेन्द्रनन्दनम्।
ददर्श वारत्रयमद्भुतं महद्गौराङ्गमाधुर्य्यमतीव विस्मितः।२

उन्मील्य नेत्रे च तदेव रूपं
दृष्ट्वा परं ब्रह्म सन्न्यासवेशम्।
प्रणम्य मूर्द्ध्ना विहितः कृताञ्जलिः
पप्रच्छ कुत्रत्य भवानिति प्रभो॥३॥

हसन् प्रभुःप्राह कथं न स्मर्य्यते
श्रीराधिकापादसरोजषट्पद।
स्वात्मानमेवं कथयन् स्वयं हरिः
स्वबाहुयुग्मेन तमालिलिङ्ग॥४॥

अनन्तर प्रभात काल में शुभ समय उपस्थित होने पर श्रीप्रभु श्रीहरि कीर्त्तन करते हुये विभिन्न धैर्य्य हुये थे, पश्चात् काञ्ची नगर में स्थित रामानन्द राय को सन्दर्शन करने के निमित्त जगद्गुरु श्रीगौर हरि गमन किये थे।।१।।

रामानन्द राय,—निजगृह में श्रीकृष्ण पूजन के समय ब्रजेन्द्रनन्दन ध्यान कर रहे थे, किन्तु तीन बार उस प्रकार ध्यान करने पर भी अत्यद्भुत श्रीगौराङ्ग माधुरी को देखकर अतीव विस्मित हुये थे।२।

नेत्र उन्मिलित कर आपने ध्यान कालीन रूप को देखा, परं ब्रह्म सन्न्यास वेश को देखकर कृताञ्जति पूर्वक मस्तक अवनत कर प्रणाम किया, एवं पूछा, प्रभो ! आप का आगमन कहाँ से हुआ ? ।३

हंसकर प्रभु ने कहा, श्रीराधिका पादसरोजषट् पद ! क्यों नहीं स्मरण करते हैं ? अपना परिचय उस प्रकार से देते हुये श्रीगौर

वृन्दाटवीकेलिरहस्यमद्भुतं
प्रकाश्य तस्मिन् रसिकेन्द्रमौलिः।
आज्ञाप्य क्षेत्रगमनाय सत्वरं
तं सान्त्वयित्वा स ययौ जनार्द्दनः ॥५॥

श्रीराम गोविन्द कृष्णेति गाय
न्नुत्तीर्य्य गोदावरीमेव कृष्णः।
विवेश श्रीपञ्चवटीवनं महत्
श्रीरामसीतास्वननातिविह्वलः ॥६॥

ततः परं श्रीजगदीश्वरः प्रभु–
श्चलन् पृथिव्यां ककुभः प्रकाशयन्।
कावेरीमुत्तीर्य्य श्रीरङ्गनाथं
दृष्ट्वातिहृष्टो हि ननर्त्त सादरम् ॥७॥

श्रीरङ्गनाथस्य समीपं विप्रो
गीतां पठन् शुद्धविचारशून्यम्।

हरि ने उनको निजबाहु युगल के द्वारा दृढ़तर आलिङ्गन किया ॥४॥

रसिकेन्द्र मौलि, श्रीकृष्ण, उस समय वृन्दाटवी अद्‌भुत केलि रहस्य को प्रकाश कर रामानन्द राय को सत्वर श्रीक्षेत्र गमन हेतु निर्देश किये थे एवं सान्त्वना प्रदान पूर्वक वहाँ चले गये थे।५।

प्रभु, श्रीराम, गोविन्द, कृष्ण नाम गान करते करते गोदावरी पार होकर श्रीपञ्चवटी महद् वन में प्रविष्ट हुये थे। एवं श्रीराम सीता का स्मरण कर अति विह्वल हुये थे ॥६॥

अनन्तर प्रभु, समस्त दिकों को उद्‌भासित करते हुये, पद व्रज से गमन करने लगे, एवं कावेरी पार होकर श्रीरङ्गम में श्रीरङ्गनाथ सन्दर्शन कर अतिशय हृष्ट हुये थे ॥७॥

श्रीरङ्गनाथ के समीप में एकविप्र गीता पाठ कर रहे थे।

प्रेमाश्रुपूर्णं स निरीक्ष्य कृष्ण
आलिङ्ग्य प्राह श्रुतमेव योग्यम् ॥८॥
तत्रैव कश्चिद्द्विजवर्य्यसत्तमो
दृष्ट्वा प्रभुं गौरसुदीर्घविग्रहम् ।
प्रेमाश्रुपूर्णं स जगाद बन्धुं
श्रीकृष्णवर्णं मनसा विचारयन् ॥९॥
अहो स्वभाग्यं मनसा विमृष्य
त्रिमल्लनाम्ना किल भट्टराजः ।
तस्य प्रभोः श्रीचरणं कराभ्यां
धृत्वा प्रहृष्टः करुणां न्यवेदयत् ॥१०॥
अहो महात्मन् करुणेन नः प्रभो
कृपां विधातुं सततं त्वमर्हसि ।
तत्रैव मायाधमनावतारे
कृपामृतेनापि जगत् सिषेच ॥११॥

किन्तु भाषा बोध एवं वर्णबोध उनका नहीं था, तथापि अश्रु परिपूरित नेत्र होकर आप गीता पाठ में रत थे, प्रभुने, उस प्रकार विप्रकी अवस्था को देखकर आलिङ्गन कर कहा, आप का गीताध्ययन ही यथार्थ है ॥८॥

वहाँपर ही एक द्विजवर्य्य सत्तम, सुदीर्घ बाहु श्रीगौराङ्ग सुन्दर को प्रेमाश्रु से परिपूर्ण देखकर मन ही मन श्रीप्रभु को श्रीकृष्ण निश्चय कर निजबन्धु को कहे थे ॥९॥

त्रिमल्ल नामक भट्टराज, निज अहो भाग्य समझकर निज कर कमल युगल के द्वारा श्रीगौरहरि के चरण युगल धारण कर आनन्द से श्रीप्रभु की निवेदन किये थे ॥१०॥

अहो महात्मन् ! हे प्रभो ! आप करुण हैं, निज गुण से सतत

सर्व्वं जनं स्थावरजङ्गमादी-
न्नुद्धर्त्तुमन्यो न विनापि कृष्णम् ।
प्रावृड़्तुरागत एव नाथ
भृत्यस्य मे त्वं हितशोभनं कुरु ॥१२॥
एवं स भक्तस्य मधुरां सुवाणीं
श्रुत्वा तमालिङ्ग्य विवेश तद्गृहम् ।
द्विजोऽपि तत्पादसरोरुहं सुधीः
प्रक्षाल्य प्रेम्ना सगणो दधार ॥१३॥
सुखासीनं जगन्नाथं त्रिमल्लाख्यो द्विजोत्तमः ।
स्त्रीपुत्रस्वजनैः सार्द्धं सिषेव प्रेमनिर्भरः ॥१४॥
गोपालनामा बालोऽस्य प्रभोः पार्श्वे स्थितस्तदा ।
तं दृष्ट्वा तस्य शिरसि पादपद्मं दयार्द्रधीः ॥१५॥

कृपा आप करते रहते हैं उस में भी मायाधमनावतार स्वरूप आप हैं, जगत् को कृपामृत से सिञ्चन आप करें ॥११॥

कृष्ण विना कोई भी व्यक्ति स्थावर जङ्गमापि सब को उद्धार करने में सक्षम नहीं हैं। अतएव हे नाथ ! वर्षाऋतु समागत है, मैं आप का भृत्य हूँ, आप भृत्य का मङ्गल विधान करें ॥१२॥

इस प्रकार भक्त की सुमधुर वाणी को सुनकर भक्त को आलिङ्गन प्रदान कर प्रभु उनके भवनमें प्रविष्ट हुये थे। सुधी भक्तने भी श्रीप्रभु के चरण युगल को प्रक्षालन पूर्वक प्रेम्ना सपरिकर श्रीचरणोदक पान किये थे ॥१३॥

जगन्नाथ गौरहरि सुख पूर्वक उपवेशन करने पर त्रिमल्लाख्य द्विजोत्तम, प्रेम पूरितान्तः करण होकर स्त्री पुत्र परिजन वृन्दके सहित श्रीप्रभु पादपद्म की सेवा किये थे ॥१४॥

त्रिमल्लभट्ट के गोपाल नामक बालक श्रीप्रभु के समीप में उस समय अवस्थित रहा, बालक को देखकर दयार्द्रधी प्रभु, बालक के मस्तकमें

दत्त्वा वद हरिं चेति सोऽपि हर्षसमन्वितः ।
बाल्यक्रीड़ां परित्यज्य कृष्णं गायन् ननर्त्त च ॥१६॥
एवं हि प्रावृट्समयं स्थितो हरिः
श्रीकृष्णसङ्कीर्त्तनभावभावुकः
श्रीरङ्गक्षेत्रस्थद्विजैः सुपूजितो
भिक्षानुपासादिभिरच्युतः सुखम् ॥१७॥
मेरुसुन्दरतनुरसिकेशः कृष्णनामगुणकीर्त्तनमत्तः ।
राधिकारसविनोदगद्गदप्रेमवारिपरिपूरितदेहः ॥१८॥
उषित्वैवं रङ्गक्षेत्राद्गच्छन् पथि ददर्श सः ।
श्रीमाधवपुरीशिष्यं परमानन्दनामकम् ॥१९॥
पश्यन् श्रीपरमानन्दपुरी गौराङ्गविग्रहम् ।

स्वीय चरण स्थापन किये थे ॥१५॥

मस्तक में श्रीचरण स्पर्श कराकर प्रभुने कहा, श्रीहरि कहो,' बालक भी हर्षित होकर बाल्य क्रीड़ा परित्याग पूर्वक श्रीकृष्ण कीर्त्तन करते हुये गान एवं नृत्य परायण हुआ ॥१६॥

इस प्रकार वर्षाकाल त्रिमल्लभट्ट के गृह में प्रभु अवस्थित हुये थे। एवं श्रीकृष्ण सङ्कीर्त्तन के द्वारा समय अति वाहित किये थे। श्रीरङ्ग क्षेत्र वासि द्विजवृन्द श्रीप्रभु की सेवा यथोचित रूप में किये थे। प्रभु उन सब के आदर प्रभृति से अति सुखानुभव किये थे ॥१७॥

मेरु के सदृश सुन्दर तनु रसिकेन्द्र श्रीगौरहरि, श्रीकृष्ण नाम सङ्कीर्त्तन में विभोर हुये थे, एवं श्रीराधिका भाव से विभोर होकर प्रेमवारि परि पूरित देह हो गये थे ॥१८॥

श्रीप्रभु, श्रीरङ्ग क्षेत्र में निवास करने के पश्चात् अन्यत्र गमन करते समय पथ में परमानन्द नामक श्रीमाधवेन्द्रपुरी के शिष्य को देखे थे ॥१९॥

श्रीपरमानन्द पुरी, श्रीगौराङ्ग विग्रह को देखकर श्रीगुरु

गुरुवाक्यमनुस्मृत्य प्रेमाश्रुपुलकाञ्चितः ॥२०॥
ईश्वरोऽपि पुरीपादं सभृत्यं धर्म्मपालकः ।
ननाम परमप्रीतो दण्डवत् शिरसा भुवि ॥२१॥
ससाध्वसं पुरी प्राह मैवं कर्त्तुमिहार्हसि ।
त्वमेव जगतां नाथो जगच्चैतन्यकारकः ॥२२॥
ज्ञातोऽसि भगवान् साक्षात् श्रीकृष्णभक्तरूपधृक् ।
श्रीराधाभावमापन्नो माधुर्य्यरसलम्पटः ॥२३॥
श्रुत्वा तद्वचनं कृष्णः प्रहसन् प्राह सादरम् ।
प्रेम्ना ते बद्धहृदयं मां जानीहि न संशयः ॥२४॥
गच्छ क्षेत्रं महारम्यं यावच्चाहं समाव्रजे ।
तावदेव भवान् तिष्ठत्वेवमुक्त्वा ययौ हरिः ॥२५॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते तृतीयप्रक्रमे श्रीपरमानन्दपुरी-
सङ्गोत्सवो नाम पञ्चदशः सर्गः ।

वाक्य का अनुस्मरण कर प्रेमाश्रु पुलकाञ्चित हुये थे ॥२०॥

धर्म पालक श्रीचैतन्यदेव, ईश्वर होकर भी सभृत्य पुरी पाद को भूतल में दण्डवत् निपतित होकर शिरसा प्रणाम किये थे ॥२१॥

व्यग्र होकर पुरीपाद ने कहा,—ऐसा न करे, तुम ही जगन्नाथ हो। एवं जगच्चैतन्य कारक हो ॥२२॥

विदित हो, तुम साक्षात् श्रीकृष्ण भक्त रूप धारी माधुर्य्य रस लम्पट श्रीराधाभाव विभावित हो ॥२३॥

उनके वचन को सुनकर श्रीगौर कृष्ण प्रभु ईषत् हंसकर आदर पूर्वक कह थे, आपके प्रेम से मैं बद्ध हूँ, इस प्रकार ही मुझ को आप जाने, इस में संशय नहीं है ॥२४॥

मैं जब तक तीर्थ भ्रमण कर प्रत्यावर्त्तन नहीं करता हूँ, तब तक आप मनोरम श्रीक्षेत्र में श्रीहरि के सन्निधान में निवास करें, इस

षोड़शः सर्गः

***

एवं व्रजन् विप्र पथि प्रवीणान् तमालवृक्षान् जगदेकबन्धुः ।
दृष्ट्वा सहन् धारणमेव कृत्वा संस्पर्शनेनापि समुद्दधार ।१।

तदेव ते सप्तगन्धर्व्वरूपा–
स्तद्दर्शनानन्दसमुद्रमग्नाः ।
हित्वा स्वपापं मुनिशापजं प्रभु
नत्वा ययुस्ते निजशासनं शुभम् ।।२।।

ततः परं कृष्णरसाभिमत्तः
साक्षात् परंब्रह्म जपन् शुभाक्षरम् ।
श्रीराम गोविन्द हरे मुरारे
जनार्द्दन श्रीधर वासुदेव ।।३।।

कहकर श्रीगौराङ्ग प्रभु गमन किये थे ।।२५।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते तृतीय प्रक्रमे श्रीपरमानन्द पुरी सङ्गोत्सवो नाम पञ्चदश सर्गः ।।

**

इस प्रकार पथ में गमन करते करते जगदेक बन्धु श्रीगौरहरि एक तमाल वृक्ष समूह को देखकर हसकर धारण किये थे, इस प्रकार हस्त स्पर्श के द्वारा ही उन्होंने तमाल वृक्ष समूह की उद्धार किया ।१

उसी समय वे सब वृक्ष, शापमुक्त होकर गन्धर्व रूप धारण कर आनन्द समूद्र में निमज्जित हो गये, एवं श्रीगौर हरि को प्रणाम कर निज अधिकारोचित स्थान में चले गये, वे सब गन्धर्व थे, मुनि शाप से तमाल बृक्ष हुये थे ।।२।।

अनन्तर प्रभु, साक्षात् परब्रह्म स्वरूप शुभाक्षर श्रीराम, गोविन्द ! हरे ! मुरारे ! जनार्दन ! श्रीधर ! वासुदेव नाम जप करते करते श्रीकृष्ण प्रेमोन्मत्त हुये थे ।।३।।

स्वभक्तरक्षाकर राघवेन्द्र
सीतापते लक्ष्मण प्राणनाथ ।
सुग्रीवहृद्बालिबधातिदुःखित
मरुत् सुतानन्दन रावणारे ॥४॥

इत्यादि नामामृतपानमत्तः श्रीसेतुबन्धं परिव्रज्य सत्वरम् ।
ददर्श रामेश्वरलिङ्गमद्भुतं श्रीशङ्करप्रेष्ठतमः सदा हरिः ।५

नत्वा प्रभुमञ्जलिमेव बद्धा
द्दृष्ट्वा च गौरीरसदं सदाशिवम् ।
ननर्त्त सर्व्वेश्वर एव तत्र
भावेन गां संनमयन् पदे पदे ॥६॥
पश्यन्तु सर्व्वे जगदेकबन्धुं
श्रीगौरचन्द्रं स्वरसाभिमत्तम् ।
बभूवुरत्यन्तसुविस्मया ध्रुवं
तान् वञ्चयित्वा खलु स तिरोऽभवत् ॥७॥

आपने हे, स्वभक्त रक्षाकर ! हे राघवेन्द्र ! हे सीतापते ! हे लक्ष्मण प्राण नाथ ! हे सुग्रीव हृद् ! वालि बधाति दुःखित ! मरुत् सुतानन्द ! हे रावणारे ! इत्यादि नामामृत पान मत्तः होकर श्रीसेतु बन्ध को अतिक्रम कर अद्भुत रामेश्वर का दर्शन किया, कारण, श्रीहरि सर्वदा श्रीशङ्कर प्रेष्ठतम हैं ॥५॥

प्रभु, अञ्जलि बद्ध कर गौरीरसद सदाशिव को दर्शन कर प्रणाम किये थे, एवं सर्वेश्वर प्रभु, भाव पूर्ण होकर सङ्कीर्त्तन, नृत्य, एवं प्रणाम भी किये थे। सर्व लोक श्रीगौर हरि को देखकर अत्यन्त विस्मित हुये थे, कारण, जगदेक बन्धु गौर हरि निजनाम रसास्वादन मत्त थे, जिस समय लोक उनको देख रहे थे, उसी समय प्रभु उन सब को वञ्चित कर अन्तर्हित हो गये थे ॥७॥

सर्व्वाणि तीर्थानि क्रमेण दृष्ट्वा
पुनः परावृत्य कृपाम्बुधिः प्रभुः।
श्रीमज्जगन्नाथदिदृक्षया भृशं
श्रीक्षेत्रराजं गमयाञ्चकार ॥८॥

गोदावरीतीरमनु स्वयं प्रभु–
रागत्य तत्र स्थित एव सद्गतिः।
श्रीरामरायेण पुनः सुपूजितो
बभौ रसज्ञेन द्विजगृहे सुखी ॥९॥

रात्रौ परं तीर्थकथाः प्रजल्पन्
श्रीराधिकाकृष्णरसानुमोदितः।
आज्ञाप्य शीघ्रं च श्रीपद्मलोचनं
द्रष्टुं सदैवाहसि नापरं सुखम् ॥१०॥

एवं निशा सा रसिकेन्द्रमौलिना
श्रीगौरचन्द्रेण रायेण सार्द्धम्।

तीर्थ समूह को क्रमशः देखकर पुनर्वार प्रत्यावर्त्तन कर कृपाम्बुधि प्रभु, श्रीजगन्नाथ देव दर्शन हेतु श्रीक्षेत्रराज में उपस्थित हुये थे ॥८॥

सद्गति प्रभु, पुनर्वार गोदावरी तीरमें आकर अवस्थान किये थे, एवं तत्रत्य रामानन्द रायके द्वारा सूचित होकर सुखी हुये थे । ९॥

निशीथ में तीर्थ कथा का वर्णन करते थे, श्रीराधाकृष्ण की रस कथा का आलापन एवं सार प्रति पादन प्रसङ्ग उत्थापन भी करते थे। अनन्तर श्री पद्म लोचन का दर्शन सत्वर करने में सक्षम होंगे, श्रीपद्मपलाश लोचन के दर्शन व्यतीत अपर सुखकर कार्य्य नही है। इस प्रकार श्रीप्रभु ने कहा ॥१०॥

रसिकेन्द्र मौलि श्रीगौरचन्द्र श्रीराय के सहित कृष्ण कथा प्रसङ्ग से समस्त रात्रि अतिवाहित किये थे। किन्तु वह राग भी क्षण

वीता क्षणप्रायमतीव दर्शनात्
पुनः स्वयं गन्तुमना बभूव ह ॥११॥
श्रीविष्णुदासेन द्विजेन सार्द्ध-
मालालनाथं स जनार्द्दनं प्रभुः ।
दृष्ट्वा प्रणम्य निवसन् कियद्दिन-
मायाति सर्व्वेश्वरनीलकन्दरम् ॥१२॥
श्रीकाशीनाथस्य गृहे स्थितो हरिः
श्रीसार्व्वभौमादिभिरन्वितः स्वयम् ।
श्रीमज्जगन्नाथदिदृक्षया ययौ
प्रक्षाल्य पादौ श्रीरत्नमन्दिरम् ॥१३॥
श्रीगरुड़स्तम्भसमास्थितः श्री-
कृष्णः स्वयं भक्तिरसेन पूर्णः ।
ददर्श सर्व्वेश्वरमीश्वरं परं
ब्रह्म स्वयं साग्रजमेव श्रीपतिः ॥१४॥

काल के समान अनुभूत हुई थी। अनन्तर प्रभु, वहाँ तीर्थान्तर दर्शन हेतु अभिलाषी हुये थे ॥११॥

श्री जनार्दन गौरप्रभु, श्रीविष्णु दास नामक द्विज के सहित आलालनाथ में उपस्थित हुये थे। आलालनाथ को दर्शन कर वहाँपर कतिपय दिन अवस्थान किये थे, पश्चात् नीलाद्रि में उनका आगमन हुआ था ॥१२॥

नीलादि में उपस्थित होकर श्रीप्रभु, काशीमिश्र के भवन में अवस्थान किये थे, एवं श्रीवासुदेव सार्वभौम प्रभृति के सहित श्रीजगन्नाथ दर्शन हेतु पद प्रक्षालन पूर्वक श्रीरत्न मन्दिर में प्रविष्ट हुये थे ॥१३॥

श्रीपति श्रीकृष्ण, भक्तिरस परिपूर्ण होकर गरुड़ स्तम्भ को

पार्श्वद्वये श्यामलगौरसुन्दरौ
पश्यन्ति भक्ताः सुखसिन्धुमग्नाः।
न तृप्तिमापुः कृपणा धनं यथा
संप्राप्य कुत्रापि न वक्तुमोशिरे ॥१५॥

पश्यन् श्रीभक्तवर्गैः सकलरसगुरुगौरप्रेम्नि निमग्नो,
नित्यानन्दाख्यो रामो रसमयवपुषौ श्यामगौराङ्गरूपौ।
हुङ्कारैः सिंहनादैर्जयजयध्वनिभिस्ताण्डवैरप्यभीक्षणम्
सर्व्वेषां प्रेमदाता जयति स गदाधारिणो दर्शपूर्णः ॥१६॥

तदेत्र श्रीकृष्णसमाज्ञया सुधी-
र्म्माल्यं समादाय तुलसीविमिश्रकम्।
श्रीगौरचन्द्राय स भक्तमानिने
सभक्तवर्गाय ददौ महामतिः ॥१७॥

अवलम्बन कर साक्षात् परब्रह्म होकर भी सर्वेश्वर ईश्वर का दर्शन किये थे ॥१४॥

भक्त वृन्द पार्श्वद्वय में श्यामल गौर सुन्दर का दर्शन, आनन्द सिन्धु में निमग्न होकर किये थे, जिस प्रकार कृपण जन धन प्राप्त होकर तृप्त नहीं होते, भक्तवृन्द—उस प्रकार गौर श्याम सुखसिन्धु को दर्शन कर अनिर्वचनीय अतृप्त ही थे ॥१५॥

अखिल रसामृत मूर्त्ति श्रीगौरहरि, गौरप्रेम रसार्णव में भक्त वृन्द को निमज्जित देखकर एवं रसमय वपु, श्याम गौराङ्ग रूप को देखकर श्रीनित्यानन्द राम, हुङ्कार एवं सिंहनाद से मुहुर्मुहुः जय जय ध्वनि के सहित ताण्डव नृत्य करने लगे थे ॥१६॥

उस समय सुधी विप्र, श्रीकृष्ण की आज्ञा से तुलसी युक्त प्रसादी माल्य भक्ताभिमानी गौरचन्द्र को समर्पण किये थे, एवं भक्त वृन्द को वण्टन कर दिये थे ॥१७॥

प्रसादमालां जगदीश्वरस्य
प्रेमाश्रुपूर्णः किल लोकःपावनः ।
सभक्तवर्गः पुलकाकूलावृतो
जग्राह मूर्द्धा प्रणमन् स्वयं हरिः ॥१८॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते तृतीयप्रक्रमे श्रीजगन्नाथ-दर्शनं नाम षोड़शः सर्गः ॥

सप्तदशः सर्गः

एकदा भगवान् कृष्णो भक्तवर्गसमन्वितः ।
प्रोवाच मथुरां यामि भवद्भिरनुमोदितः ॥१॥
उचुस्ते दुःखसन्तप्ता बद्धाञ्जलिमवस्थिताः ।
कथं के त्यक्तुमिच्छन्ति पदं तेऽम्बुरुहेक्षण ॥२॥
यतस्त्वं तत्र तीर्थञ्चाखिलं वृन्दावनं मधु ।

लोक पावन श्रीगौर हरि श्रीजगदीश्वर के प्रसादी माल्य प्राप्त कर प्रेमाश्रु से विभूषित हुये थे, भक्त वर्ग भी पुलकायित होकर प्रसादी माल्य को मस्तकावनत कर प्रणति पूर्वक अङ्गीकार किये थे।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते तृतीय प्रक्रमे
श्रीजगन्नाद दर्शनं नाम षोड़शः सर्गः ॥

**

एकदिन भगवान् श्रीगौर हरि भक्त वृन्द को कहे थे—आप सब का अनुमोदन होने पर मैं मथुरा गमन करूँगा ॥१॥

प्रस्ताव सुनकर भक्तवृन्द, दुःख सन्तप्त होकर बद्धजलि मुद्रा में अवस्थित हो गये, एवं कहे थे हे अम्बुरुहेक्षण ! आप के चरणकमल को परित्याग करने में कौन व्यक्ति सक्षम हैं ॥२॥

कारण, आप के पारपद्मामृत ही अखिल तीर्थ एवं वृन्दावनीय

आसीन्मूर्त्तिधरं पार्श्वे तव सेवापरायणम् ॥३॥
लीलासुखविनोदाय यास्यसि मथुरां प्रभो ।
तथापि तान् समुद्धर्त्तुं त्रातुमर्हसि दुःखितान् ॥४॥
आयास्ये शीघ्रमेवेति तान् सान्त्वय्य दयानिधिः ।
गच्छन् गङ्गादर्शनाय वाचस्पतिगृहं प्रति ॥५॥
नृसिंहानन्दस्तत् श्रुत्वा मनसि परिचिन्तयन् ।
जंघालान् दातुमारब्धः क्षेत्रान्मधुपुरावधि ॥६॥
स्वर्णरौप्यप्रवालाद्यैर्मणिरत्नगणादिभिः ।
सूक्ष्मसूक्ष्मचीनवस्त्रैर्निर्वृन्तैः पुष्पराजिभिः ॥७॥
जलाशयेषु जलजैः पद्मनीलोत्पलादिभिः ।
शोभितं रत्नघट्टैश्च हंसजैर्जलकुक्कुटैः ॥८॥

आनन्दागार है, आपके समीप सेवारत होकर वे सब सर्वदा अवस्थित हैं, तथापि, हे प्रभो ! आप, सेवा सुख विनोदन के निमित्त मथुरा गमनेच्छु हैं, मथुरा निवासियों को विरह दुःख के उद्धार करेंगे ॥३।४॥

भक्त वृन्द के निवेदन को सुनकर उनसब को सान्त्वना प्रदान कर गङ्गा दर्शन मानससे वाचस्पति भवनमें उपस्थित होने के निमित्त प्रभु अभिलाषी हुये थे ॥५॥

श्रीप्रभुके अभिप्राय को जानकर नृसिंहानन्द मनही मन् चिन्ता किये थे—एवं मानसिक भावना के द्वारा श्रीक्षेत्र से आरम्भ कर मथुरा पर्य्यन्त श्रीगौर हरि के पथ को सुसज्जित किये थे ॥६॥

सुवर्ण रौप्य, प्रबाल प्रभृति मणि रत्न वृन्द के द्वारा मार्ग को सुनद्ध किये थे, तथा सूक्ष्म चीन वस्त्र के द्वारा मार्ग को आवृत किये थे। उसके ऊपर वृन्त हीन पुष्प राजि का विन्यास किये थे। मार्ग के उभय पार्श्व में मनोरम जलाशय निर्माण कियेथे, उसमें पद्मनीलोत्पल प्रभृति प्रस्फुटित थे। रत्न बद्ध सोपानावलि से जलाशय समूह सुशोभित थे एवं हंस, जल कुक्कुट के नादों से निनादित थे ॥७।८॥

एवं क्रमेण संनीत्वा नाट्यस्थलमपि द्विजः।
उलाहवनलीजां यः स्मरन् कृष्णस्य विक्रमम् ॥९॥
प्रभोरपि स्वभक्तानां पक्षपातित्वमेवच।
सुखीभूत्वा हसन् नृत्यन् प्राह भक्तजनाग्रतः ॥१०॥
अधुना न गमिष्यति मधुरां भगवान् प्रति।
आयास्यतीति जानन्तु कृष्णनाट्यस्थलादपि॥११॥
श्रुत्वा भक्तगणाः सर्व्वे तद्वाक्यममृतं शुभम्।
पिवन्तस्तं परिक्रम्य दण्डवत् पतिता भुवि॥१२॥
सोऽनमत् प्रेमपूर्णात्मा समालिङ्ग्य परस्परम्।
प्राप्तास्तद्दर्शनसुखं बभूवुरतिहर्षिताः ॥१३॥
ततो जगन्मङ्गलमच्युतः स्वयं श्रीकृष्णसङ्कीर्त्तनमेव कृत्वा।
वाचस्पतेर्ब्राह्मणसत्तमस्य गृहं समीयात् स्वजनैः परीतः।१४

इस रीति से पथ निर्माण पूर्वक नाटशाला पर्य्यन्त द्विज ने श्रीमन् महाप्रभु के श्रीवृन्दावन गमन हेतु व्यवस्था की, जिस से श्रीकृष्ण लीला उद्दीप्त हो ॥९॥

प्रभु, निज भक्त का पक्षपात करते हैं, अतः भक्त जनों के सम्मुख में हास्य एवं नृत्य करते हुये प्रभु कहे थे। सम्प्रति प्रभु, मथुरा गमन नहीं करेंगे। अतः भगवान् नाटशाला से निश्चय ही प्रत्यावर्त्तन कर यहाँ पर आयेंगे ॥१०।११॥

भक्तवृन्द उक्त वाक्य को सुनकर आनन्दित हुयेथे, एवं उनको परिक्रमण एवं दण्डवत् भूतल में निपतित होकर प्रणाम किये थे ॥१२

प्रेमपरिप्लुतात्मा व्राह्म णने भी उन सब को प्रणाम आलिङ्गन किया पारस्परिक दर्शन सुखसे सब भक्तजन अतिआनन्दित हुयेथे।१३

अनन्तर जगन्मङ्गल स्वरूप श्रीकृष्ण, स्वयं श्रीकृष्ण सङ्कीर्त्तन करते करते निज जनगण के सहित व्राह्मण सत्तम वाचस्पति के भवन में उपस्थित हुये थे ॥१४॥

श्रीमन्नवद्वीपनिवासिनो ये-
ऽपरे जना ये सुरलोकवासिनः ।
मूर्त्या सुदृष्ट्वा मुखपङ्कज प्रभो-
र्वाञ्छन्ति ते नेत्रशतं हि सर्व्वतः ॥१५॥
दिनं कतिपयं कृष्ण उषित्वा द्विजमन्दिरे ।
उद्धार जनं सर्व्वं जड़ान्धबधिरादिकम् ॥१६॥
वक्रेश्वरकृपापात्रो देवानन्दः सुपण्डितः ।
आगत्य प्रभुपादे च निवेद्य पूर्व्वदुर्म्मतिम् ॥१७॥
पप्रच्छ निजहितञ्च तस्मै प्राह कृपानिधिः ।
श्रीमद्भागवतं साक्षात् सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥१८॥
श्रीकृष्णमेव जानीहि मात्सर्य्यादिविवर्ज्जितम् ।
पठन् भक्तिरसास्वादं प्राप्तानन्दो भविष्यति ॥१९॥
श्रुत्वा विप्रो नमन्मूर्द्धा तत्पादरजसावृतः ।

श्रीमन् नवद्वीप निवासी जन गण, एवं अपरापर जनवृन्द, श्रीप्रभु के मुखारविन्द दर्शन कर आनन्दित हुये थे एवं शत नेत्र को प्रार्थना किये थे ॥१५॥

श्रीगौर कृष्ण, निज मन्दिर में कतिपय दिन अवस्थान करने के पश्चात् जड़ अन्धवधिर प्रभृति समस्त जनों को उद्धारकिये थे ।१६

वक्रेश्वर के कृपा पात्र सुपण्डित देवानन्द, आकर श्रीप्रभुपाद पद्म में निज दुर्म्मति का कीर्त्तन किये थे ॥१७॥

एवं पूछे थे,किस से निज हित होगा, कृपानिधि गौर हरि,कहे थे, मात्सर्य्यादि विवर्जित श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करो, श्रीमद् भागवत् साक्षात् श्रीकृष्ण हैं, पाठ करो, उस से भक्ति रसास्वाद लाभ होगा ॥१८-१९॥

विप्र, श्रीप्रभु के वचनामृत श्रवण कर उनकी चरण धूली से

गौरचन्द्ररसे मग्नो ननर्त्त परमाद्भुतम् ।।२०।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते तृतीयपक्रमे
देवानन्दानुग्रहो नाम सप्तदशः सर्गः ।।

***

अष्टादशः सर्गः

***

ततो भक्तैर्वृतः कृष्णो रामकेलिं जगाम ह ।
श्रुत्वा तत्रागमद्दृष्टुं प्रभुपादं सनातनः ।१।
प्रभुं दृष्ट्वा प्रीतमनाः प्रपतन् धरणीतले ।
दशनाग्रे तृणं धृत्वा सानुजः प्राह केशवम् ।।२।।
मद्विधो नास्ति पापात्मा नापराधी च कश्चन ।
परिहारेऽपि लज्जा मे किं ब्रुवे पुरुषोत्तम ।।३।।

निज को आप्लुत कर अवनत मस्तक से प्रणतिपूर्वक परमाद्भुत गौर चन्द्र रसमें निमग्न हो गये ।।२०।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत तृतीय प्रक्रमें
देवानन्दानुग्रहो नाम सप्तदशः सर्गः ।।

***

अनन्तर भक्तगण परिवृत होकर श्रीगौरकृष्ण, राम केलि ग्रा[म] में उपस्थित हुये थे । विवरण सुनकर श्रीप्रभुचरण सन्दर्शना[र्थ] सनातन श्रीप्रभुके समीपवर्त्ती हुये थे ।।१।।

श्रीप्रभु दर्शन के पश्चात् अतीव आनन्दित होकर सनात[न], भूतल में निपतित हो गये थे, एवं दशनाग्र में तृण धारण कर अनु[ज] के सहित श्रीप्रभु को कहे थे ।।२।।

मेरे समान पापात्मा कोई नहीं हैं, अपर अपराधी भी क[ोई] नहीं हैं, क्षमा प्रार्थना करने में भी लज्जा होती है, हे पुरुषोत्तम !

स्वपादं तस्य शिरसि धृत्वा प्राह जनार्द्दनः ।
वृन्दावननिवासी त्वं सत्यं सत्यं न संशयः ।४।
मथुरां गन्तुमिच्छामि त्वया सार्द्धं यथासुखम् ।
लुप्ततीर्थस्य प्राकट्यं तथा वृन्दावनस्य च ।५।
कर्त्तुमर्हसि तत् सर्व्वं मत्कृपातो भविष्यति ।
भक्तिस्वरूपिणी साक्षात् प्रेमभक्ति प्रदायिनी ।६।
श्रुत्वा प्राह महाबुद्धिः सानुजः श्रीसनातनः ।
आरामः कृष्णचन्द्रस्य रम्यं वृन्दावनं शुभम् ।७।
श्रीराधया सह कृष्णो यत्र क्रीड़ति सर्व्वदा ।
अगम्यं योगिभिर्नित्यं देवसिद्धैर्नरेतरैः ।८।
निर्ज्जनं तज्जनाद्यैश्च गत्वा किं स्यात् सुखाय च ।
त्वत्कृपाशस्त्ररूपेण छित्त्वा मे दृढ़शृङ्खलाम् ।९।

मैं क्या कहूँ ।।३।।

प्रभु जनार्दन, निज चरण कमल उनके मस्तक में स्थापन कर उनको कहे थे,तुम वृन्दावन निवासी हो, इसमें कोई संशय नहीं है ।४।

मथुरा जाना चाहता हूँ । मैं तुम्हारे साथ तुम वहाँ जाकर लुप्ततीर्थ को यथावत् प्राकट्य करो । मेरी कृपा से साक्षात् भक्तिलाभ करोगे ।।५।।

श्रीप्रभु के वचन को सुनकर अनुज के सहित महाबुद्धि सनातन कहे थे । श्रीकृष्ण के मनोरम का वन श्रीवृन्दावन है ।।६।७।।

जहाँ श्रीराधाके सहित श्रीकृष्ण, सर्वदा क्रीड़ा करते रहते हैं । देव सिद्ध, गन्धर्व एवं योगि प्रभृति जनगण के निकट वह वृन्दावन सर्वदा अगम्य है ।।८।।

वह प्रदेश निर्जन है, अतः वहाँ जाकर क्या सुख होगा, अतः आप कृपा पूर्वक संशयापनोदन करें ।।९।।

राजपात्रादिरूपाञ्च प्रापय्य निजसन्निधिम् ।
शक्तिसञ्चारणं कृत्वा कुरु कृष्ण यथासुखम् ।।१०।
तद्वाक्यामृतमेवं हि पीत्वा प्राह हसन् प्रभुः ।
भवन्मनोरथं कृष्णः सदा पूर्णं करिष्यति ।११।
एवं तं परिसन्तोष्य कृष्णो नान्यस्थलं गतः ।
रजन्यां चिन्तयामास सत्यमुक्तं न संशयः ।१२।
सनातनेन कृतिना तन्मुखेन च माधवः ।
मामाह निर्ज्जनं सत्यं वृन्दारण्यं सुदुर्लभम् ।१३।
लोकसंघर्षगते नित्यं दुःखमेव न संशयः ।
सङ्गं त्यक्त्वा गमिष्यामि दक्षिणं चाधुना व्रजे ।१४।
एवं विचार्य्य भगवान् सान्द्रानन्दरसात्मकः ।
प्रातःरुत्थाय श्रीकृष्णो नित्यानन्दसमन्वितः ।१५।
अद्वैताचार्य्यनिलयं जगाम सत्वरं मुदा ।

राज पात्रादि रूप को निजसन्निधि में प्राप्तकर शक्ति सञ्चार पूर्वक हे कृष्ण, यथोचित कार्य्य आप करें ।।१०।।

श्री सनातन के वाक्यामृत पान पूर्वक, श्रीप्रभुने हँसकर कहा, आपका मनोरथ पूर्ण, श्रीकृष्ण सर्वथा करेंगे ।।११।।

इस प्रकार सनातन को सन्तुष्ट कर श्रीगौर कृष्ण वहाँपर ही निशि यापन किये थे । एवं मन ही मन चिन्ता किये थे ।।१२।।

सनातन ने जो कुछ कहा, वह सब ठीक है, सनातन ने कहा, वृन्दावन निर्जन स्थान है, एवं सुदुर्लभ है ।।१३।।

लोक सङ्घ लेकर वहाँ जाने से दुःख ही होगा । अतएव, सङ्ग को छोड़ अधुना मैं वृन्दावन जाऊँगा ।।१४।।

सान्द्रानन्द रसात्मक श्रीभगवान् श्रीकृष्ण, इस प्रकार विचार कर प्रातः काल में उठकर श्रीनित्यानन्दके सहित श्रीअद्वैताचार्य्य के

तेन संपूजितस्तत्र स्थितो भक्तसुखप्रदः ।१६।
अच्युतेनाप्यविरतं कौतुकानन्दवर्द्धनः ।
परिहासरसामोदी हरिदासदयापरः ।१७।
हरिसङ्कीर्त्तनं रात्रौ कुर्व्वन् स भक्तवेष्टितः ।
ननर्त्त परमप्रीतो नित्यानन्दसमन्वितः ।१८।
मातरं भक्तवृन्दञ्च मातृभक्तशिरोमणिः ।
नवद्वीपात् समानय्य तद्दुःखं परिमोचयन् ॥१९॥
तया पाचितमन्नञ्च चातुर्व्विध्यं यथोचितम् ।
भक्ताह्लादशतैर्भुक्तो नित्यानन्दकुतूहली ॥२०॥
एवं श्रीभक्तवर्गाणां ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे ।
भुक्त्वा पीत्वा सुखं कृत्वा ययौ श्रीपुरषोत्तमम् ।२१।
श्रीमन्नित्यानन्दरामः पण्डितः श्रीगदाधरः ।

भवन में उपस्थित हुये थे । अद्वैताचार्य्य ने भी उनकी पूजा विधिवत् की अनन्तर प्रभु वहाँपर भक्तप्रद रूप में निवास किये थे ॥१५।१६॥

परिहास रसामोदी कौतुकानन्द वर्द्धन प्रभु अद्वैतनन्दन अच्युत के सहित अविरत आनन्दास्वादन करते थे । श्रीहरिदास दयापर वश श्रीगौर भक्तवृन्द परिवेष्टित होकर रात्रि में श्रीहरि सङ्कीर्त्तन करते थे एवं सङ्कीर्त्तन में श्रीनित्यानन्द के सहित नृत्य करते थे ॥१७।१८॥

मातृभक्त शिरोमणि प्रभु, माता एवं भक्त वृन्द को नवद्वीप से शान्तिपुर में आनयन पूर्वक दुःख विदूरित किये थे ॥१९॥

माता के द्वारा पाचित यथोचित चतुर्विध अन्न, नित्यानन्द एवं भक्तवृन्द के सहित ग्रहण किये थे ॥२०॥

इस प्रकार भक्त वृन्द के प्रति भवन में एवं ग्राम ग्राम में प्रभु, भोजन प्रभृति अङ्गीकार कर श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र गमन किये थे ॥२१॥

श्रीमन्नित्यानन्द राम पण्डित श्रीगदाधर, गौर प्रेम सुधामत्त

गौरप्रेमसुधामत्तो गौराङ्गप्राणवल्लभः ॥२२॥
ताभ्यामनुगतः कृष्णो गोपीनाथं ददर्श ह ।
साक्षान्नन्दकुमारञ्च श्रीवंशीवदनं विभुम् ।२३।
गोपीमनोरथामोदी समालिङ्ग्य स्थितो हरिः ।
दृष्ट्वा गदाधरस्तत्र गौरकृष्णात्मकं सुखी ॥२४॥
साक्षात् राधास्वरूपोऽसौ तं धृत्वा निजवक्षसि ।
समानीय कौतुकेन स्थापयामास निश्चलम् ॥२५॥
तस्य पाचितमन्नञ्च गोपीनाथावशेषितम् ।
गदाधृग्गौरचन्द्रस्य समीपे पुलकावृतः ॥२६॥
तेनानुमोदितो हर्षात् सत्रत्रयसमन्वितम् ।
प्रसादं गोपीनाथस्य विभज्य बुभुजे पुरा ।२७।
भोजयित्वा स्वहस्तेन नित्यानन्दाय च पुनः ।
गदाधरः स्वयञ्चापि बुभुजे रसकौतुकी ।२८।

होकर श्रीप्रभु के सहित गमन किये थे। अनन्तर श्रीप्रभु, श्रीगोपीनाथ दर्शन उन दोनों के सहित किये थे। जो साक्षात् नन्दकुमार हैं, एवं वंशी विभूषित वदन हैं ॥२२॥२३॥

श्रीहरि, गोपीमनोरथामोदी को प्राप्त कर आनन्दित हुये थे। श्रीगौरकृष्णात्मक प्रभुको देखकर श्रीगदाधर भी सुखी हुये थे ॥२३॥

श्रीगदाधर, साक्षात् श्रीराधिका स्वरूप हैं, अतः उनको कौतुक पूर्वक वहाँपर प्रभु स्थापन किये थे ॥२५॥

उनके द्वारा पाचित अन्न, श्रीगोपीनाथ ग्रहण करते थे। अनन्तर उनके अनुमोदन प्राप्तकर आनन्द से भक्तवृन्द को प्रसाद वितरण करने के पश्चात् प्रसाद ग्रहण करते थे ॥२६।२७॥

श्रीगदाधर प्रभु निज हस्त से परिवेषण कर नित्यानन्द को प्रसाद भोजन कराते थे, एवं रस कौतुकी गदाधर सब को प्रसाद

ततश्च गौराङ्गः सुखोपविष्टो गदाधरेणापि स्वयं रसज्ञः।
रासोत्सुको रासरसेन मत्तो रामोपरामे रसरामरामे ॥२९॥
इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते तृतीयप्रक्रमे गौड़देशभ्रमणानन्तरं
श्रीगोपीनाथदर्शनं नामाष्टादशः सर्गः ॥

***

चतुर्थप्रक्रमे
प्रथमः सर्गः

***

एवं जगौ रासरसान्नीलाचले श्रीकृष्णसंकीर्त्तनपूर्णमानसः।
स्वरूप मुख्यैर्गदाधराद्यैः समं ननर्त्त स हि नामकौतुकी ।१।
श्रीसार्व्वभौमेन सह श्रीरामानन्दादयः क्षेत्रनिवासिनो ये ।
आजग्मुः श्रीगौररसेन पूर्णाः पपुस्तु हर्षान्मुखपङ्कजं प्रभोः ।२

प्रदान के अनन्तर प्रसाद ग्रहण करते थे ॥२८॥

अनन्तर श्रीगौराङ्ग सुखोपविष्ट होकर श्रीगदाधर के सहित श्रीकृष्ण चरित्र आलापन कर परमानन्दित होते थे ।।२९॥

इति श्रीकृष्ण चैतन्य चरितामृते तृतीय प्रक्रमे गौड़देश
भ्रमणानन्तरं श्रीगोपीनाथ दर्शनं नामाष्टादशः सर्गः ।

**

चतुर्थप्रक्रमे प्रथमः सर्गः

निजनाम कोतुकी श्रीगौरहरि, श्रीकृष्ण सङ्कीर्त्तन में विभोर होकर स्वरूप एवं गदाधर प्रभृति भक्त वृन्दके सहित नीलाचल में सङ्कीर्त्तन नृत्य किये थे ।।१॥

श्रीवासुदेव सार्वभौम के सहित श्रीरामानन्द प्रभृति क्षेत्र निवासी भक्त वृन्द श्रीगौर प्रेमामृत रस से पूर्ण होकर आनन्द से श्रीप्रभु की मुख पङ्कज माधुरी पान किये थे ॥२॥

शृण्वन्ति संकीर्त्तननाममङ्गलं
गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ।
नृत्यन्ति सर्व्वे रसिकेन्द्रमौलिना
गौराङ्गचन्द्रेण समं विहस्ताः ।३।

काशीश्वरो राममुकुन्दमुख्यो वक्रेश्वरो राघववासुदेवौ ।
श्रीशङ्करश्रीहरिदासगौरी-दासादयस्ते हि स गौड़वासिनः ।४।

खण्डस्थिताः श्रीरघुनन्दनादयो
गौराङ्गभावेन विभावितान्तराः ।
कुलीनग्रामानिवासिनः सुखं
नृत्यन्ति गायन्ति नमन्ति सन्ततम् ।५।

नृत्यावसाने प्रभुरच्युतः स्वयं
प्राह परं भक्तजनानुकम्पाम् ।
वृन्दावनं रम्यमतीव दुर्लभं
गच्छामि यच्चेद्भवतां कृपा भवेत् ।।६।।

मङ्गलमय श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन वे सब श्रवण करते थे आनन्द समुद्र में निमग्न होकर श्रीहरिनाम गान करतेथे। रसिकेन्द्र मौलि श्रीगौर चन्द्र के सहित अति व्याकुल होकर नृत्य करते थे ।।३।।

गौड़मण्डल निवासी काशीश्वर, राम, मुकुन्द, वक्रेश्वर राघव वासुदेव, श्रीशङ्कर श्रीहरिदास, श्रीगौरीदास प्रभृति, एवं श्रीखण्ड वास्तव्य श्रीरघुनन्दन प्रभृति, एवं कुलीनग्राम निवासी भक्तवृन्द श्रीगौराङ्गभावविभावितान्तः करणहोकर निरन्तर नृत्य, गान, एवं नमन करते थे ।।४-५।।

नृत्यावसान होने पर स्वयं अच्युत प्रभु, भक्तजनों के प्रति अनुकम्पा प्रदर्शन कर कहे थे, श्रीवृन्दावन, अतीव रमणीय है, एवं अतिशय दुर्लभ है; यदि आप सब की कृपा हो तो मैं वृन्दावन जाऊँगा ।।६।।

पिवन्ति गौराङ्गमुखाब्जपीयूषं
पूर्णास्तथा तेऽपि सुदुःखिता भृशम् ।
क्रन्दन्ति गौराङ्गपदारविन्दे
निपत्य दन्ताग्रतृणा वदन्ति ॥७॥
त्वमेव वृन्दावनचन्द्र हे प्रभो
तथापि दासानुमतेन सर्व्वम् ।
कर्त्तुं सदा पृच्छसि साम्प्रतं किल
स नन्दनानन्दमुखान् विदेहिनः ।८।

एवं श्रुत्वा हसन् प्राह भवतां सन्निधौ सदा ।
तिष्ठामीति ब्रुवन् शीघ्रं गमनाय कृतोद्यमः ।९।
रुदतस्तान् समालिङ्ग्य स सान्त्वय्य पुनः पुनः ।
आयास्येति ब्रुवन् कृष्णो ययौ वृन्दावनं शुभम् ।१०।
सोत्कण्ठं धावतस्तस्य मत्तसिंह इव प्रभोः ।

भक्त वृन्द श्रीगौराङ्ग के वचनामृत पानकर परिपूर्ण होने पर भी अत्यन्त दुःखित हुये थे । श्रीगौराङ्ग पदाम्बुज में निपतित होकर दन्ताग्र में तृण धारण कर वे सब करने लगे थे ॥७॥

हे प्रभो ? आप ही वृन्दावन चन्द्र हैं, तथापि आप दासवृन्द की सम्मति से ही सब कुछ करना चाहते हैं ॥८॥

इस प्रकार वाक्य को सुनकर हँस हँस कर प्रभु ने कहा, आप सब के समक्ष में मैं सदा रहूँगा, । यह कहकर शीघ्र गमन के निमित्त प्रयत्न किये थे ॥९॥

भक्त वृन्द, रोदन कर रहे थे, प्रभुने किसी को आलिङ्गनकर किसी को पुनः पुनः सान्त्वना प्रदान कर, किसी को 'आयेंगे सत्वर' कहकर सत्वर शुभ वृन्दावन के और प्रस्थान किये थे ॥१०॥

प्रभु, मत्तसिंह के समान उत्कण्ठित होकर धावित होने पर

सङ्गिनो बलदेवाद्या धावन्ति तमनुव्रताः ॥११॥
यत्र यत्र पर्व्वतञ्च नदीश्च परमः प्रभुः ।
पश्यन् गोवर्द्धनं वृन्दावनं कालिन्दीमप्यसौ ।१२।
मत्तहुङ्कार निर्घोषो मत्तद्विरदविक्रमः ।
नृत्यति धावति रोति क्षितौ विलुठति क्वचित् ।१३।
एवं क्रमेण भगवान् काशीमुपजगाम ह ।
विश्वेश्वरमहालिङ्गदर्शनानन्दविह्वलः ॥१४॥
तत्रैव ब्राह्मणः कश्चित् तपनाख्यः सुवैष्णवः ।
पश्यन् प्रभुं महाहृष्टो निनाय निजमन्दिरम् ।१५।
तेन संपूजितः कृष्णः पादप्रक्षालनादिभिः ।
भिक्षां कृत्वा गृहे तस्य सुखासीनो जगद्गुरुः ।१६।
तिष्ठेति तत्सुतेनापि रघुनाथेन मानितः ।

नित्य सङ्गी बलदेव प्रमुख व्यक्ति गण उनके अनुगमन किये थे ॥११॥

परम प्रभु, यत्र, तत्र पर्वत, नदी, कानन प्रभृति को देखकर गोवर्धन, वृन्दावन, कालिन्दी ज्ञान करते थे ॥१२॥

मत्तद्विरद विक्रम प्रभु, हुङ्कार निर्घोष के सहित गमन करते थे, एवं क्वचित नृत्य करते थे, धावित होते थे, रोदन करते थे, एवं क्षिति में विलुण्ठित होते थे ॥१३॥

इस रीति से गमन करते करते प्रभु, काशीपुरी में उपस्थित हुये थे, वहाँ विश्वेश्वर महालिङ्ग दर्शन कर आनन्द विह्वल हुये थे।१४

वहाँपर तपन नामक एक सुवैष्णव ब्राह्मण,—प्रभु को देखकर महानन्दित होकर निज मन्दिर में ले आये थे ॥१५॥

एवं श्रीगौर कृष्ण के पाद प्रक्षालन पूर्वक पूजन किये थे। अनन्तर उनके भवन में भिक्षा अङ्गीकार पूर्वक सुख पूर्वक निवास किये थे ॥१६॥

तपनमिश्र का पुत्र रघुनाथ उस समय वहाँपर विद्यमान थे,

तस्मै महाकृपां चक्रे बालकाय महात्मने ।१७।
चन्द्रशेखरवैद्यस्य गृहे तिष्ठन्नति स्वयम् ।
काशीवासिजनान् कुर्व्वन् हरिभक्तिरतान् किल ।१८।
हरिसंकीर्त्तनामोदी स्वभक्तगणवेष्टितः ।
हरिं वदेति संजल्पन् बाहुमुत्क्षिपति सदा ॥१९॥
इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे श्रीवृन्दावनगमनपूर्व्वकं काशीवासितपनमिश्राद्यनुग्रहो नाम प्रथमः सर्गः ॥

द्वितीयः सर्गः

***

ततः प्रयागमासाद्य दृष्ट्वा श्रीमाधवं प्रभुः ।
प्रेमानन्दसुधापूर्णो ननर्त्त स्वजनैः सह ।१।
श्रीलाक्षयवटं दृष्ट्वा त्रिवेणीस्नानमाचरन् ।
यमुनायाञ्च संमज्य नृत्यन् वारेन्द्रलीलया ॥२॥

उनके प्रति श्रीप्रभु ने अनुकम्पा की ॥१७॥

चन्द्रशेखर वैद्य के गृह में स्वयं प्रभु अवस्थान पूर्वक काशीवासी जन निकर को श्रीहरिभक्तिरत किये थे ॥१८॥

निज भक्तगण वेष्टित होकर श्रीहरि सङ्कीर्त्तनानन्द आस्वादन किये थे, एवं "हरिंवद" कहकर बाहुद्वय उत्तोलन करते थे ॥१९॥

इति श्रीकृष्ण चैतन्य चरितामृते चतुर्थ प्रक्रमे श्रीवृन्दावनगमन पूर्वक काशी वासी तपन मिश्राद्यनुग्रहो नाम प्रथमः सर्गः ।

* द्वितीयः सर्गः *

अनन्तर श्रीप्रभु, प्रयाग में उपस्थित होकर श्रीमाधव कादर्शन कर, प्रेमानन्द सुधापूर्ण होकर निज जनों के सहित नृत्य किये थे ॥१॥

श्रील अक्षय वट का दर्शन, एवं त्रिवेणी स्नानाचरण कर

हुङ्कारगम्भीरारावैः प्रेमाश्रुपुलकैर्वृतः ।
व्रजन् क्रमात्तमुत्तीर्य्य वनं चाग्रं ददर्श ह ।३।
तत्रैव रेणुका नाम ग्रामो यत्र युधां पतिः ।
जामदग्निर्महात्मा च पुण्यक्षेत्रे ययौ ततः ।४।
तत्रैव यमुनां दृष्ट्वा वृन्दारण्योन्मुखी सदा ।
राजग्रामं ततो गत्वा गोकुलं प्रेक्ष्य विश्वलम् ।५।
महारण्यञ्च संपश्यन् मथुराञ्च ददर्श ह ।
राजधानीं महैश्वर्य्ययुक्तां परमशोभनाम् ।६।
श्रीवैकुण्ठादिधाम्नां हि परमाराधनं भुवि ।
श्रीकृष्णप्रकटञ्चापि प्रेमभक्तिप्रदायिनीम् ।७।
दृष्ट्वा गौरहरिः प्रेमविकारसर्व्वसंयुतः ।
हसन् नृत्यन् रुदन् भूमौ विलुठन् पुलकाञ्चितः ॥८॥

यमुनामें अवगाहन स्नान कर वारणेन्द्रलीला से सङ्कीर्त्तन किये थे ।२।

हुङ्कार गम्भीर शब्द तथा प्रेमाश्रु पुलकान्वित होकर गमन करते करते तीर्थ उत्तीर्ण हो कर अग्रभाग में आपने वन दर्शन किया ॥३॥

वहाँपर रेणुका नामक ग्राम है, जहाँपर समरनायक महात्मा जामदग्नि विराजित हैं, उन पुण्य क्षेत्र में प्रभु उपस्थित हुये थे ॥४॥

वहाँपर प्रभुने सदा वृन्दारण्योन्मुखी होकर यमुना को देखा, अनन्तर राजग्राम में जाकर विह्वलता के सहित गोकुल का दर्शन किया ॥५॥

महारण्य दर्शन के पश्चात् मथुरा दर्शन भी आपने किया, जो महैश्वर्य्य युक्त परम शोभन रूपा राजधानी थी ॥६॥

भूतल में श्रीवैकुण्ठधामादि के परमाराधन हेतु प्रेमभक्ति प्रदायिनी होकर जिसने श्रीकृष्ण को आविर्भूत करवाया ॥७॥

श्रीगौर हरि, श्रीकृष्णप्रेमविकार संयुत होकर हास्य, नृत्य, रोदन, एवं भूमि में लुठन, पुलकायित रूप में कर रहे थे ॥८॥

तत्रैव कश्चिद्द्विजवर्य्यसत्तमः पश्यन् हरिं प्रेमविभिन्नधैर्य्यः ।
रोमाञ्चितैर्युक्त-सगद्गदं कृती पपात पादौ जगदीश्वरस्य ।९।

करत्वं भवान् प्रेमविभिन्नधैर्य्यो
दृष्टोऽसि मे भाग्यवशादिति स्वयम् ।
प्रीतः पुनः प्राह स एव च प्रभुं
दासोऽस्म्यहं ते भगवन् दयानिधे ॥१०॥

नाम्ना हि मात्रं यदि कृष्णदास-
स्तथापि त्वद्दर्शनभाग्यवानहम् ।
कृपानिधे वैष्णवपादरेणुभिः
पुनीहि मां नन्दकिशोर गौर ॥११॥

श्रुत्वा प्रभुर्हर्षरसाब्धिमग्नः
प्राह त्वमेव खलु कृष्णदासः ।
श्रीकृष्णधाम्नो हि रहस्यलीलां
जानासि सर्व्वां कथयस्व सत्तम ॥१२॥

वहाँपर ही श्रीगौर हरि को देखकर प्रेम बिभिन्न धैर्य्य तथा रोमाञ्चित एवं गद्गद वाणी से युक्त, एक विप्रवर्य्य जगदीश्वर गौर हरि के श्रीचरणों में निपतित हुये थे ॥९॥

आप कौन हैं, श्रीकृष्ण प्रेम से विभिन्न धैर्य्य हैं, भाग्य से ही आप नयन गोचरीभूत हुये हैं, प्रभु इस प्रकार कहने पर सन्तुष्ट होकर पुनर्वार प्रभुको कहे थे, हे भगवन् हे दयानिधे ! मैं आपका दास हूँ ।१०

नाम से ही यद्यपि मैं कृष्ण दास हूँ, तथापि आपका दर्शन से मैं भाग्यवान् हूँ । हे कृपानिधे ! हे नन्द किशोर गौर ! मुझ को वैष्णव पाद रेणु के द्वारा पवित्र करिये ॥११॥

सुनकर प्रभु, अत्यन्त आनन्दित हुये थे, एवं कहे थे—तुम ही कृष्णदास हो, तुम श्रीकृष्ण धाम की रहस्य लीला को जानते हो, हे

स त्वेनमाह शृणु केशव प्रभो
यदि स्वयं भक्तजनाभिमानी ।
तथापि प.दौ विनिधाय मे हृदि
प्रकाशय त्व मधुमण्डलं निजम् ।१३।
पीत्वा च तस्य वचनामृतं-
र्जगाद जीमूतगभीरया गिरा ।
मदाज्ञया ते च श्रीकृष्णलीला:
स्फुरन्तु धामानि च सर्व्वतः सुखम् ।१४।
तदा स विप्रश्चरणाब्जसन्निधौ
पपात हर्षेण प्रभो दयानिधे ।
धृत्वा पदौ ते मम मस्तकोपरि
सदर्शयिष्ये भवते च सर्व्वम् ।१५।
इति ब्रुवन् गौररसेन मत्तो
नृत्यन् रुदन् प्रेमविभिन्नधैर्य्यः ।

सत्तम ! उन सब लीला कथा का वर्णन करो ॥१२॥

प्रभु की वाणी को सुनकर कृष्ण दासने कहा,—हे केशव ! हे प्रभो यद्यपि आप भक्त जनाभिमानी हो, तथापि आप, मेरे हृदय में आप के श्रीचरण युगल को स्थापन कर मथुरा मण्डल का प्रकाशन करें ॥१३॥

श्रीकृष्ण दास के वचनामृत का पान कर श्रीप्रभुने जीमुत-गम्भीर स्वर से कहा,—मेरी आज्ञासे श्रीकृष्ण लीला एवं धाम समूह का स्फुरन सुख पूर्वक होगा ॥१४॥

अनन्तर विप्र, दयानिधि प्रभु के चरण युगल के समीप में निपतित हो गये, एवं कहने लगे—मेरे मस्तक में श्रीचरण स्थापन कर आशीर्वाद प्रकट करें ॥१५॥

श्रीरासलीलाम्बुविलासवैभव-
मगायत गोपीपतिर्मुहुर्म्मुहुः ।१६।
एवं जगन्मोहनलीलया हरिः
सुख रजन्यां व्रजकेलिवार्त्तया ।
श्रीराधिकाकृष्णविलासलास्यं
जगौ परं भक्तिरसेन पूर्णः ।१७।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे श्रीमथुरामण्डल-दर्शनं नाम द्वितीयः सर्गः ।

**

तृतीयः सर्गः

**

एवं तां रजनीं नीत्वा क्षणप्रायं शचीसुतः ।
उत्कण्ठितः प्रदोषे च विप्रमाहूय सत्वरम् ।१।
प्रोवाच मे दर्शय त्वं मथुरामण्डलं सखे ।

इस प्रकार कहते कहते गौर रस से मत्त होकर नृत्य, रोदन कर विभिन्न धैर्य्य होकर श्रीरास लीलाम्बु विलास वैभव का वर्णन पुनः पुनः करने लगे थे ।।१६।।

इस प्रकार जगन्मोहन लीला से श्रीहरि, ब्रज के लिवार्त्ता से सुख पूर्वक रजनी अतिवाहित किये थे, एवं भक्ति रस पूर्ण होकर श्रीराधिका कृष्ण विलास लास्य का कीर्त्तन किये थे ।।१७।।

* तृतीयः सर्गः *

श्रीशचीसूत गौरहरि रजनी को क्षण प्राय अति वाहित कर उत्कण्ठित होकर प्रदोष में सत्वर एक विप्र को बुलाकर कहे थे । हे सखे ! तुम मुझ को मथुरा मण्डल का दर्शन कराओ, जिस से मेरा चित्त सुखी होगा ।ब्राह्मण ने सुनकर कहा, हे ब्रह्मन् ! मथुरा मण्डलमें

येन हि परमा प्रीतिर्भवेदेवं तथा वचः ।२।
सोऽप्याह माथुरे ब्रह्मन् यमुना सर्व्वतोऽधिका ।
यस्यां प्रीतिं समासाद्य कृष्णः सर्व्वेश्वरेश्वरः ।३।
गोपगोपीरसामोदी परमात्मा नराकृतिः ।
खेलति स्म सुखं रासजलकेलिकुतूहली ।।४।।
कालिन्दयाः पश्चिमे भागे मधुवृन्दावनं परम् ।
कुमुदं खदिरञ्चैव तालकाम्यबहूलकम् ।५।
अस्याः पूर्व्वे भद्रविल्वलोहभाण्डीरनामकम् ।
महद्वनश्च रसिकैर्ध्यायन्ते प्रीतिहेतवे ।।६।।
भद्रश्रीलोहभाण्डीर-महातालखदिरकम् ।
बहूलं कुमुदं काम्यं मधु वृन्दावनं तथा ।७।
द्वादशैतद्वनं रम्यं श्रीकृष्णप्रीतिदं सदा ।
महत्त्वमेषां जानन्ति भक्ता नान्ये कदाचन ।८।

यमुना सर्वतोऽधिका है, जिस में अत्यधिक प्रीति वशतः सर्वेश्वर नराकृति परमात्मा गोप गोपी रसामोदी कृष्ण क्रीड़ा करते हैं। एवं रास जल केलि का सुखास्वादन करते हैं ।।१–४।।

कालिन्दी के पश्चिम भाग में परम मधु वृन्दावन है कुमुद, खदिर, ताल, काम्य, एवं बहूला वन है ।।५।।

इस के पूर्व भाग में भद्र, विल्व, लोह, भाण्डीर एव महद्वन है, श्रीकृष्ण प्रीति निबन्धन जिसका अनुध्यान भगवद् भक्त वृन्द करते रहते हैं ।।६।।

भद्र, श्री, लोह, भाण्डीर, महाताल, खदिर, बहूल, कुमुद, काम्य, मधु, वृन्दावन, यह द्वादशवन, अति रम्य है. एवं सदा श्रीकृष्ण प्रीतिद हैं। इसका महत्त्व, भक्तवृन्द ही जानते हैं, अपर व्यक्ति नहीं जानते हैं ।।७–८।।

यमुनापश्चिमे भागे कंसस्य सदनं परम् ।
अस्योत्तरे महारम्यं वृन्दारण्यं सुदुर्लभम् ।९।
कुमुदाख्यवनं तस्या नैर्ऋते सुखदं हरेः ।
तद्दक्षिणे खदिराख्यं वनं कृष्णसुखप्रदम् ।१०।
मथुरापश्चिमे तालवनं केशववल्लभम् ।
नदी तत्र मानसाख्या गङ्गा भुवनपावनी ॥११॥
वृन्दारण्यपश्चिमे च गोवर्द्धनगिरेस्तटे ।
श्रीकृष्णः क्रीड़ति यत्र नौकाखण्डादिलीलया ।१२।
मथुरापश्चिमे गोवर्द्धनो नाम महागिरिः ।
तस्यापि पश्चिमे काम्यवनं कृष्णरसायनम् ।१३।
तत्सान्निध्ये महापुण्या सरस्वती नदी शुभा ।
मधुपुर्य्या उत्तरे च यमुनामनुधावति ।१४।
ऐशान्यां मथुरायाश्च बहूलाख्यवनं शुभम् ।

यमुना के पश्चिम भाग में अत्युत्तम कंस सदन है, इसके उत्तर भाग में महारण्य सुदुर्ल्लभ वृन्दारण्य है ॥९॥

उस के नैऋत कोण में श्रीहरि सुखद कुमुदवन है, उसके दक्षिण भाग में कृष्ण सुखप्रद खदिरवन है ॥१२॥

मथुरा के पश्चिम भाग में केशव वल्लभ तालवन है, वहाँ भुवन पावनी मानसी गङ्गा विराजित है ॥११॥

वृन्दारण्य के पश्चिम भाग में गोवर्द्धन गिरि के तटदेश में वह अवस्थित है, जहाँ श्रीकृष्ण नौका खण्डादि लीला करते रहते ॥१२॥

मथुरा के पश्चिम भाग में गोवर्द्धन नामक महागिरि है, उस के पश्चिम में कृष्ण रसायन काम्यवन है ॥१३॥

उसके सान्निध्य में महापुण्या शुभा सरस्वती नदी है । मधुपुरी के उत्तर में वह प्रवाहिता है ॥१४॥

मनोगङ्गा समुत्तीर्य्यं यत्र क्रीड़ति कंसहा ॥१५॥
मोहनाख्यवनं चैव कथितानि महाभुज।
वनानि सप्त यमुनापश्चिमे ह परं शृणु ।१६।
तस्याः पूर्व्वकूले पञ्चवनानि रसिकेश्वर ।
तत्कृपापारवश्येन लक्ष्यते विपुलं मया ।१७।
यमुनायाः सुनिकटे महारण्यं सुदुर्लभम् ।
विल्वं तत्पश्चिमे रम्यं कृष्णप्रेमफलप्रदम् ।१८।
तस्योत्तरे लोहनामबनं भद्रवनं तथा।
भाण्डीरकवनं रम्यं कृष्णभक्ति प्रदं महत् ॥१९॥
द्वादशैतद्वनं रम्यं मथुरामण्डलं प्रभो ।
एतेषु विहरत्येब कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।२०।
प्रत्येकं दर्शयिष्यामि यस्मात्तेऽनुग्रहो महि ।

मथुरा के ईशान कोण में शुभ बहूलावन है, मानसी गङ्गा उत्तीर्ण होकर जहाँ कंस निसूदन क्रीड़ा करते हैं ॥१५॥

हे महाभुज! मोहन नामक वन का वर्णन भी मैंने किया। यमुना के पश्चिम में जो सप्तवन है, उसका विवरण भी आप श्रवण करें ॥१६॥

हे रसिक शेखर! यमुना के पूर्व कूल में पञ्चवन हैं, उनकी कृपा से मैं विपुल रूप से उसका वर्णन करने में सक्षम हूँ ॥१७॥

यमुना के सन्निकट में सुदुर्लभ एक महावन है। वह वन, विल्व वन नाम से प्रसिद्ध है, वह मनोहर है, एवं कृष्ण प्रेम फलद भी है ।१८

उसके उत्तर भाग में लोहवन, एवं भद्र वन है, भाण्डीरक नामक महत् वन है, जो कृष्ण भक्ति प्रद रूप में विख्यात है ॥१९॥

मथुरा मण्डल में ये द्वादश वन रम्य है, हे प्रभो! यह सब वनों में योगेश्वर श्रीकृष्ण, सर्वद क्रीड़ा करते रहते हैं ॥२०॥

भवेदेव हृषीकेश येन स्याद्भवमोचनम् ॥२१॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे द्वादशवनप्रसङ्गो नाम तृतीयः सर्गः ।

**

चतुर्थः सर्गः

**

शृणुष्व करुणासिन्धो मथुरस्य कथां शुभाम् ।
आदौ मधुपुरीं पश्य राजधानीं सुशोभनाम् ।१।
त्रिषु परिसरेषूच्चैर्दुर्गं प्राचीरमुत्तमम् ।
पुर्य्याः पूर्व्वे दक्षिणाभिमुखे वहति भानुजा ।२।
उत्तरे दक्षिणे च द्वौ द्वारौ रत्नकवाटिकौ ।
राजवाटीं नैऋते स्यान्नानारत्नविभूषिताम् ।३।

यदि आपका अनुग्रह मेरे प्रति हो तो हे हृषीकेश ! में प्रत्येक वनका दर्शन कराऊँगा । जिससे भव बन्धनसेमैं मुक्त हो जाऊँगा ।२१

इति श्रीकृष्णचैतन्य चरितामृते चतुर्थ प्रक्रमे द्वादशवन प्रसङ्गो नामतृतीयःसर्गः ।

**

चतुर्थः सर्गः

हे करुणासिन्धो ! शुभ माथुर कथा का श्रवण करें, प्रथम सुशोभन राजधानी का सन्दर्शन करें ॥१॥

तीनदिक् में विस्तृत दुर्ग प्राचीरावलि विराजित हैं । पुरी के पूर्व दक्षिणाभि मुखी होकर भानुजा प्रवाहित है ॥२॥

उत्तर एवं दक्षिण में दो दो द्वार रत्न कवाटिका युक्त है, एवं नैऋत कोण में नानारत्न विभूषित राजवाटी विद्यमान है ॥३॥

पूर्व एवं उत्तर द्वार के द्वारा एवं रत्न यज्ञ समन्वित राजवाटी

पूर्व्वोत्तराभ्यां द्वारैश्च रत्नयज्ञैः समन्विताम् ।
वाव्या उत्तरपार्श्वे च वेदीं राजोपवेशनाम् ।४।
वायव्यां खलु पुर्य्याश्च बन्धनागारमेव च ।
तस्यापि दक्षिणे मूत्रस्थानं पश्य यथासुखम् ।५।
अस्य विवरणं वक्ष्ये शृणु सावहितं प्रभो ।
कंसाद्भीतो हि भगवान् वसुदेव उदारधीः ।६।
कृष्णमादाय नन्दस्य गोष्ठं गच्छन्महामनाः ।
ज्ञात्वा क्रोड़स्थितं कृष्णं मूत्रयन् सत्वरं मुदा ।७।
अयं प्रस्तरमारुह्य स्थितः स च क्षणं प्रभो ।
कृष्णस्य मूत्रचिह्नोऽयं वर्त्तते प्रस्तरोपरि ।८।
अतएव जनाः सर्व्वे मूत्रस्थानं वदन्ति हि ।
उद्धवस्य गृहं पश्य दक्षिणेऽस्य तदेव तम् ।९।
श्रुत्वा हुङ्कारं कुर्व्वन्तं प्रभुं दृष्ट्वा द्विजोत्तमः ।

के उत्तर पार्श्व में राजा के उपवेशन स्थान है ॥४॥

पुरी के वायु कोण में बन्धनागार है, उसके दक्षिण में मूत्रस्थान है ॥५॥

इसका विवरण मैं कहता हूँ, एकाग्र चित्त से श्रवण करें। कंस भय से भीत होकर उदारधी भगवान् महामनाः वसुदेव, कृष्ण को लेकर नन्दगोष्ठ ले जा रहे थे। कृष्ण, क्रोड़ देश में अवस्थित थे, किन्तु कृष्ण को मूत्रोद्रेक हुआ, यह जानकर वसुदेव ने श्रीकृष्ण को एक प्रस्तर के ऊपर लेटा दिया, आज भी श्रीकृष्ण का मूत्रचिह्न उस प्रस्तर के ऊपर विराजित है ॥६--८॥

अतएव सब जन, उस स्थान को मूत्रस्थान कहते हैं। उस के दक्षिण दिक् में उद्धव का गृह है, उसका दर्शन आप करें ॥९॥

यह सुनकर प्रभुने हुङ्कार किया, ब्राह्मण यह देखकर भीत हो

भीतः किल सुमेधाश्च कृताञ्जलिरुवाच ह ।१०।
शृणुष्व वचनं कृष्ण लीलाकारिन् जगद्गुरो ।
स्थिरः सन् दर्शनादेव सुखमेव भवेद्ध्रुवम् ।११।
रजकस्य गृहं पश्योद्धवस्य गृहपूर्व्वतः ।
रजकस्य गृहात पूर्व्वे मालाकारगृहं तथा ।१२।
अस्यापि दक्षिणे कुब्जागृहं देवविनिर्म्मितम् ।
कुब्जाया नैर्ऋते रङ्गस्थलं परमशोखनम् ।१३।
रङ्गस्थलस्याग्निकोणे वसुदेवगृहं शुभम् ।
उग्रसेनगृहश्चास्य चैशान्यां विधिना कृतम् ।१४।
अस्यापि दक्षिणे पश्य कृष्णमूर्त्तिं गतश्रमाम् ।
दृष्ट्वा तां श्रीगौरचन्द्रः पुलकाङ्गो बभूव ह ।१५।
विश्रामं श्रमशान्तञ्च कंसखालीति संज्ञकम् ।

गये, एवं कृताञ्जलि होकर कहने लगे ॥१०॥

हे कृष्ण ! हे लीला कारिन् ! हे जगद् गुरो ! विवरण श्रवण आप करें, एवं स्थिर होकर दर्शन करें, इससे आप निश्चय ही सुखी होंगे ॥११॥

उद्धव के गृह के पूर्व भाग में रजक का गृह है, रजक के गृह के पूर्व में मालाकार का गृह है ॥१२॥

इसके दक्षिण में कुब्जा का गृह है, जो देव निर्मित है । कुब्जा का नैर्ऋत कोण में परम शोभा युक्त रङ्ग स्थल है ॥१३॥

रङ्ग स्थत्त के अग्निकोण में शुभ वसुदेव गृह है । ईशान कोण में उग्रसेन का गृह है ॥१४॥

इस के दक्षिण में श्रम अपनोदनकारी श्रीकृष्ण स्वरूप हैं, आप दर्शन करें, देखकर प्रभु गौराङ्ग पुलकायित देह हो गये थे ॥१५

विश्राम, श्रम श्रान्त, कंस खाली, प्रियाण तिन्दु, सप्तर्षि, मोक्ष

प्रियाणं तिन्दुनामानं सर्प्पविमोक्षकोटिकम् ।१६।
बोधिशिवगणेशादिद्वादशघट्टसञ्ज्ञकम् ।
क्रमाद्दक्षिणतो ज्ञेयं तीर्थराज महाप्रभम् ॥१७॥
पुर्य्याश्च दक्षिणे रङ्गभूमिं कृष्णसुखप्रदाम् ।
अस्याश्च दक्षिणे कूपं पश्य श्रीकृष्णहेतवे ।१८।
कंसेन खनितं तेन कंसकूपमितीर्य्यते ।
अस्यापि नैर्ऋते कुण्डमगस्त्येन विनिर्म्मितम् ॥१९॥
पुर्य्याश्चोत्तरतः सप्तसामुद्रकुण्डसञ्ज्ञकम् ।
प्रस्तरं पश्य देवक्याः पुत्रनाशाय निर्म्मितम् ॥२०॥
कंसेनेति हसन्तन्तं पुनः प्राह हसन् द्विजः ।
अस्याप्युत्तरतः पश्य लिङ्गं भूतेश्वरं प्रभो ।२१॥
पुनश्च यमुनां पश्य सरस्वतीसमन्विताम् ।

कोटि नामक तीर्थ है ॥१६॥

बोधि, शिव, गणेश, प्रभृति द्वादश घाट हैं। क्रमशः दक्षिण दिक् से विन्यस्त तीर्थ राज समूह हैं ॥१७॥

पुरी के दक्षिण भाग में कृष्ण सुखप्रद रङ्ग भूमि है, इस के दक्षिण में श्रीकृष्ण के निमित्त निर्म्मित एक कूप है ॥१८॥

इस कूपका खनन कंस ने करवाया था, तज्जन्य उसे कंसकूप कहते हैं। इसके ही नैर्ऋत कोण में अगस्त्य के द्वारा निमित्त अगस्त्य कुण्ड है ॥१९॥

पुरी के उत्तर में सप्त समुद्र कुण्ड है। इस प्रस्तरका अवलोकन करे, देवकी के पुत्र नाश हेतु निर्म्मित यह हुआ था ॥२०॥

कंसने ही इसका निर्म्माण करवाया था, यह कहकर विप्र ने हंस कर कहा, इसके उत्तर में हे प्रभो! भूतेश्वर लिङ्ग का दर्शन आप करें ॥२१॥

दशाश्वमेधघट्टञ्च तत्रैव सोमतीर्थकम् ।।२२।।
कण्ठाभरणसंज्ञश्च नारातीर्थाभिधानकम् ।
संयमाख्यककुण्डादि पुरीप्रसरसङ्कुलम् ।।२३।।
एवं प्रदक्षिणीकृत्वा मथुरां परमेश्वरः ।
भिक्षां चकार भिक्षान्नं कृष्णदासगृहे सुखम् ।।२४।।
स्मृत्वार्थ कृष्णदासेन सेवितं चरणद्वयम् ।
श्रीकृष्णपरमानन्दमाधुर्य्यं कथयन् प्रभुः ।।२४।।
इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थ प्रक्रमे मथुरामण्डल-
घट्टकूपादिदशनं नाम चतुर्थः सर्गः ।

पुनः सरस्वती समन्विता यमुना का दर्शन आप करें, वहाँपर ही दशाश्वमेध, एवं सोमतीर्थ भी है ।।२२।।

कण्ठाभरण नामक, एवं नारातीर्थ नामक, संयम नामक कुण्ड प्रभृति पुरी के द्वारा वेष्टित है ।।२३।।

परमेश्वर श्रीगौर हरि, इस रीति से मथुरा परिक्रमण करने के पश्चात् कृष्णदास के गृह में सुख पूर्वक भिक्षा ग्रहण किये थे ।।२४।।

अनन्तर श्रीकृष्ण दास ने श्रीप्रभु के श्रीचरण नलिन युगल का सम्वाहन करने लगा, एवं प्रभु श्रीकृष्ण माधुर्य्य का वर्णन करने लगे थे ।।२५।।

इति श्रीकृष्ण चैतन्य चरितामृते चतुर्थ प्रक्रमे मथुरा मण्डलघट्ट
कूपादि दर्शनं नाम चतुर्थः सर्गः

पञ्चमः सर्गः

**

उत्कण्ठितः कृष्णलीलां गायन् प्रेमाश्रुमोचयन् ॥१॥
प्रतिक्षणं पृष्ठवान् स कृष्णदास वदस्व मे ।
शर्व्वरी दीर्घतां प्राप्ता मम दुःखप्रदायिनी ॥२॥
स प्राह शृणु हे नाथ मथुरामण्डलस्य च ।
प्रमाणं कथ्यते विज्ञैश्चतुरशीतिक्रोशकम् ॥३॥
क्रमतो दर्शयिष्यामि स्थिरचित्तो भवान् यदि ।
भविष्यसि ततो मह्यं सुखं स्याद्भक्तवत्सल ॥४॥
आगत्य कुण्डोत्तरतः कियद्दूरे सरोवरम् ।
सेतुबन्धाख्यकं पश्य श्रीकृष्णेन च निर्म्मितम् ॥५॥
श्रुत्वा सविस्मयं प्राह पुलकाञ्चितविग्रहः ।

अनन्तर भगवान् श्रीगौर हरि सुखनिद्रा अनुभव किये थे। पश्चात् भक्तिरस समन्वित होकर एवं उत्कण्ठित होकर प्रेमाश्रु मोचन करते हुये कृष्ण लीला गान करते करते प्रतिक्षण कृष्णदास को कहते थे, कृष्ण दास ! मुझ को कहो, मेरी दुःख प्रदायिनी शर्वरी दीर्घता प्राप्त कर चुकी है ॥१-२॥

कृष्ण दासने कहा, हे नाथ ! श्रवण करें मथुरामण्डल की विस्तृति का प्रमाण, विज्ञ गण चतुरशीति क्रोश निर्णय करते हैं ।३।

आप यदि स्थित चित्त होते हैं, तो हे भक्तवत्सल ! मैं उसका क्रमशः वर्णन करूँगा, उससे हर्ष होगा ॥४॥

कुण्ड के उत्तर दिक् के कुछ ही दूर पर सेतु बन्धाख्य सरोवर है, देखिये, जिस का निर्म्माण श्रीकृष्ण ने किया है ॥५॥

कथा श्रवण से श्रीप्रभु का श्रीअङ्ग, रोमाञ्चित हो गया, एवं विस्मय पूर्वक सादर पूर्वक प्रभुने कहा—कृष्ण दास ! इसका विवरण,

अस्य विवरणं व्रूहि कृष्णदासेति सादरम् ।६।

इति श्रीगौरचन्द्रस्य वचनं श्रवणामृतम् ।

पिवन् कृष्णमनुस्मृत्य प्राह प्रहसिताननः ॥७॥

एकदा रसिकशेखरो हरिर्गोपिकारसविनोदविनोदी ।

सरसि चात्र नवकुञ्जरतुल्यः क्रीड़ति रघुवरोऽहमिति जल्पन् ।८

प्राह तं रमणीशिरोमणिराधा गोपपुत्रस्त्वमसि गोधनचारी ।

सत्यधर्म्मप्रतिपालकराजस्तस्य कर्म्म परदुर्घटमेव ।६।

सन्धुबन्धनरावणनाशन-मेतदेव खलु भरतस्य सुशोभनम् ।

मा कुरु निजगुणप्रकाशनं बालिकावसनभूषणचौर ॥१०॥

कृष्ण आह परमकौतुकराशि हास्यकौतुकरसैकविलासी ।

सर्व्वसद्गुणनिधिरहमेव जानीहीति त्वमसि गोपकुमारी ।११

कहो ॥६॥

इस प्रकार श्रीगौरचन्द्र के अमृतोपम वचन को सुनकर कृष्ण का अनुस्मरण कर प्रहसितानन कृष्णदास कहे थे ।७।

एकदिन, गोपिका रस विनोद विनोदी रसिक शेखर हरि, इस सरोवर में "मैं रघुनाथ हूँ—यह कहकर नवकुञ्जर तुल्य क्रीड़ा करने लगे थे ॥८॥

उनको रमणी शिरोमणि राधा बोली, तुम तो, गोप पुत्र हो, गोदान चारण कारी हो, तुम्हारे पक्ष में सत्य धर्म प्रति पालक राजा राम का कर्म अति दुर्घट है ॥९॥

सिन्धु बन्धन, रावण नाशन रूप कार्य्य उनके पक्ष में ही सुशोभन है, तुम, अपनी गुणगरिमा का प्रकाशन न करो, तुम तो बालिका के वसन भूषण चौर हो ॥१०॥

उत्तर में परम कौतुक राशि, हास्य कौतुक रसैक विलासी कृष्णने कहा, तुम तो गोप कुमारि हो,तुम जानना, सर्वसद् गुण निधि मैं ही हूँ ॥११॥

सर्व्वपर्व्वतमहाधनवाणैः प्रस्तरा यदि कदापि न भेद्याः।
तर्हि सर्व्वगुणरत्नसमेतं पश्यत भावनिधेऽपि प्रभावम् ।१२।

श्रुता सर्व्वाः परमरसिकाराधिकावाक्यसारं
बद्ध्वा ह्यङ्गं परमरभसात् प्रस्तरादीन् स्वसख्यः।
आनिन्युस्ता सतरुनिचयान् तेन बद्धं कृतं तत्
पश्यन्त्यस्ता स जयध्वनिभिस्तं प्रणम्य प्रशंसुः ।१३।

श्रीराधाकृष्णलीला परममधुराहास्यवासादियुक्ता
*** गोपिकाभिर्जयति च परमं सन्ततप्रेमपूर्णा।
यां श्रुत्वापि परमरसिकास्तौ स्मरेत सुखेन
ज्ञानानन्दं हसन्तः सरभसमखिलं मोक्षमप्याक्षिपन्ति ।१४
एतद्गौरहरिः कृष्णरहस्यं परमाद्भुतम्।

समस्त पर्वत महाधन वाणों के द्वारा यदि प्रस्तर कदापि विदीर्ण नहीं होता है तो, हे भावनिधे ! सकल गुण रत्न सहित प्रभाव को देखो ॥१२॥

सहचरी वृन्दने परम रसिकाराधिका वाक्य सार को सुना परम कौतुक से निज सखीवृन्द के सहित अङ्ग वस्त्र बन्धन पूर्वक प्रस्तर एवं तरुनिचय को आनयन पूर्वक उससे सेतु बन्धन उन्होंने किया। एवं देखकर वे सब जयध्वनि के सहित प्रणाम कर प्रशंसा करने लगीं।१३

श्रीराधा कृष्ण लीला, परम मधुर हास्य परिहास पूर्ण है, गोपिकावृन्दों के द्वारा वह सर्वदा उल्लसित होती रहती है, वह लीला सन्ततः प्रेमपूर्णा है। जिसका श्रवण से परम रसिक श्रीराधिका का स्मरण होगा, ज्ञानानन्द, भी उपहास का विषय होगा, एवं मोक्षानन्द भी तिरस्कृत होगा ॥१४॥

श्रीगौर हरि, परमाद्भुत कृष्ण रहस्य को सुनकर श्रीराधा रसावेश में विवश होकर आनन्द चित्त से नृत्य किये थे ॥१५॥

श्रुत्वा राधारसावेशो ननर्त्त विवशं मुदा ।१५।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थ प्रक्रमे सेतुबन्धसरोवर-
प्रसङ्गो नाम पञ्चमः सर्गः

***

षष्ठः सर्गः

***

एवं संकथयन् विप्रो भानुजां प्रभुना समम् ।
उत्तीर्य्य दर्शयामास नन्दगेहं महावनम् ॥१॥
पूतनामोक्षणञ्चात्र शकटस्य विमोचनम् ।
तृणावर्त्तस्य दुर्वृत्तेर्हरिणात्र कृतो बधः ॥२॥
जृम्भमाणेन कृष्णेन चोदरे विश्वमद्भुतम् ।
दर्शितमत्र मात्रे सा भीताप्याशिषमाददौ ॥३॥
अत्रैव नामकरणं गर्गेण विहितं किल ।
मृत्तिकाभक्षणञ्चात्र विश्वरूपप्रदर्शनम् ॥४॥

इति श्रीकृष्ण चैतन्य चरितामृते चतुर्थ प्रक्रमे सेतुबन्ध सरोवर
प्रसङ्गोनाम पञ्चमः सर्गः ।

षष्ठः सर्गः

इस प्रकार प्रभु के सहित श्रीकृष्ण कथा आलाप करते करते विप्र श्रीकृष्ण दासने, यमुना पार होकर महावन एवं नन्द गृह को दिखाया ॥१॥

उन्होंने कहा, यहाँ पूतना मोक्ष हुआ था, शकट मोचन, यहाँ हुआ, दुर्वृत्त तृणावर्त्त का बध, श्रीहरिने यहाँपर किया था ॥२॥

यहाँ पर श्रीकृष्ण के मुख विवर में माने अद्भुत विश्व को देखा, भीता होने पर भी श्रीकृष्ण को आशिष प्रदान किया ॥३॥

नाम करण कार्य्य श्रीगर्गाचार्य्य ने यहाँपर किया था, मृत्तिका

दधिमन्थनदण्डं हि धृतवान् हि हरिः स्वयम् ।
मातृहर्षाय भगवान् नर्त्तितुं ह्युपचक्रमे ॥५॥
यशोदा तं क्रोड़े कृत्वा हसन्ती वीक्ष्य तन्मुखम् ।
स्तनं संपाययामास कौतूहलसमन्विता ॥६॥
दुग्धमुत्तापनं वीक्ष्य तं स्थाप्य सत्वरं सती ।
चुल्लास्थं दुग्धमुत्तार्य्य पायान्मन्थनसंस्थितम् ॥७॥

कृष्णोऽपि क्रोधेन समन्वितः स्वयं
भाण्डं च भित्त्वा दृशदश्मना किल ।
गृहं प्रविष्टो नवनीतकं चा-
शित्वाप्युलूभांङ्घ्युपरिस्थितो हसन् ॥८॥
ततो यशोदा स्वसुतस्य कर्म्म तत्
प्रलापितञ्चापि हसन्तमुद्ध्य ।

भक्षण; एवं विश्वरूप प्रदर्शन भी यहाँपर ही हुआ ॥४॥

स्वयं हरि यहाँपर दधिमन्थन दण्ड को धारण किये थे। मा, को आनन्दित करने के निमित्त भगवान् नृत्य प्रारम्भ किये थे ॥५॥

यशोदा, श्रीकृष्ण को अङ्कमें स्थापन कर श्रीकृष्ण के मुख को हँसकर कौतूहलाक्रान्त होकर स्तन्य पान कराने लगीं ॥६॥

दुग्ध का उत्तापित देखकर बालक कृष्ण को अङ्क से उतारकर दुग्ध रक्षार्थ मा गई थीं, चुल्ली से दुग्ध उतार कर पुनर्वार दधिमन्थन के स्थानपर सत्वर आ गई ॥७॥

कृष्ण भी क्रुद्ध होकर शिल से दधिभाण्ड भेदन किये थे। एवं गृह में प्रविष्ट होकर नवनीत भौजन किये थे, अनन्तर उलूखल के उपरिभाग में उपविष्ट होकर हँस रहे थे ॥८॥

यशोदाने पुत्र के कार्य्य को देखकर, तिरस्कार किया, एवं पलायन करेगा, इस भय से भीत होकर दाम से बन्धन किया। उससे

बबन्ध दाम्ना तमतो हि नाम्ना
दामोदरात्रैव बभूव प्रेमदः ॥९॥
दामोदरोऽत्र भगवान् बभञ्ज यमलार्ज्जुनौ।
धान्यं कृत्वा फलञ्चात्र बभुजे फलदेश्वरः ॥१०॥
अस्य दक्षिणपार्श्वे च गोलोकाख्यस्तु गोकुलम्।
बाल्यलीलां हि मात्रापि ह्यकरोदथ स हरिः ॥११॥
गोपेश्वरं देवमत्र पश्य सर्व्वेश्वरेश्वर।
सप्त सामुद्रकं कुण्डमत्र भुवनपावनम् ।१२।
आयानस्य गृहं ग्रामे पश्चिमे रसपूर्व्वकम्।
आनन्दाख्यो गोपकोऽप्यवसन्त्यस्यापि दक्षिणे ॥१३॥
उपनन्दगृहं नाम मध्ये कृष्णसुखप्रदम्।
अस्य पश्चिमभागे च रावणस्य तपोवनम् ॥१४॥
दुर्व्वाससो मुनेः कृष्णः आश्रमं ह्युत्तरेऽस्य च।
अस्यापि निकटे लोहवनं विल्ववनं प्रभो ॥१५॥

श्रीकृष्ण का नाम, प्रेम प्रदाता श्रीदामोदर हुआ ॥९॥

दामोदर भगवान् यहाँपर यमलार्ज्जुन भञ्जन किये थे। एवं फलदेश्वर श्रीकृष्ण धान्य देकर यहाँ पर फलक्रय किये थे ॥१०॥

इस के दक्षिण पार्श्व में गोलोक नामक गोकुल है। यहाँपर श्रीहरि, मात्रा के सहित बाल्य क्रीड़ा किये थे ॥११॥

यहाँ गोपेश्वर का दर्शन आप करें, आप सर्वेश्वरेश्वर हैं। यह सप्त सामुद्र कुण्ड भुवन पावन रूप में अवस्थित हैं ॥१२॥

पश्चिम दिक् के ग्राम में आनन्दकर आयान का गृह है। इसके दक्षिण में आनन्द नामक गोप का निलय है ॥१३॥

मध्य में कृष्ण सुखप्रद उपनन्द के गृह है, इस के पश्चिम भाग में रावण का तपोवन है ॥१४॥

अत्रापि पश्य नन्दस्य कृष्णः क्रीड़यतः सुखम् ।
बाल्यलीलारसं तस्मै ददाति परमाद्भुतम् ॥१६॥
मेघागमञ्च दृष्ट्वा स नन्द आह सुगोपिकाम् ।
कृष्णमादाय मद्गेहेश्वर्य्यै शीघ्रं समर्पय ॥१७॥
सापि तं स्वाङ्कमारोप्य चुम्ब्य चानन्दविह्वला ।
गाढ़मालिङ्गिता तेन विस्मिता विवशाभवत् ।१८।
श्रुत्वा कृष्णरसोल्लासं बालकस्यैव वैभवम् ।
गौरकृष्णः कृष्णदासं प्रेम्नालिङ्गितवान् स्वयम् ।१९।
अत्र पश्य च गोविन्द गोपालचरित शुभम् ।
गोचारणगतेनात्र कुण्डञ्च दधिना कृतम् ।२०।
अत्रैव चोपनन्दोऽपि नन्दमाहूय सुन्दरः ।

दुर्वासामुनि का आश्रय, इसके उत्तर में है, इसके निकट में लोहवन एवं विल्वबन है ॥१५॥

यहाँपर देखिये– नन्दनन्दन कृष्ण, सुख पूवक क्रीड़ा करते हैं, एवं पिता माता को आनन्दित करते हैं ॥१६॥

नन्दमहाराजने कहा—एक सुगोपिका को, मेघ आ रहा है, कृष्ण को ले जाकर यशोदा को दो ॥१७॥

गोपिका ने क्रोड़ में लेकर कृष्ण को चुम्बन किया, एवं आनन्द विह्वल हो गई, कृष्णने भी गाढ़ आलिङ्गन किया, उस से गोपिका विस्मिता होकर विवश हो गई ॥१८॥

कृष्णरसोल्लास को एवं श्रीकृष्ण के वैभव को गौरकृष्ण सुनकर स्वयं प्रेम पूर्वक कृष्ण दास को आलिङ्गन किये थे ॥१९॥

अनन्तर कृष्ण दास ने कहा प्रभु गोविन्द ! देखिये,—यहाँपर शुभ गोपाल चरित हुआ है, गोचारण हेतु आगमन कर दधि के द्वारा कुण्ड निर्म्माण कृष्णने किया ॥२०॥

यहाँपर सुन्दर उपनन्द गोप गणों से परिवृत होकर नन्द को

गोपैः परिवृतो युक्तैः कृष्णः कृष्णसुखाय च ॥२१॥

सव्रजः शकटमारुह्य रामकृष्णसमन्वितः ।

ययौ भद्रकभाण्डीरं द्वौ मासौ तत्र चावसत् ॥२२॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे महावनादिदर्शनं

नाम षष्ठः सर्गः ।

सप्तमः सर्गः

ततश्च यमुनापारे वृन्दारण्यं सनातनम् ।

तत्र नन्दादयो गोपा वासं चक्रुरतन्द्रिताः ।१।

पश्यात्र शकटैर्दुर्गं कृतं पित्रादिभिर्वृतौ ।

रामकृष्णौ खेलतश्च गोगोपालजनैः सह ।२।

कपित्थमूलेऽत्र जनार्द्दनेन बधः कृतो वत्सकरूपधारिणः ।

बुलाकर कृष्ण सन्तोषार्थ कहे थे ॥२१॥

नन्द भी ब्रज के सहित शकट आरोहण पूर्वक रामकृष्ण समन्वित भद्र भाण्डीर वनको गये थे एवं वहाँपर दो मास निवास किये थे ।२२

इति श्रीकृष्ण चैतन्यचरितामृते चतुर्थ प्रक्रमे महावनादि दर्शनं

नाम षष्ठः सर्गः ।

सप्तमः सर्गः

अनन्तर यमुना के पार देश में सनातन वृन्दारण्य अवस्थित है, वहाँपर नन्दादि गोपवृन्द निर्भय होकर स्वीय वासस्थान निर्माण किये थे ॥१॥

देखिये, यहाँपर पित्रादि गोपवर्ग ने शकटों के द्वारा दुर्ग निर्माण किये थे, वहाँ सुख पूर्वक रामकृष्ण, गो गोपालवृन्द के सहित खेलते थे ॥२॥

कपित्थ वृक्ष के मूल में जनार्दन ने वत्सक रूप धारी असुर को

वत्सासुरस्य वकवेशधारिणो वकासुरस्यापि च गौरचन्द्र ।३

अत्रैव श्रीरामजनार्द्दनौ च सवेणुवेत्रादियुतैः सखीजनैः ।

चिक्रीड़तुर्वानरपक्षसङ्कुलैर्मयूरवे कादिरुतैर्जगत्पती ।४

श्रुत्वा स्वयं कृष्णरसेन पूर्णः श्रीभक्तरूपो रसिकेंद्रमौली ।

पूर्व्वापराभ्यां विषयाश्रयावृतो लीलारसाभ्यां प्रभुगौरचन्द्रः ।५

अत्र पश्य च गौराङ्ग सर्परूपधरोऽप्यघः ।

वकानुजो महापापः प्राप्तस्तं चाहनद्धरिः ।६।

स्वजनैः सखिभिश्चात्र दृष्ट्वा भोजनकौतुकम् ।

स्वयम्भूर्वत्सरं वत्सस्वजनापहरोऽभवत् ।।७।।

धेनुकस्य बधश्चात्र कृपयास्य विमोचनम् ।

कालीयदमनश्चात्र ह्रदं पश्य सुनिर्म्मलम् ।८।

बध किया था, हे गौर चन्द्र ! वत्सासुर, एवं बक वेश धारी वकासुर का बध यहाँपर हुआ था ।।३।।

यहाँ पर ही श्रीराम एवं जनार्दन, वेणु वेत्र समन्वित सखीजन गण के सहित वानर, पक्षि सङ्कुल कानन में मयूररव से एवं नृत्य से क्रीड़ा करते थे ।।४।।

श्रीभक्त रूप रसिकेन्द्र मौली श्रीगौर हरि, लीला कथा श्रवण कर कृष्ण भक्ति रसास्वाद से पूर्ण हो गये थे । प्रभु गौर चन्द्र, पूर्वापर लीला आस्वादन से विषयाश्रयावृत होकर आनन्द मग्न हो गये थे ।५

हे गौराङ्ग ! यहाँ पर आप दर्शन कीजिये, सर्ग रूप धारण कारी अघस्वरूप वकानुज महापाप असुर का आगमन हुआ था, श्रीकृष्ण ने उस को विनष्ट किया ।।६।।

सखावर्ग के सहित भोजन कौतुक में रत श्रीकृष्ण यहाँपर थे, स्वयम्भूने कौतूहलाक्रान्त होकर वत्स बालक के सहित श्रीकृष्ण के स्वजन वृन्द को एकवत्सर यावत् अपहरण कर रखा था ।।७।।

यहाँ पर धेनुकासुर का बध हुआ था, एवं कृपा पूर्वक श्रीकृष्ण

कालीयदमनीञ्चात्र मूर्त्तिं पश्य जगद्गुरो।
शीतार्त्तच्छलतः कृष्ण उत्थितोऽत्र जलाद्ध्रदात् ।।९।।
अत्र च द्वादशादित्या उत्थिता गगनोपरि।
द्वादशादित्यघट्टोऽयं कथ्यते वेदपारगैः।।१०।।
अत्रैव वत्सपालानां दावाग्नेः परिमोचनम्।
कृतं नन्दकुमारेण भक्तदुःखापहारिणा।।११।।
क्रीड़ापराजितः कृष्णः श्रीदामानाम बालकम्।
उवाह परमप्रीतः प्रलम्बो रोहिणीसुतम्।।१२।।
ज्ञात्वासुरं पुनः सोऽपि मुष्टीकृत्य कराम्बुजम्।
शिरस्यताड़यत् तस्य सोऽपतद्गतजीवितः।।१३।।
भाण्डीराख्यं वटं वृन्दारण्ये पश्य महत्तमम्।

ने कालीय दमन कर ह्रद जल को भी विशुद्ध किया।।८।।

हे जगद् गुरो ! यहाँपर आप कालीय दमन मूर्त्ति का दर्शन करें, शीतार्त्त होकर श्रीकृष्ण, जल से बाहर निकले थे।।९।।

यहाँ गगनोपार द्वादशादित्य का उदय हुआ था, अतः वेदज्ञ व्यक्तिगण, इस स्थान को द्वादशादित्य नाम से कहते हैं।।१०।।

यहाँपर ही वत्स पालक गण को दावाग्नि से मोचन—भक्त दुःखाप हारी श्रीनन्द कुमार ने किया था।।११।।

श्रीकृष्ण बालक गणों के सहित क्रीड़ा में पराजित होकर श्रीदामा नामक बालक को श्रीकृष्ण ने निज कंधे से वहन किया था। एवं रोहिणी नन्दन बलराम को वहन किया था। उस समय आनन्दित होकर प्रलम्ब नामक एक असुर बलराम को वहन करने में प्रवृत्त हुआ, किन्तु बलराम उसे असुर जानकर उसके मस्तक में मुष्टि के द्वारा आघात किया, उससे असुर, पञ्चत्व प्राप्त किया था।।१२-१३।

यह भाण्डीर वट है, इसका दर्शन आप करें। वृन्दारण्य में यह

ईषिकाख्यवनं ह्यत्र गोधनं तृणलोभितम् ॥१४॥
प्रविष्टं वेणुनादेन कृष्णेनानीतमप्युत ।
दावानले मध्यगञ्च स्वगणं वीक्ष्य श्रीहरिः ।१५।
पपौ करनलीकृत्यानलं भक्तजनप्रियः ।
पश्य चात्र रसज्ञेन श्रीकृष्णेन कृतं हि यत् ।१६।
तमेव पतिमिच्छन्त्यो व्रतं चेरुः कुमारिकाः ।
अत्रैव यमुनातीरे वस्त्राभरणरक्षिताः ।१७।
विशन्तो जलमेवैतास्ततो नागरशेखरः ।
आदाय तासां वस्त्राणि नीपमारुह्य सत्वरः ।१८।
हसति शाखिभिः सार्द्धं ततस्ता शीतवेपिता ।
कृष्णं सन्तोषयामासुः शुद्धभावेन भाविताः ।१९।
श्रीरामेण समं कृष्णस्तमुद्दिश्य वनस्पतीन् ।

महत्तम वृक्ष है। यह ईषिकाटवी है, तृण लोलुप होकर गो गण यहाँ पर प्रविष्ट हुये थे ॥१४॥

श्रीकृष्ण ने वेणु वादन द्वारा धेनु वृन्द को एकत्र किया, किन्तु निज जन गण को उन्होंने लेलिहान जिह्वदावानलमें ग्रस्त देखा ।१५

भक्त जन प्रिय हरिने अनल को करतल के द्वारा पान किया। और यहाँपर रसज्ञ श्रीकृष्ण ने जो कुछ उसका दर्शन आप करें। श्रीकृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के निमित्त ब्रज कुमारिकाने व्रताचरण किया, इस यमुना के तोर में उन्होंने वस्त्र को उतार कर जल में अवतरण कियाथा। नागर शेखर श्रीकृष्ण सत्वर वस्त्राभरण कोलेकर कदम्ब वृक्ष के ऊपर चढ़ गये ॥१६-१७॥

सखा वर्ग के सहित हँसने भी लगे, वे सब शीत्तार्त्त हो गईं, अतः पर शुद्ध भावसे भावित होकर श्रीकृष्ण को सन्तुष्ट करने लगी ॥१८-१९॥

श्रीबलराम के सहित श्रीकृष्ण, वन शोभा देखने के निमित्त

वृन्दारण्यस्थितानत्र प्रशंसन् यमुनां गताः ।२०।
ततोऽत्र विप्रपत्नीभ्यश्चान्नमादाय यज्ञभुक् ।
बभुजे बालकैः साद्धं बलेनापि बलीयसा ।२१।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थे प्रक्रमे वस्त्रहरणादि-
लीलास्थलीदर्शनं नाम सप्तमः सर्गः ।

***

अष्टमः सर्गः

**

पुनश्च कंसशीतेन संमन्त्र्य स्वजनैः सह ।१।
नन्दीश्वरे निवासश्च चक्रे नन्देन सव्रजम् ।१।
गोवर्द्धनगिरौ रम्ये मनः स्वर्गनदीतटे ।
नित्यं विहरतः कृष्णरामौ सखिसमन्वितौ ।२।

वृन्दावन में प्रविष्ट हुये थे, एवं वृन्दावनस्थ तरु वृन्द की प्रशंसा कर यमुना के तीर में आगये थे ॥२०॥

अनन्तर यहाँपर विप्र पत्नी गण के निकट से अन्न ग्रहण कर यज्ञ भुक् श्रीकृष्ण,बलराम एवं अन्यान्य बालकों के सहित अन्न भोजन किये थे ॥२१॥

इति श्रीकृष्ण चैतन्य चरितामृते चतुर्थ प्रक्रमे वस्त्र हरणादि
लीलास्थली दर्शनं नाम सप्तमः सर्गः ।

अष्टमः सर्गः

पुनर्वार कंसभय से भीत होकर निज जन वृन्द के सहित मन्त्रणा करके नन्द महाराज एवं व्रज वासीका वासस्थान श्रीकृष्ण ने नन्दीश्वर में किया था ॥१॥

मनोहर गोवर्द्धन गिरि के तट देश में एवं मानसी गङ्गा के तटदेश में सखा वर्ग एवं श्रीबलराम के सहित श्रीराम कृष्ण, निरन्तर

इन्द्रगर्व्वनिरासार्थं सप्तवर्षो हरिः किल ।
गिरिं दधार हर्षेण स्वानां रक्षां विचिन्तयन् ।३।
नौक्रीड़ां कृतवान् कृष्णो गङ्गायां रसकौतुकी ।
कुर्व्वन्ति मथुरां गोष्ठे लोकागमननिर्गमे ।।४।।
अत्र दाननिमित्तं हि प्रस्तरांशं विशन् हरिः ।
गोपिका रमयन् रेमे भक्तानुग्रहकाम्यया ।।५।।
पश्यन् श्रीगौरचन्द्रः सरसनकुतुकाद्वाह्यवृत्ति विहार ।
वंशीश्रीवत्सवेत्रैः कुसुमकिसलयैर्मण्डितं श्यामधाम ।
दानं मे देहि राधे रसवति विमने दानपात्रेऽवद् यः
ह्येवं तं स्तौति गौरः सजयतिखलुभो राधिकाप्राननाथः ।।६
तदैव सहसा भक्तिरसाविष्टोऽखिलेश्वरः ।
पाषाणं सजलं कृत्वा लिलेप शिरसि रुदन् ।।७।।

विहार करते थे ।।२।।

इन्द्र गर्व निरास निबन्धन सप्त वर्ष वयस्क बालक श्रीकृष्ण, अति हर्ष से निज वर्ग की रक्षा हेतु गिरिधारण किये थे ।।३।।

रस कौतुकी श्रीकृष्ण, गङ्गा में नौ क्रीड़ा किये थे । एव मथुरा गमनरत जन गण को पार करते थे ।।४।।

यहाँ पर दान प्राप्ति हेतु सङ्कीर्ण प्रस्तर मार्ग में श्रीकृष्ण आ गये थे । एवं भक्त वृन्द को अनुग्रह करने के गोपिका के सहित विहार किये थे ।।५।।

श्रीराधिका प्राणनाथ, श्यामधामा गौरचन्द्र, शाँकरी खोर को देखकर रसास्वादन कौतुक से वाह्य वृत्ति को परित्याग कर वंशी वेत्र श्रीवत्स एव कुसुम किसलय से मण्डित होकर कहने लगे,— हे रसवति राधे ! दान प्रदान मुझ को करो, इस प्रकार लीलापरायण श्रीगौर हरि की जय हो ।।६।।

उसी समय अखिलेश्वर श्रीगौर हरि भक्ति रसाविष्ट होकर

गिरेः पूर्व्वे कुण्डयुग्मं पश्य कृष्णरसप्रदम् ।
अस्य दक्षिणपार्श्वे च रासमण्डलमुत्तमम् ॥८॥
श्रीराधाकृष्णयो रासविलासस्थानमत्र वै ।
पश्य प्रेमरसैः पूर्णैर्भक्तैरेव विभाव्यते ॥९॥
राधामाधवयोरैक्यात्तत्तद्भावविभावितः ।
तत्तल्लीलानुकरणं गौराङ्गः समदर्शयन् ॥१०॥
भावप्रकाशकं कृष्णं प्राह ब्राह्मणसत्तमः ।
पर्व्वतोपरि संपश्य राधिकाराधनस्थलम् ॥११॥
अन्नकूटस्थलञ्चात्र सुरेशगर्व्वनाशकम् ।
इन्द्रोत्पातं हरिर्वीक्ष्य गोवर्द्धनधरोऽभवत् ॥१२॥
पर्व्वतोपरि तं पश्य हरिरायाख्यकं विभुम् ।
तस्योपरि दक्षिणेऽपि गोपालरायसंज्ञकम् ।१३।

सहसा रोदन कर पाषाण को नेत्रवारि से अभिसिञ्चित किये थे ।।७।

गिरि के पूर्व भाग में दर्शन करें—कुण्ड युगल विद्यमान हैं, यह कुण्ड श्रीकृष्ण प्रीतिद हैं, इस के दक्षिण पार्श्व में उत्तम रासमण्डल है ।।८।।

श्रीराधा कृष्ण के रास विलास का यह स्थान है, अवलोकन करें, प्रेमरस पूर्ण भक्त वृन्द इस की भावना करते हैं ।।९।।

श्रीराधामाधव के एकीभूत वपुः श्रीगौर हरि, उनलीला में आविष्ट होकर लीलानुकरण करने लगे थे। सङ्गी ब्राह्मण ने, भाव प्रकाशक गौर हरि का सम्बाधन कर कहा, देखिये, पर्वत के उपरि भाग में राधिका का आराधन स्थल विद्यमान है ।।१०--११।।

सुरेशगर्व बिनाशक अन्नकूट स्थल यहाँपर है,—श्रीहरि ने इन्द्रोत्पात को देखकर गोवर्द्धनधारण किया ।।१२।।

पर्वत के ऊपर दक्षिण भाग में देखिये श्रीहरिराय नामक प्रभु

इन्द्रगर्व्वनिरासे च ब्राह्मणा चोदिता सती ।
सुरभो स्वर्णदीतोयेनाभिषेकं मुदाकरोत् ।१४।
गोविन्दस्य च वेदाद्यैः सेवितस्य महोत्तमे ।
कृतागरको महेन्द्रोऽपि यः स्तुत्वा निर्भयोऽभवत् ।१५।
सर्व्वपापहरं कुण्डं पश्य पर्व्वतदक्षिणे ।
अस्योपरि पञ्चकुण्ड ब्रह्मरुद्रेन्द्रसूर्य्यकम् ।१६।
मोक्षेतिकुण्डसंज्ञञ्च सर्व्वपापहरं शुभम् ।
पश्यन् गौरहरिः कृष्णः प्रेम्नोवाच द्विज प्रभुः ॥१७॥
धन्योऽयं गिरिराज एव जगति श्रीकृष्णरामौ मुदा
यत्र क्रीड़त एव सन्ततमहो गोपालवालैः सह ।
एवं जल्पति प्रेमपूर्णरसदः श्रीगौरचन्द्रः स्वयं
श्रीगोवर्द्धन एव साग्रहमपि तं पूजयन् नृत्यति ।१८।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे श्रीगोवर्द्धनादि-
दर्शनं नामाष्टमः सर्गः ।

विद्यमान हैं, उस के उपर देक्षिण में श्रीगोपाल राय नामक विग्रह विद्यमान हैं ॥१३॥

वेदादि के द्वारा पूजित श्रीगोविन्द यहाँपर विराजित हैं, अपराधी महेन्द, इनकी स्तुति करके निर्भय हुये थे ॥१५॥

सर्वपाप हर कुण्ड पर्वत के दक्षिण भाग में है। इस के उपरि भाग में ब्रह्म, रुद्र, इन्द्र सूर्य्य नामक पञ्चकुण्ड हैं ॥१६॥

यहाँ मोक्ष कुण्ड है, ज सर्व पापहर शुभ कुण्ड है। देखकर प्रभु श्रीगौर हरि ने ब्राह्मण को कहा ॥१७॥

यह गिरिराज जगत में धन्य है, जहाँ श्रीराम कृष्ण, गोप बालक गण के सहित निरन्तर क्रीड़ा करते हैं। प्रेम पूर्ण रसद श्रीगौर हरि स्वयं, इस प्रकार कह कर गोवर्द्धन की पूजा करते करते नृत्य करने

नवमः सर्गः

**

अत्रैव यमुनानीरे द्वादशीव्रतकर्शितः ।
वरुणेन हृतो नन्दः कृष्णदर्शनकाम्यया ।१।
ज्ञात्वा ततोऽपि भगवान् स्वयं पितरमानयन् ।
ब्रह्मकुण्डे मज्जयित्वा स्वजनं ब्रह्मलोकतः ।२।
आनिनाथ पुरर्वृन्दारण्यं गोपकुल विभुः ।
तं कुण्डं परमं रम्यं पश्य कृष्णसुदुर्लभम् ॥३॥
अशोककाननं रम्यं ब्रह्मकुण्डस्य चोत्तरे ।
श्रीराधया सह कृष्णो यत्र क्रीड़ति पश्य तत् ॥४।

लगे थे, उस समय श्रीगोवर्द्धन ने भी सादर पूर्वक उनकी पूजा की ।१८

इति श्रीचैतन्य चरितामृते चतुर्थ प्रक्रमे श्रीगोवर्द्धनादि दर्शनं नामाष्टमः सर्गः ।

**

नवमः सर्गः

यहाँपर द्वादशी व्रत कर्शित श्रीनन्द महाराज यमुना तीर में स्नानार्थ प्रविष्ट होनेपर, वरुण ने कृष्ण दर्शनाभिलाषी होकर उनको अपहरण किया ॥१॥

भगवान् कृष्ण, यह जानकर वरुण लोक से पिता को ले आये थे, एवं उत्सुकाक्रान्त निज जनगण को ब्रह्मकुण्ड में निमज्जित कराके ब्रह्म लोक दर्शन करवाये थे ॥२॥

पुनर्वार श्रीकृष्ण से उन सब को वृन्दारण्य में ले आकर सुखी किये थे । वह परम मनोहर कुण्ड यह है । इसका दर्शन आप करें । यह परम मनोहर एवं सुदुर्लभ है ॥३॥

रम्य अशोक कानन ब्रह्म कुण्ड के उत्तर में विराजित है, जहाँ श्रीराधा के सहित श्रीकृष्ण निरन्तर क्रीड़ा करते रहते हैं, उसका दर्शन करें ॥४॥

कीर्त्तिकीपूर्णिमायान्तु देवदेवेश्वरो हरि:
चकार रासं गोपीभिर्यत्र श्रीश्यामसुन्दर: ।५।
तदैव रसिकाग्रणी: स खलु गौरचन्द्रो हरि:-
र्महामणिनिभद्युति: प्रकटमेव व्यक्तोभवत् ।
स रासरसताण्डवैर्विविधरम्यवेशोज्ज्वलै:
रत्नोक्षितसुलक्षितैर्जयति भक्तवर्गै: प्रभु: ।६।
प्रफुल्लमधुरद्युति: सरसरम्यवृन्दावनं
वसन्तवनमारुतै: प्रकटयन् स रासोत्सवै: ।
सुरम्यमपि किं ब्रुवे सकलमेव रासस्थलं
स गोपीजनवल्लभो मदनगर्व्वखर्व्वो बभौ ।७।
दृष्ट्वा विप्रस्तथाभूतं तथापीश्वरमायया ।
वृतं स दर्शयामास पूर्व्वलीलास्थलीं शुभाम् ।।८।।
अतस्तं पश्य गोविन्दो वंशीवटसमीपत: ।

देव देवेश्वर श्रीहरि, कार्त्तिकी पूर्णिमा में श्यामसुन्दर जहाँ पर गोपिगणों के सहित रास किये थे । उसका दर्शन करें ।५।

उसी समय रसिकाग्रणी गौर हरि, महामणि के समान कान्ति विशिष्ट हो गये थे । एवं रासरस ताण्डव के उपयोगी विविधोज्ज्वल वेश भूषा से बिभूषित होकर भक्त वर्ग के सहित प्रभु गौर हरि सुशोभित हुये थे ।।६।।

गोपीजन वल्लभ मदनगर्वापहारक गौर हरि, प्रफुल्ल मधुर द्युति सम्पन्न होकर सरस रम्य वृन्दावन को वसन्त वन मारुत एवं रासरसोत्सव को सुरम्य कर सकल रासस्थल कोउद्भासित किये थे ।।७।।

विप्र ने उस प्रकार देखा, तथापि ईश्वर माया से गुप्त होकर उक्त लीलास्थली का सन्दर्शन करवाया था ।।८।।

स्थितो जगौ कामवीजं गोपीजनविमोहनम् ॥९॥
श्रुत्वा सुललितं गानं गोप्यस्तत्र समाययुः।
ताभ्यः प्रेममदाद्वाह्यं कृष्णो धर्म्ममशिक्षयत् ।१०।
तासां विशुद्धसत्वञ्च भावदाता च प्रेमदः।
चकार रासमप्यत्र कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।११।
अत्र तं पश्य गौराङ्ग गोविन्दरसकौतुकी ।
वृन्दावनाधिपत्यञ्च चकार रसवल्लभम् ।१२।
एवं रासरसामोदी गोपीनां रागवृद्धये।
एकामादाय सहसा तिरोभूतोऽत्र पश्य तत् ।१३।
तस्याः सुचरितं केन वर्ण्यते श्रूयतेऽथवा ।
यस्याः प्रेमपराधीनस्तां हि स्वाधीनभर्त्तृकाम् ॥१४॥

अतएव आप देखिये, वंशवट के समीप में श्रीगोबिन्द स्थित हैं, जिन्होंने गोपीजन विमोहन काम वीज का गान किया था ॥९॥

सुललित गान को सुनकर गोपिका गण वहाँपर आ गई थीं, उन सब को श्रीकृष्ण ने प्रेमदान तो दिया किन्तु बाहर धर्म शिक्षा भी दी ॥१०॥

गोपिका को विशुद्ध प्रेम दाता, योगेश्वरेश्वर कृष्ण, यहाँपर रासका अनुष्ठान भी किया था ।११।

हे गोविन्द रस कौतुकी गौराङ्ग आप उस को देखें। जहाँ रस वल्लभ वृन्दावनाधिपत्य का भी विस्तार हुआ ।१२।

इस प्रकार रास रसामोदी कृष्ण, गोपियों की राग वृद्धि के निमित्त सहसा तिरोभूत होकर एक गोपी को लेकर चले गये थे ।१३।

उस गोपीके सुचरित्र की कथा क्या कहूँ, कौन वर्णन कर सकते हैं ? अथवा नहीं सुनने में भी आता है ? जिसके प्रेम पराधीन होकर श्रीकृष्ण रहे थे, उन स्वाधीन भर्त्तृका को भी परित्याग कर श्रीकृष्ण चले गये ॥१४॥

तत्याज कौतुकी कृष्णस्त्वतोऽस्या सन्निधिं हसन् ।
सोऽपि कृष्णं न पश्यन्ती विह्वला तत्सखीजनाः ॥१५

मिलिताः कृष्णजन्मादिलीलातन्मयतां ययुः ।
गोपप्रेमपराधीनैस्तत्तद्रूपप्रकाशिकाम् ।१६।

ताभ्यः स्वविरहव्याधिपीड़िताभ्यो निजां तनुम् ।
प्रहसन् दर्शयामास कृष्णो नारायणः स्वयम् ॥१७॥

ताभिः सम्मानितः कृष्णः परिहासे पराजितः ।
रासं चकार धर्म्मज्ञो मण्डलीं परिकल्पयन् ॥१८॥

विलासरसमाधुरीरसमदेन मत्तः किल
संनीय सुबलजनान् यमभगिनीतीरं हरिः ।
प्रकाश्य बहुरूपतां जगदनङ्गसम्मर्द्दनो
रराज व्रजसुन्दरीनिजभुजैस्तु बद्धः स्वयम् ॥१९॥

कौतुकी कृष्ण हँस हँस कर उनके सानिध्य को छोड़ दिये थे। श्रीराधा भी कृष्ण को न देखकर विह्वला हो गई थीं। उनकी सखी वृन्द, अन्वेषण परायणा हो कर वहाँ पर आकर उन से मिली थीं, अनन्तर सब गोपी तन्मय होकर श्री कृष्ण की जन्मादि लीला का अनुकरण करने लगी। प्रेम पराधीन होकर उन उन रूप का प्रकाशन भी कृष्ण ने किया ॥१५-१६॥

कृष्ण विरह व्याधि से प्रपीड़ित गोपिका वृन्द को देखकर निज तनु प्रकट उन सब के सन्निकट में किये थे। एवं हास्य विनोद से कृष्ण स्वयं नारायण रूप प्रदर्शन किये थे ॥१७॥

गोपिकाने तो उनको सम्मान किया, एवं परिहास में कृष्ण भी पराजित हो गये, पश्चात् धर्मज्ञ कृष्ण ने मण्डली बन्धन के द्वारा रासानुष्ठान भी किया ॥१८॥

विलास रस माधुरी रस से मत्त होकर यम भगिनी के तीर में गोपाङ्गनागण को ले आकर अनेक रूप प्रकट कर जगदनङ्ग समर्दन

श्रुत्वा रासविलासवैभवरसं श्रीगौरचन्द्रो हरिः
प्रेमोन्मादविभिन्नधैर्य्यनिवहो माधुर्य्यसारोज्ज्वलः ।
राधाकृष्णं व्रजबधूगणैर्वेष्टितं संविभाव्य
प्राकट्यं तत् स्वात्मनि तथोदर्शयन् संबभौ स्म ।२०।
इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थ प्रक्रमे महारासस्थली-
दर्शनं नाम नवमः सर्गः ।

**

दशमः सर्गः

***

ततश्च पश्यामि वसन्तवेशौ श्रीरामकृष्णौ व्रजसुन्दरीभिः ।
चिक्रीड़तुः स्वस्वयूथेश्वरीभिः समं रसज्ञौ कलधौतमण्डितौ ।१
नृत्यन्तौ गोपीभिः सार्द्धं गायन्तौ रभसान्वितौ ।
गायन्तीभिश्च रामाभिर्नृत्यन्तीभिश्च शोभितौ ॥२॥

हरि व्रजसुन्दरी गणों के भुजों से आबद्ध होकर शोभित हुये थे ॥१९॥

श्रीगौर चन्द्र हरि, रास विलास वैभव को सुनकर प्रेमोन्माद से विभिन्न धैर्य्य हुये थे। एवं व्रज बधूगण के सहित वेष्टित होकर लीलाविभोर हैं, इस प्रकार भाव को प्रकट कर शोभित हुये थे ॥२०॥

इति श्रीकृष्णचैतन्य चरितामृते चतुर्थ प्रक्रमे महारास स्थली
दर्शनं नाम नवमः सर्गः ।

दशमः सर्गः

अनन्तर व्रजसुन्दरी वृन्द के सहित श्रीरामकृष्ण, वसन्त वेशसे विभूषित होकर विविध नृत्य गीत के सहित रास क्रीड़ा किये थे ॥१॥

गोपी गण के सहित नृत्य कर रहे थे, गान कर रहे थे। प्रीति पूर्वक व्रजगनागण गान करने पर उन सबके सहित नृत्य कर शोभित हुये थे ॥२॥

तयोरित्थं विहरतो शङ्खचूड़श्च दुर्म्मतिः ।
कदर्थयन् गोपीजनान् ताभ्यां समुपलक्षितः ।३।
हृतमस्य शिरोरत्नं कृष्णेनापि हृतः खलः ।
दत्तं श्रीबलदेवाय मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।४।
पश्यन्तीनाञ्च गोपीनां श्रीकृष्णेन सकौतुकम् ।
तेनापि तन्निजप्रेष्ठं दत्तं तत् प्रेयसीं प्रति ।५।
गोभिः समं प्रतिवनं प्रतिगच्छतोः श्री–
वक्त्रं मुकुन्दबलयोर्व्रजसुन्दरीभिः ।
अक्षण्वतां फलमिदमिति गीतमत्र
शृण्वन् प्रभुः पुलकितः किल रोरवीति ।६।
मुकुन्दाख्यवनं पश्य श्रीदामसुबलादिभिः ।

राम कृष्ण, उस प्रकार विहाररत होने पर दुर्मति शङ्ख चूड़ का आगमन वहाँपर हुआ । एवं गोपी वृन्द को कर्दथित करने लगा, उस समय राम कृष्णने उस को देख लिया ॥३॥

श्रीकृष्णने उसको मारकर शिरोरत्न का अपहरण कर श्रीबलदेव को मणिरत्न स्यमन्तक को दे दिया ॥४॥

श्रीकृष्ण के सहित कौतुक परायण गोपीवृन्द को देखकर बलराम ने श्रीकृष्ण प्रेयसी श्रीवृषभानुनन्दिनी को उक्त स्यमन्तकमणि उपहार स्वरूप प्रदान किया ॥५॥

गोचारण लीला में श्रीकृष्ण बलराम एवं गो वृन्द के सहित प्रति वन में भ्रमण करते थे, उस समय रामकृष्ण के वदनारविन्द को देखकर व्रजसुन्दरीगण नयन प्राप्त होने का फल अनुभव कर जो कही थीं, उस की वाणी को सुनकर प्रभु पुलकित होकर पुनः पुनः अतिशय रोदन करने लगे थे ॥६॥

आगे आपने कहा, यह देखें– मुकुन्दाख्य वन है, यहाँ श्रीदाम सुबलादि के सहित श्रीराम कृष्ण आनन्दचित्त से क्रीड़ा करते थे ।७।

सह संक्रीड़तः कृष्णरामौ यत्र सुनिर्भरम् ।७।
अत्र सरस्वतीतीरे अम्बिकाख्यं वनं जनः ।
पूज्यते शङ्करो देवो गौरी च व्रजवासिभिः ।।८।।
मुनेः शापात् सर्पदेहं प्राप्तो नाम सुदर्शनः ।
नन्दार्द्धं गिलिते कृष्णेनोद्धृतः पादसस्पृशन् ।९।
गन्धर्व्व इति विख्यातस्तस्थो सन्तोषयन् हरिम् ।
ययावत्र निजं धाम कृष्णसंकीर्त्तनैर्मुदा ।१०।
वृषभानुपुरं पश्य यत्र वृन्दावनेश्वरी ।
प्रादुर्भूता महालक्ष्मी राधाकृष्णविलासिनी ।।११।।
गिरि रैवतकं पश्य बलदेवो रसाग्रणीः ।
यत्र गोपीजनैः क्रीड़न् द्विविदं परिचूर्णयत् ।१२।
ययौ यामुनकं तीरं कालिन्दीं तां विकर्षयन् ।

यहाँ सरस्वती तीर में अम्बिका वन है, यहाँ व्रजवासीजनगण गौरी एवं शङ्कर की पूजा करते हैं ।।८।।

सुदर्शन नामक गन्धर्व, मुनिशाप ग्रस्त होकर सर्पदेह प्राप्त किया था, अनन्तर नन्द महाराज के चरण के अर्द्ध को ग्रास किया था, इसे श्रीकृष्ण ने देख लिया और चरणस्पर्श से उस को मुक्त कर दिया। यह गन्धर्व था, प्रसिद्ध गन्धर्व देह प्राप्तकर श्रीहरि को सन्तुष्ट करने के निमित्त स्तव किया, एवं आनन्द से श्रीकृष्ण सङ्कीर्त्तन करके निज धाम को चला गया ।।९–१०।।

यह है, वृषभानु पुरी, यहाँ कृष्ण विलासिनी, वृन्दावनेश्वरी महालक्ष्मी राधा प्रादुर्भूता हुई थीं ।।११।।

रैवतक गिरि यह देखें, यहाँ रसाग्रणी बलदेव, गोपीवृन्द के सहित क्रीड़ा करते करते द्विविद बानर को चूर्ण विचूर्ण किये थे ।।१२

कालिन्दी को आकर्षण कर क्रीड़ा करने के निमित्त गोपीगण

यथेच्छं जलमाविश्य क्रीड़न् गोपीभिरच्युतः ।१३।
श्रीरमासाद्य वासोभिर्विभूष्य भूषणं वरैः ।
गोपीभिस्ता भूषयित्वा क्रीड़ति कृष्णकौतुकी ।१४।
नन्दग्रामोत्तरे पश्य पावनाख्यं सरोवरम् ।
यत्र नन्दस्य गोवत्साश्चरन्ति कृष्णपालिताः ।१५।
नन्दीश्वरपश्चिमे च वनं हि काम्यपूर्व्वकम् ।
पिच्छलाख्यं पर्व्वतोऽयमत्र तिष्ठति निर्म्मलः ।१६।
पिच्छले खेलतः कृष्णरामौ च बालकैः सह ।
अरिष्टकेशिव्योमाद्या वृषाश्च मेषरूपिणः ।१७।
पञ्चत्वमापिताः कृष्णात् सर्व्वमोक्षाधिकारिणः ।
कृष्णोऽपि बालकैः सार्द्धं यत्र क्रीड़ति सर्व्वदा ।१८।
खदिराख्यं वनं रम्यं फलपुष्पसमन्वितम् ।
मन्दवायुभिराकीर्णं पश्य गौराङ्गसुन्दर ।१९।

के सहित अच्युत यथेच्छ जल में प्रवेश किये थे ॥१३॥

कृष्ण कौतुकी विविध वसन भूषण से भूषित होकर गोपिगण को विचित्र वसनालङ्कारों से भूषित करके क्रीड़ा यहाँपर किये थे ।१४

नन्दग्राम के उत्तर में पावनाख्य सरोवर है,जहाँ नन्द महाराज के गावत्स वृन्द कृष्ण पालित होकर विचरण करते थे ॥१५॥

नन्दोश्वर के पश्चिम में काम्यवन है, वहाँपर पिच्छल नामक निर्मल पर्वत विद्यमान है ॥१६॥

पिच्छल पर्वत में बालक वृन्द के सहित रामकृष्ण क्रीड़ा कर रहे थे, उस समय अरिष्ट केशि व्योम वृष एवं मेषरूप धारी असुर वृन्द का आगमन हुआ था, कृष्णने उस सब को पञ्चत्व प्राप्त कराकर मोक्ष प्रदान किया एवं बालक वृन्दों के सहित सदा क्रीड़ा करता रहा ॥१७–१८॥

अत्रैव गोपिभिः सार्द्धं राधाकृष्णौ निरन्तरम् ।
क्रीड़तः कौतुकाविष्टौ क्रयविक्रयलीलया ।२०।
निकुञ्जनवमल्लिकानवतमालसालार्ज्जुनै-
रशोकनवमाधवीनवरसालसघैः किल ।
मयूरशुककोकिलै रभसमेव संशोभिते
सुपुष्पपरिसंस्थितौ जयत एव राधामाधवौ ।२१।
सुरम्यसखीचातुरीचरितचारुवंशीस्वनैः
प्रगल्भतरुणीजनैर्हसितगीतनृत्योत्सवैः ।
सहैव सततः स्मरमदनयुक्तलीलापरौ
रासेश्वरी-रासेश्वरौ रसविशेषपालोत्सुकौ ।२२।
राधाकृष्णविलासवैभवरसं श्रुत्वा रुदन्नप्यसौ
तत्तद्रूपप्रकटनपरो माधुरीधुर्य्यसारम् ।

खदिर वन यह है, रम्य है, एवं फल पुष्प समन्वित है । हे गौराङ्ग सुन्दर, देखो, मलयमन्द समीरण से यह आन्दोलित है ।।१६।।

यहाँ पर ही निरन्तर क्रय विक्रय लीलामें आविष्ट होकर राधाकृष्ण, कौतुक पूर्ण लीला विलास करते रहते हैं ।।२०।।

निकुञ्ज, नवमल्लिका, नव तमाल, साल, अर्जुन, अशोक, नव माधवी, नवरसाल सङ्घ मण्डित, एवं मयूर, शुक कोकिल शोभित सुपुष्प विकशित वन में श्रीराधा माधव निरन्तर क्रीड़ा करते रहते है ।।२१।।

रासेश्वरी एवं रासेश्वर सतत सुरम्य सखी चातुरी चरित्र सारको वंशी निनाद के द्वारा मुखरित कर प्रगल्भ तरुणी जन के सहित विविध हास्य नृत्य गीत उत्सव के द्वारा उत्सुकता के सहित लीलारस विशेष का आस्वादन यहाँपर करते हैं ।।२२।।

राधाकृष्ण विलास वैभव रस को सुनकर प्रभु प्रेमावेश से

व्यक्तीकृत्य स जगति पुनर्गोष्ठभावेन पूर्णः
सान्द्रानन्दो विजयति परं श्रीशचीनन्दनोऽयम् ।२३।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे श्रीनिकुञ्ज-यमुनादि-दर्शनं नाम दशमः सर्गः ।

***

एकादशः सर्गः

**

एवं स नित्यलीलाभिर्दिव्यति व्रजभूमिषु ।
प्रकटानुमतेनापि कथ्यते यत्तथा शृणु ।१।
कंसेन प्रहितोऽक्रूरो रथेनागतवान् पथि ।
स्मरन् श्रीरामकृष्णौ च तयोर्द्दर्शनलालसः ।२।
नानामनोरथैः पूर्णः प्रेमाश्रुपुलकैर्वृतः ।

रोदन करने लगे थे, एवं उन उन रूपों में विभोर होकर माधुर्य्य सार को सुव्यक्त किये थे। पुनर्वार प्रकृतिस्थ होकर श्रीशचीनन्दन प्रभु सान्द्रानन्द परिपूर्ण होकर उत्कर्ष मण्डित हुये थे।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे श्रीनिकुञ्ज यमुनादि दर्शनं नाम दशमः सर्गः ॥

**

एकादशः सर्गः

इस प्रकार श्रीकृष्ण व्रज भूमि में प्रकट लीलानुसार जिस प्रकार विहार करते थे, उस का विशेष वर्णन करता हूँ, श्रवण करें।१

श्रीरामकृष्ण के दर्शनेच्छु होकर कंस प्रेरित अक्रूर रथारोहण पूर्वक व्रजागमन किये थे ॥२॥

यहाँ पर विविध मनोरथ करते हुये अक्रूर आये थे, एवं श्रीकृष्ण के चरण चिह्न को देखकर प्रेम विमिश्र धैर्य्य एवं प्रेमाश्रु

ददर्श चरणाम्भोजचिह्नमत्रैव पावनम् ।३।
रथादुत्थाय शिरसि धूलिमादाय सत्वरम् ।
दण्डवत् पतितो भूमौ दृष्ट्वा श्रीरामकेशवौ ।४।
आभ्यां सम्मानितो नीतः स्वगृहं परमादरात् ।
पूजितः स्वन्नपानाद्यैर्नन्देन सुमहात्मना ।५।
कंसचिकीर्षितं श्रुत्वा रामकृष्णसमन्वितः ।
नन्द आघोषयद्गोष्ठं मथुरागमनाय च ।६।
एवं श्रुत्वा परमसुखदौ रामकृष्णौ ददर्श च ।
वात्सल्ये सारभूता सा यशोदा रामकृष्णयोः ।
करं धृत्वा क्रोड़ीकृत्य बभाषे सत्वरं हरिम् ।।७-८।।
ततः किं मां परित्यज्य मथुरां गन्तुमिच्छथः ।
न दृष्ट्वा मुखचन्द्रं वां कथं धास्यामि जीवितम् ।९।

पुलकावृत हुये थे ।।३।।

श्रीराम कृष्ण को देखकर सत्वर रथ से उठकर दण्डवत् भूमि में पतित होकर प्रणाम किये थे, एवं श्रीराम कृष्ण की चरण धूलिसे निज मस्तक को विभूषित किये थे ।।४।।

श्रीराम कृष्ण ने अक्रूर को सम्मान एवं सादर पूर्वक घर में ले गये थे, एवं महामनाः श्रीनन्दमहाराज के द्वारा उत्तम अन्न पानादि उपहार से पूजित होकर आप्यायित हुये थे ।।५।।

कंस महाराज के अभिप्राय को अवगत होकर रामकृष्ण के सहित नन्द महाराज ने गोष्ठ वासी को मथुरा गमन वार्त्ता कहा ।।६।

अक्रूरने कंसमहाराज का समस्त वृत्तान्त कहने के पश्चात् परम सुखद रामकृष्ण का दर्शन किया । बात्सल्य सारमूर्त्ति यशोदा ने रामकृष्ण के कर धारण कर एवं अङ्क में स्थापन कर श्रीहरि को कही, ।।७-८।।

तुम दोनों क्या मुझ को छोड़कर ही मथुरा जाना चाहते हो ?

न हि न होति मातस्त्वत्सन्निधिं क्रोड़मास्थितो ।
तिष्ठावस्त्वं विजानीयाः सत्यं सत्यं न संशयः ।१०।
श्रुत्वा प्रेमपरीतात्मा चुम्वमाना मुखं तयोः ।
स्थिरीभूत्वा सुखं मेने रामकृष्णौ हृदिस्थितौ ॥११॥
एतन्मध्ये परमविवशा दुःखसन्तप्तचित्ता
शून्यं मत्वा सकलभुवनं दासिकाः पृच्छमानाः ।
कोऽसौ दूरात् शमनसदृश आगतो राजदूतो
नन्दद्वारि सकलव्रजजनप्राणसंबाधकारी ॥१२॥
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्व्वा रामकृष्णात्मकेहया ।
नानाभावैरूपेतारता दिव्योन्मादसुलक्षणाः ॥१३॥
एतन्मध्ये स्वस्वपार्श्वे सर्व्वास्ता व्रजसुभ्रवः ।

चन्द्रमुख को न देखकर मैं कैसे जीवित रहूँगी ? ॥९॥

"नहीं नहीं" इस प्रकार कृष्णने कहा, और कहा, मा ! तुम्हारे अङ्क में ही रहूँगा, सत्य जानना, इस में संशय न करो ॥१०॥

सुनकर यशोदासुखी हो गईं, और राम कृष्ण के मुख चुम्बन कर सुस्थिर हुई, राम कृष्ण को भी निज हृदय में अवस्थित रूपमें अनुभव करने लगीं ॥११॥

इस के मध्य में जगत् को शून्य देखकर दासिका को "यमराज सदृश राजदूत कहाँ से आया ? नन्द द्वार में उपस्थित यह कौन है ? सकल व्रजजन प्राण हरण कारी कैसे यह आया है ?" पूछ पूछ कर व्रजस्त्रीगण एकत्र हो गई ॥१२॥

कृष्णगत प्राण व्रजस्त्री गण राम कृष्ण की मथुरागमन वार्त्ता को सुनकर नानाभाव मण्डित होकर दिव्योन्माद की चरमदशा में उपस्थित हो गई ॥१३॥

इस के मध्य में व्रजललना गण, प्रेम विह्वल होकर निज निज

स्वस्वनाथं सुखेनैव पश्यन्त्यः प्रेमविह्वलाः ।१४।
तद्दर्शनमहानन्दैः सम्पूर्णाः कृष्णवल्लभा ।
केन संवर्ण्यते ह्यासां प्रेमवैभवलक्षणम् ।१५।
स्वस्वयूथेश्वरी सर्व्वा गोपिकाप्रेमरूपिणी ।
आयास्ये शीघ्रमेवेति गिराश्वास्य करद्वयम् ।१६।
धृत्वासां स्वकराभ्यां तौ चुम्बनालिङ्गनादिभिः ।
स्वाधीनतां संप्रकाश्य रामकृष्णौ विजह्रतुः ।१७।
ततः सर्व्वव्रजानन्दो रामकृष्णसमन्वितः ।
मनोगङ्गां समुत्तीर्य्य ययौ व्रजपुरात् पुरीम् ।।१८।।
अक्रूरश्च कियद्दूरं गत्वा रामजनार्द्दनौ ।
स्नातुं यमुनामाविश्य रथस्थौ तौ ददर्श ह ।।१९।।
तयोर्विभूतिं संपश्यन् प्रणम्य विस्मयान्वितः ।

कान्त श्रीकृष्ण को निज निज समीप में अवलोकन करने लगीं ।।१४।।

श्रीकृष्ण दर्शन महानन्द से कृष्णवल्लभावृन्द पूर्ण मनोरथ हुई थीं, उनसब का प्रेम वैभव लक्षण का वर्णन कौन कर सकते हैं ? ।१५

वहाँपर प्रेम रूपिणी गोपिका वृन्द को निज निज यूथेश्वरी के सहित अवस्थित देखकर श्रीकृष्ण निज कर द्वय के द्वारा उन सब के कर द्वय धारण कर कहे थे, मैं आशु आऊँगा, इस प्रकार स्वाधीनता प्रकाश पूर्वक श्रीराम कृष्ण सब को सन्तुष्ट करते हुये भ्रमण किये थे ।।१६--१७।।

अनन्तर सर्व व्रजानन्द राम कृष्ण समन्वित अक्रूर मानसी गङ्गापार होकर व्रज पुर से मथुरा गमन किये थे ।।१८।।

अक्रूर ने भी कुछ दूर जाकर यमुनामें स्नान करने के निमित्त यमुनातीरमें उपस्थित होकर स्नान हेतु जलमें अवगाहन स्नान किया किन्तु यमुना जल में रथोपरि स्थित रामकृष्ण को देखा ।।१९।।

श्रुत्वा बहुविधं ताभ्यां सहितो मथुरामगात् ॥२०॥
सुदुर्म्मुखाख्यरजकं निहत्य वस्त्रसंघशः।
गृहीत्वातः सुदाम्नो हि गृहं तौ जग्मतुः सह: ॥२१॥
ततः सगणयोः सोऽपि तयोर्वेशं चकार ह।
कुब्जापि च तयोरङ्गं चन्दनेनाभ्यभूषयत् ॥२२॥
कृत्वा तां रूपसम्पूर्णां धनुर्भङ्गञ्च माधवः।
सरामः शकटं गत्वा मातुर्दत्तमभोजयत् ।२३।
रजन्यां सह रामेण नन्दक्रोड़गतो हरिः।
लाल्यमाना सुखं तेन सुष्वाप भक्तवत्सलः ।२४।
एतत् श्रुत्वा श्रीगौराङ्गस्तत्तद्भावविभावितः।

रामकृष्ण की विभूति को देखकर अक्रूर विस्मित होकर राम कृष्ण को प्रणाम किये थे, अनन्तर श्रीराम कृष्ण के सहित विविध वार्त्तालाप करते हुये मथुरा पहूँच गये थे ॥२०॥

राम कृष्ण ने रास्ते में सुदुर्म्मुख नामक रजक को देखा, उस को मारकर वस्त्र समूह ग्रहण कर सुदामा मालाकर के गृहमें उपस्थित हुआ ॥२१॥

अनन्तर सुदामा ने व्रजवासि गण के सहित रामकृष्ण को सुवेश से विभूषित किया, कुब्जाने भी उत्तम चन्दन के द्वारा राम कृष्ण को विभूषित किया ॥२२॥

माधव ने कुब्जा को कुरूप से सुरूप में परिवर्त्तन कर दिया, पश्चात् राम के सहित शकट में उपस्थित होकर मातृदत्त भोजन सामग्री भोजन किया ॥२३॥

रजनी में राम के सहित भक्तवत्सल हरि, नन्द के क्रोड़ में लालित होकर सुख निद्रा अनुभव किये थे ॥२४॥

विवरण सुनकर गौर हरि श्रीकृष्ण भावविभावित हो गये थे,

बभूव स रसाविष्टः कृष्णदासोऽपि विस्मितः ।२५।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे अक्रूरगमनादि
लीलाश्रवणं नामैकादशः सर्गः ।

**

द्वादशः सर्गः

**

कृष्णदासस्ततः प्राह शृणु कंसस्य चेष्टितम् ।
यत् कृतं तेन दुष्टेन तत् किञ्चित् कथ्यतेऽधुना ।१।
मृत्युदूतं बहुविधं दृष्ट्वा रात्रौ सुदुर्म्मनाः ।
कंसो मञ्चादिकं सर्व्वं कारयामास सत्वरम् ।।२।।
मञ्चोपरिस्थितः सोऽपि चावाह्य बन्धुबान्धवान् ।
समानाय्य तदुपरि संस्थाप्य प्राह दुर्म्मदः ।।३।।
आनीय नन्दञ्च सगोपवृन्दं
निवेश्य मञ्चोपरि सम्भ्रमेण ।

एवं रसाविष्ट कृष्णदास भी विस्मित हो गये ।।२५।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते चतुर्थ प्रक्रमे अक्रूर गमनादि
लीलाश्रवणं नामैकादशः सर्गः ।।

**

द्वादशः सर्गः

अनन्तर कृष्ण दासने गौर हरि को कहा, कंस का आचरण श्रवण करें, उस दुष्ट कंसने जो कुछ किया, उसका अधुना कथन मैं करता हूँ ।।१।।

सुदुर्मनाः कंस ने निशीथ में विविध मृत्यु दूत को देखकर सत्वर मञ्च प्रभृति का निर्माण करवाया ।।२।।

स्वयं मञ्चके ऊपर स्थित हो गया, एवं बन्धु बान्धव वर्ग को

कुत्रस्थितौ तौ वरयुद्धकौतुकी
पश्यामि युद्धञ्च तयोः सुनिर्भरम् ॥४॥

ततः परं रामजनार्द्दनौ प्रभु-द्वारस्थित कुञ्जरराजमेव ।
हत्वा च तं तौ च गृहीतवन्तौ प्रजग्मतुरेव सुरङ्गभुमिम् ।५।

चाणूरमुष्टी सगणो निहत्य
कंसञ्च सर्व्वैरभिनन्दितौ सुखम् ।
ततः पितृभ्यामुपलालितौ तौ
नन्दं समासाद्य मुदाहतुस्तम् ॥६॥

पितः कियन्तं मथुरां दिदृक्षे
कालं भवान् मे यदि सुप्रसन्नः ।
तदा हि सर्व्वं सुखमेव मे पित–
र्मदग्रजो यातु त्वया समं सुखी ॥७॥

बुलाकर चतुर्दिक् में स्थापन कर दुर्मद कंस ने बोला ॥३॥

गोपवृन्द के सहित वरयुद्ध कौतुकी रामकृष्ण को ले आकर मञ्चोपरि निर्भय से अवस्थित होकर राम कृष्ण के द्वन्द्वयुद्ध को देखूँगा ॥४॥

अनन्तर राम जनार्दन कंस द्वारस्थित कुञ्जर राज को मार-कर दन्तद्वय ग्रहण पूर्वक रङ्गभूमि में प्रविष्ट हुये थे ॥५॥

रङ्ग स्थल में गण के सहित चाणूर मुष्टिक को मारकर कंसको भी विनष्ट किये थे, एवं समस्त जनगण के द्वारा अभिनन्दित होकर वसुदेव देवकी द्वारा लालित पालित होकर नन्द के निकट में जाकर आनन्द से कहे थे ॥६॥

हे पितः ! कुछ समय मथुरा देखने की इच्छा है, यदि आप प्रसन्न मनसे आदेश करें तो मैं मथुरा दर्शन हेतु यहाँ रह जाऊँ, हे पितः ! अग्रज बलराम को लेकर आप सब सुखी होकर घर को लौट जायें ॥७॥

श्रुत्वा नन्दो हसन् प्राह बालोऽसि त्वं निरङ्कुशः ।
मर्त्तसिंहसमः केन शासितुं शक्यते भवान् ॥८॥
बलराम पुनश्चात्र भवान् हि स्थातुमर्हति ।
यथा गवां चारणार्थं वृन्दावनगतः क्वचित् ॥९॥
समालिङ्ग्य सुखेनैव ताभ्यां वन्दित आदरात् ।
ययौ नन्दीश्वरं नन्दः कृष्णरामौ हृदिस्थितौ ॥१०॥
ततः परं वसुदेवदेवकी पुत्रयोः किल ।
उपवीतञ्च गायत्रीं दापयामासतुर्मुदा ।११।
श्रीकृष्णचरितं केन वर्ण्यते क्षुद्रबुद्धिना ।
यत्र ब्रह्मादयः सर्व्वे मुह्यन्ति पारदर्शिनः ॥१२॥
एवं हि सूत्ररूपाञ्च लीलां माथुरसम्भवाम् ।
मेने भुवितरां कृष्णचैतन्यो रसविग्रहः ॥१३॥

सुनकर नन्दने हसकर कहा, तुम तो बालक हो, निरङ्कुश हो कौन तुम को नियन्त्रण कर सकते हैं ? ॥८॥

बलराम ! तुम यहाँपर रह जाओ, जिस प्रकार गोचारण हेतु कदाचित् कृष्ण के सहित जाते थे ॥९॥

पुत्रद्वय को आलिङ्गन नन्दने किया, राम कृष्णने भी आदर पूर्वक नन्द की वन्दना की, अनन्तर नन्दीश्वर को, नन्दमहाराज कृष्ण राम को हृदय में धारण कर चले गये ॥१०॥

उस के वाद देवकी वसुदेव ने निज पुत्रद्वय का उपनयन संस्कार करवाया एवं गायत्री दान करवाया ॥११॥

क्षुद्र बुद्धि सम्पन्न कौन व्यक्ति श्रीकृष्ण चरित वर्णन करने में सक्षम हैं ? जहाँ पारदर्शी ब्रह्मा प्रभृति समस्त मनीषी मुग्ध होते हैं ।१२

रस विग्रह श्रीकृष्णचैतन्यदेव, सूत्ररूपा माधुरी लीला को बहु मानकर सेवन किये थे ॥१३॥

क्वचित् श्यामं क्वचित् पीतं लीलानुकरणं क्वचित् ।
जगन्मोहनरूपञ्च स्वरूपं प्रेमदं प्रभु: ।।१४।।
दर्शयन् शुद्धभक्तानां मन: श्रवणमङ्गलम् ।
नृत्यति गायति रौति हसति धावति सुखम् ।।१५।।
एवं विहरतस्तस्य सर्व्वदानन्दरूपिणी ।
लीला सर्व्वव्रजस्थानां प्रादुरासीद्गृहे गृहे ।१६।
पूतनामोक्षणादिश्च व्योमासुरबधान्तिका ।
वृन्दावनस्थिता या च या च धामान्तरं गता ।।१७।।
सा तु सर्व्वा शक्तिमती सर्व्वसिद्धि प्रदा सदा ।
प्रेमभक्तिप्रदा शश्वत् प्रधाना कृष्णरूपिणी ।।१८।।
केचिद्बालं नवनीतकरं केऽपि पौगण्डरूपं
श्रीदाmाद्यै रुपयामुनकं चारयन्तं च वत्सान् ।
कैशोराद्यं नवघनरुचिं वेष्टितं गोपीभिश्च
वंशीन्यस्ताधरकिसलयं गौरचन्द्रं ददर्श ।।१९।।

प्रभु जगन्मोहन रूप एवं स्वरूप को प्रकटकर कभी श्याम कभी पीत वर्ण धारण कर प्रेमद लीला करते रहते हैं ।।१४

शुद्धभक्तों की मन: श्रवण मङ्गल लीलाको दर्शाकर प्रभु, सुख पूर्वक नृत्य, गान, रोदन, हास्य, एवं तीव्र गति से गमन करते थे ।१५।

प्रभु, उस रीति से विहार करने से, सर्वदानन्दरूपिणी व्रजीय लीला समूह का प्रादुर्भाव घर घर में हुआ था ।।१६।।

पूतना मोक्षण, से लेकर व्योमासुर बध पर्य्यन्त धामान्तर गत एवं वृन्दावन स्थित जो भी लीला हो, वे सब ही सर्वा शक्ति मती सर्वसिद्धि प्रदा, प्रेम भक्ति प्रदा, सर्वसिद्धि प्रदा हैं ।।१७।।

कतिपय व्यक्ति नवनीत कर बाल गोपाल को देखते हैं, कतिपय व्यक्ति, श्रीदाम प्रभृति के सहित गोचारणरत देखे थे ।।१८।।

एवं दृष्ट्वा परमरसिका श्रीलवृन्दावनस्थाः
सर्व्वे पक्षिमृगपशुगणा बालवृद्धाश्च हर्षात् ।
पश्यन्तः स्वं निजनिजरसैर्ह्लादयन्तः परीता
राधाकृष्णात्मकमपि निजं मेनिरे प्राणनाथम् ॥२०॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे कंसबधादिसुदर्शनं
नाम द्वादशः सर्गः

**

त्रयोदशः सर्गः

***

ततश्च कृष्णदासेन दर्शितो व्रजमण्डलम् ।
वन्दितः परया भक्त्या प्राह तं करुणानिधिः ॥१॥
यथा मे हृदयं स्निग्धं कृष्णकथारसामृतैः ।

कतिपय व्यक्ति, किशोर, नवघन रूपी, गोपी जन वेष्टित वंशी वादन पटु कैशोर रूपी श्रीगौराङ्ग महाप्रभु को देखे थे ॥१६॥

श्रीवृन्दावनस्थ परम रसिक जन गण, एवं पशु पक्षी प्रभृति अतिहर्ष से श्रीगौराङ्ग का दर्शन किये थे। एवं निज निज भाव के द्वारा विभोर होकर श्रीगौराङ्ग देव को साक्षात् श्रीकृष्णात्मक प्राण नाथ मानने लगे थे ॥२०॥

इति श्रीकृष्णचैतन्य चरिते चतुर्थ प्रक्रमे कंस बधादि सुदर्शनं
नाम द्वादशः सर्गः ।

***

त्रयोदशः सर्गः

श्रीकृष्णदास विप्र ने प्रभुको व्रजमण्डल सन्दर्शन कराकर परम भक्ति भावसे प्रणाम किया, करुणानिधि प्रभुने कृष्णदासके प्रति कहा, जिस प्रकार श्रीकृष्णकथामृतरस के द्वारा मेरा हृदय स्निग्ध है, उस

तथा ते कृष्णचन्द्रश्च प्रसन्नो भवतु स्वयम् ।।२।।
स आह तव दासोऽहं त्वं कृष्णः श्रीनिकेतनः ।
त्वां विना न हि जानीयां यथा तत् कुरु मे प्रभो ।३।
तथास्त्विति वरं दत्त्वा तमालिङ्गच शचीसुतः ।
जगन्नाथं च संस्मृत्य ययौ ब्राह्मणसंवृतः ।।४।।
यमुनातीरमासाद्य प्रयागं पुनरागमत् ।
वेणीं स्नात्वा माधवं च दृष्ट्वा तत्र स्थितो हरिः ।।५।।
तत्र श्रीरूप आगत्य सानुजो जगदीश्वरम् ।
ददर्श प्रेमसंपूर्णो दण्डवत् पतितो भुवि ।।६।।
तमालिङ्गच स्वचरणं दत्त्वा तस्य शिरोपरि ।
प्राह प्रयाहि मथुरां मदाज्ञां प्रतिपालय ।।७।।

प्रकार प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं तुम्हारे प्रति प्रसन्न होवे ।।१-२।।

उत्तर में कृष्ण दास ने कहा, मैं तुम्हारा दास हूँ, तुम ही श्रीनिकेतन श्रीकृष्ण हो, तुम्हें छोड़कर में अपर को नहीं जानता हूँ; हे प्रभो ! मेरे प्रति कृपा करो ।।३।।

शचीसुत प्रभुने कृष्णदास को आलिङ्गन कर कहा, तुम्हारी वाञ्छा पूर्ण हो, अनन्तर ब्राह्मण गण परिवृत होकर जगन्नाथ का स्मरण कर गौरहरि चले गये ।।४।।

यमुनातीरे प्राप्त कर प्रयाग में उपस्थित हुये थे, अनन्तर त्रिवेणी में स्नान कर वेणी माधव दर्शन कर वहाँपर प्रभु अवस्थान करने लगे थे ।।५।।

वहाँ अनुज के सहित श्रीरूप आकर जगदीश्वर गौरहरि का दर्शन किये थे, एवं प्रेम विह्वलितान्तः करण से दण्डवत् भूतल में निपतित हो गये थे ।।६।।

प्रभु ने उनका आलिङ्गन कर उनके मस्तकमें श्रीचरण स्थापन पूर्वक कहा, मथुरा जाओ, मेरी आज्ञा का पालन करो ।।७।।

श्रीराधाकृष्णयोर्लीलां वृन्दावनविभूषिताम् ।
व्यक्तीकरिष्यसि तत्र मम प्रीतिर्न संशयः ॥८॥
गौड़देशपथे श्रीमज्जगन्नाथस्य दर्शने ।
आगमिष्यसि चेन्मह्यं दर्शनं भावि सर्व्वथा ॥९॥
स आह चरणं धृत्वा गच्छेऽहं पदसेवकः ।
न हीति भगवान् प्राह गच्छ त्वं मथुरां प्रति ॥१०॥
एवमुक्त्वा ययौ कृष्णः काशीं ब्राह्मणवेश्मनि ।
स्थितस्तत्रागतः श्रीमान् सनातनः प्रभुप्रियः ॥११॥
तं दृष्ट्वा सहसा कृष्ण उत्थाय परमादरात् ।
दृढ़मालिङ्गनं कृत्वा गद्गदन्तमुवाच ह ॥१२॥
श्रीकृष्णकरुणां कोऽपि वक्तुं शक्नोति पण्डितः ।

वहाँ जाकर वृन्दावन विभूषिता श्रीराधाकृष्ण की लीला को प्रकट करोगे। उस में मेरी प्रीति है, इस में संशय नहीं हैं ॥८॥

श्रीजगन्नाथ दर्शन हेतु गौड़देश के पथ से जब आगमन होगा, तब मेरा दर्शन होगा ।९।

श्रीरूपने श्रीचरण धारण कर कहा, मैं आपका पद सेवक होकर रहूँगा, मैं अन्यत्र गमन नहीं करूँगा, इस प्रकार कहने पर श्रीभगवान् चैतन्य देव बोले,— तुम मथुरा गमन करो ॥१०॥

इस प्रकार कहकर श्रीचैतन्यकृष्ण, चले गये, एव काशी में ब्राह्मण के गृह में अवस्थान करने लगे, उस समय प्रभु प्रिय श्रीमान् सनातन का वहाँपर आगमन हुआ ॥११॥

श्रीमान् सनातन को देखकर गौरकृष्ण सहस उठकर परम आदर से सनातन को दृढ़ आलिङ्गन करके गद्गद वाणी से विभूषित सनातन को कहे थे ॥१२॥

कौन पण्डित श्रीकृष्ण करुणा का वर्णन करने में सक्षम हैं ? प्रभू करुणा सब से बलीयसी है, जिसने तुम्हें विषय कूप से उद्धार

या त्वां विषयकूपस्थं समुद्धृत्य बलीयसी ।।१३।।
श्रीकृष्णनिकटं नीत्वा तन्माधुर्य्यमपाययत् ।
स धु साध्विति हर्षेण शिक्षयामास तं पुनः
वृन्दावनाय गन्तव्यं भक्तिशास्त्रनिरूपणम् ।
लुप्ततीर्थ प्रकाशं च तन्माहात्म्यमपि स्फुटम् ।।१५।।
कर्त्तव्यं भवता येन भक्तिरेव स्थिरा भवेत् ।
यामाश्रित्य सुखेनैव श्रीकृष्णप्रेममाधुरीम् ।।१६।।
पिवन्ति रसिका नित्यं सारासारविचक्षणाः ।
स आह त्वत्कृपा सर्व्वफलदा मम पावनी ।।१७।।
श्रीकृष्णेति त्वयोक्तं च तदैव मनसार्थकम् ।
हसन् प्राह हृषीकेशस्त्वमेव बुद्धिसत्तमः ।१८।
दृष्ट्वा मधुपुरीं वृन्दारण्यमेव पुनर्भवान् ।
आयास्यति जगन्नाथदर्शनार्थं मदाज्ञया ।।१९।।

कर श्रीकृष्ण सान्निध्य प्राप्त कराया, एवं माधुर्य्य पान भी कराया। प्रभु, पुनः पुनः साधुवाद कहकर आनन्द से उनको शिक्षा प्रदान किये थे ।।१३-१४।।

वृन्दावनके निमित्त गमन करना उचित है, वहाँ जाकर भक्ति शास्त्र निरूपण, लुप्त तीर्थ प्रकाश एवं उसका माहात्म्य प्रकट करना कर्त्तव्य है, जिससे उत्तमा भक्ति स्थिरा होगी, जिस को अवलम्बन कर रसिक गण सारासार विचक्षण होकर नित्य श्रीकृष्ण प्रेममाधुरी पान करते हैं। सनातन बौले—आपकी कृपा परम पावनी एवं सर्व फलदा है ।।१५-१६-१७।।

हे श्रीकृष्ण ! आपने जो कुछ कहा एवं जो कुछ आपका ईप्सित हैं, उस समय सब ही सम्पन्न होंगे। प्रभुने, सनातन के कथन को सुन कर हँस कर कहा, तुम ही बुद्धि सत्तम हो, ।।१८।।

काशीवासिजनान् सर्व्वान् कृष्णभक्ति प्रदानतः ।
उद्धृत्य कृपया कृष्णो भक्तानां सुखहेतवे ॥२०॥
सनातन समालिङ्ग्य तपनादीन् यथासुखम् ।
जगाम सत्वरं श्रीमान् जगन्नाथदिदृक्षया ॥२१॥
एवं स भगवान् कृष्णः पथि गच्छन् कृपानिधिः ।
दृष्ट्वा गोपमुवाचेदं सतक्रकलसं प्रभुः ।२२॥
पिपासितोऽहं तक्रं मे देहि गोप यथासुखम् ।
श्रुत्वा परमहर्षेण संपूर्णकलसं ददौ ।२३।
हस्ताभ्यां कलसं धृत्वा सतक्रं भक्तवत्सलः ।
पीत्वा गोपकुमाराय वरं दत्वा ययौ हरिः ।२४।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे गोपानुग्रहो नाम त्रयोदशः सर्गः ।

मेरी आज्ञा से आप वृन्दारण्य एवं मधुपुरी दर्शन के अनन्तर जगन्नाथ दर्शनार्थ आयेंगे ॥१९॥

भक्त वृन्द को सुखी करने के निमित्त काशी वासी जन गण को कृष्ण भक्ति के द्वारा उद्धार कर तपनमिश्र प्रभृति के सहित श्रीमान् सनातन को यथाविधि आलिङ्गनादि प्रदान कर जगन्नाथ देव दर्शन हेतु प्रभु सत्वर श्रीक्षेत्र चले गये ॥२०--२१॥

इस प्रकार पथ में गमन करते करते कृपानिधि भगवान् प्रभु कृष्ण, तक्रकलस समन्वित गोप को देखकर कहे थे ॥२२॥

हे गोप ! में तृषित हूँ, मुझे पान हेतु तक्र प्रदान करो, गोप ने सुनकर परमानन्द से कलस पूर्ण तक्र प्रभु को प्रदान किया ॥२३॥

भक्त वत्सल प्रभु, हस्तद्वय के द्वारा तक्रयुक्त कलस को धारण कर तक्र पान किये थे, एवं परम मनोहर गौरहरि गोप कुमार को वर प्रदान कर गन्तव्य स्थल के और चले गये ॥२४॥

इति श्रीकृष्णचैतन्य चरितामृते चतुर्थप्रक्रमे गोपानुग्रहोनाम त्रयोदशः सर्गः ।

चतुर्दशः सर्गः

***

एवं क्रमेण पथि गौरचन्द्र
श्चलन् समायात् कुलियाह्वपूरम् ।
श्रुत्वा ययुस्तत्र महानिधेः किल
श्रीमन्नवद्वीपनिवासिनः परे ।१।
दृष्ट्वा प्रभोः श्रीमुखपङ्कजं मुहुः
पिबन्ति हर्षेण न तृप्तिमापिरे ।
वदन्ति सर्व्वे कृतहस्तवाससो
जगद्गुरुं स्नेहवशं तमीश्वरम् ॥२॥
श्रीमन्नवद्वीपमलङ्कुरु प्रभो संकीर्त्तनानन्दसुमग्नचित्तैः ।
स्वभक्तवर्गैरिति प्रार्थितः स्वयं हरिर्ययौ तत्र स्वनामकौतुकी ।३
आगत्य मातुश्चरणाभिवन्दनं
भूमौ निपत्य कृतवान् मातृभक्तः ।

चतुर्दशः सर्गः

उक्तरीति से गौरचन्द्र पद व्रजसे यात्राकर क्रमशः कुलियापुर नामक स्थान में उपस्थित हुये थे। श्रीमन् महाप्रभु की आगमन वार्त्ता से समाकृष्ट होकर नवद्वीप निवासी जनगण श्रीप्रभु दर्शन के निमित्त समागत हुये थे ॥१॥

श्रीप्रभु के श्रीमुख पङ्कज दर्शन से जनगण आनन्द भर से विभोर हो गये थे। एवं नेत्र के द्वारा निरन्तर मुखाब्ज सुधापान कर के भी अतृप्त रह गये थे। एवं कृताञ्जलि होकर सब व्यक्ति स्नेहवश जगद् गुरु ईश्वर को कहने लगे थे ॥२॥

हे प्रभो ! श्रीमन्नवद्वीप को अलङ्कृत करें, पुनर्वार श्रीहरि सङ्कीर्त्तनानन्द से भक्त वृन्द को आप्यायित करें। प्रार्थना से प्रहृष्ट होकर निजनाम विनोदी श्रीगौरहरि नवद्वीपागमन किये थे ॥३॥

तदैव सा सत्वरमेव हर्षात्
विस्मृत्य सर्व्वं च तमालिलिङ्ग ॥४॥

सा चुम्बती कृष्णमुखारविन्दं सिसेच तं वत्सलभक्तिनीरैः ।
चतुर्व्विधेनापि रसेन चान्नं संभोजयित्वा मुदमाप वत्सला ।५

नित्यानन्देन सार्द्धं सकलरसगुरुः श्रीलगौराङ्गचन्द्रो
मात्रा दत्तं परममधुरमन्नमाद्यं च सायम् ।
भुक्त्वा वत्सलभक्तिपूर्णतमया वद्धरतया श्रीहरि-
र्मात्रा सर्व्वसुखप्रदो जयति स श्रीभक्तवश्यः प्रभुः ।६।

नित्यानन्दो जयति सततं गौरप्रेमाभिमत्तः
सान्द्रानन्दोज्ज्वलमयनवद्वीपमालम्बमानः ।
नानाभावैः प्रणयिनिकरैः सेव्यमानो निजेशं
तन्नामामृतकीर्त्तनैस्त्रिजगतां तापत्रय नाशयन् ॥७॥

नवद्वीप में उपस्थित होकर सर्व प्रथम मातृभक्त श्रीगौरसुन्दर भूमि में निपतित होकर माके चरणाभिवन्दन किये थे । उस समय सर्व विस्मृत होकर अति हर्षसे बालक को मा ने आलिङ्गन किया ।४।

मा, कृष्णमुखारविन्द को चुम्बन करने लगी, एवं वात्सल्य रस से उद्वेलित हृदय होकर वत्सल भक्ति रसके द्वारा गौरहरि को अभिसिञ्चन करने लगी, पुत्र वत्सल जननी चर्व्य, चुष्य, लेह्य, पेय, रूप चतुर्विध अन्न के द्वारा पुत्र को भोजन कराकर अतिशय सुखी हुई थीं ॥५॥

सकल रस गुरु श्रील गौराङ्गचन्द्र, नित्यानन्द के सहित परम मधुर मातृप्रदत्त अन्न भोजन किये थे । इसरीतिसे भक्त वत्सल श्रीगौर हरि भक्त वश्यता को प्रकट कर विहार किये थे ॥६॥

गौरप्रेमाभिमत्त श्रीनित्यानन्द, भी सान्द्रानन्दोज्ज्वलमय नवद्वीप को प्राप्तकर प्रणयीभक्तवृन्दके द्वारा परिसेवित होकर, विविध

प्रकाशरूपेण निजप्रियायाः
समोपमासाद्य निजं हि मूर्त्तिम् ।
विधाय तस्यां स्थित एष कृष्णः
सा लक्ष्मीरूपा च निषेवते प्रभुम् ।।८।।

गदाधरेणापि समं रसज्ञो गौराङ्गचन्द्रो विहरत्यहर्न्निशम् ।
श्रीमन्नवद्वीपनिवासिभिः सह श्रीकृष्णसंकीर्त्तनमग्नचित्तैः ।।९।।

श्रीवासमुख्या ये भक्तास्तेषां गृहे गृहे प्रभुः ।
स्वप्रकाशतया पूर्णकीर्त्तनानन्ददायकः ।।१०।।
विद्याविनोदलोलाद्यैः संपूर्णः कौतुकादिभिः ।
श्रीधरेण समं नित्यं क्रीड़ति गौरसुन्दरः ।११।
ततो नित्यानन्दगौरचन्द्रौ सर्व्वेश्वरेश्वरौ ।
जयतां गौरीदासाख्यपण्डितस्य गृहे प्रभुः ।१२।

भावों के द्वारा निजप्रभुकी नामावलीका कीर्त्तनसे श्रीगौर हरि की सेवा करतः त्रिजगत का तापहारी होकर विराजित थे ।।७।।

निज अद्वितीय प्रियारूप में निजमूर्त्ति को प्रकट कर श्रीकृष्ण प्रभु निज प्रिया लक्ष्मी के द्वारा निषेवित होते हैं ।।८।।

रसज्ञ प्रभु श्रीगदाधर के सहित अहर्न्निशि श्रीगौरचन्द्र नवद्वीप विहार करते थे, एवं श्रीकृष्ण मग्नचित्त नवद्वीप वासि वृन्द के सहित श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन रस में निमग्न थे ।।९।।

श्रीवास प्रमुख भक्त वृन्द के गृह प्रभु स्व प्रकाशस्वरूप में पूर्ण कीर्त्तनानन्द दायक रूप में विलास करते थे ।।१०।।

गौर सुन्दर विद्याविनोद चाञ्चल्य एवं विविध कौतुक के द्वारा नित्य श्रीधर के सहित नवद्वीप में क्रीड़ा करते थे ।।११।।

अनन्तर सर्वेश्वर नित्यानन्द गौरचन्द्र गौरीदास पण्डित के गृह में उपस्थित हुये थे ।।१२।।

तस्य प्रेम्ना निबद्धौ तौ प्रकाश्यरुचिरां शुभाम् ।
मूर्त्तिं स्वां स्वां रसैः पूर्णां सर्व्वशक्तिसमन्विताम् ।१३
ददतः परमप्रीतौ निवसन्तौ यथासुखम् ।
ताभ्यां सह भुक्तवन्तावन्नञ्च विविधं रसम् ।१४।
दृष्ट्वा द्वौ सच्चिदानन्दविग्रहौ द्विजसत्तमः ।
शुद्धसख्यरसेनापि सेवयामास सर्व्वदा ॥१५॥
सर्व्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य महात्मनः ।
हानोपादानरहिता इति वेदानुसारतः ॥१६॥
श्रीलीलाविग्रहाः सर्व्वे भक्तचित्ते निरन्तरम् ।
तिष्ठन्ति परमानन्ददायिनो भक्तवत्सलाः ॥१७॥

इति श्रीकृष्णचतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे श्रीवृन्दावनगमनानन्तरं श्रीनवद्वीपविहारे श्रीगौरीदासानुग्रहो नाम चतुर्द्दशः सर्गः ॥

पण्डित गौरीदास पण्डितके प्रेमवश होकर सर्व शक्ति समन्वित प्रकाश बहुल निज निज रस पूर्ण शुभ विग्रह को प्रकट श्रीनित्यानन्द गौरचन्द्र किये थे ॥१४॥

परम प्रीति सम्पादन करते हुये गौरीदास के गृह में नित्यानन्द गौरचन्द्र निवास करने लगे थे, एवं निज निज सच्चिदानन्द विग्रह के सहित चतुर्विध त्रिविध मनोहर अन्नादि भोजन किये थे। विप्र गौरी दास भी गौर नित्यानन्द विग्रहद्वय को सच्चिदानन्द विग्रह जानकर परम सख्य रस से सर्वदा सेवा करने लगे थे ॥१४-१५॥

कारण, वेद वचन यह है कि—भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीविग्रह समूह नित्य शाश्वत हैं एवं हानोपादान वर्जित हैं। अतः भक्तचित्त में श्रीलीलाविग्रह समूह भक्त वात्सल्य के कारण निरन्तर आनन्द विधान करते हुये निवास करते हैं ॥१६-१७॥

इति श्रीकृष्णचैतन्य चरिते चतुर्थ प्रक्रमे श्रीवृन्दावनागमनानन्तरं श्रीनवद्वीप विहारे श्रीगौरीदासानुग्रहो नाम चतुर्दशः सर्गः।

पञ्चदशः सर्गः

ततश्च कृष्णचैतन्यनित्यानन्दौ जगद्गुरू ।
श्रीलाद्वैताचार्य्यगेहं जग्मतुः प्रेमविह्वलौ ।१।
तौ दृष्ट्वा सहसोत्थायाद्वैताचार्य्यो महेश्वरः ।
सगणः प्रेमविवशो धृत्वा तच्चरणाम्बुजम् ।२।
प्रक्षाल्य विधिवद्धर्षात् पीत्वा शिरसि धारयन् ।
ननर्त्त वासो धुन्वानो मत्तकेशरिविक्रमः ।।३।।
तमालिङ्ग्य प्रहर्षेण प्रणम्य च पुनः पुनः ।
तेन संपूजितौ प्रीतौ शाल्यन्नभोजनादिना ।४।
संकीर्त्तनसुखे मग्नौ तेन सार्द्धं जगद्गुरू ।
नृत्यन्तौ भक्तवर्गैश्च वेष्टितौ परमेश्वरौ ।५।
ततः आचार्य्यः सहसा वाह्यमासाद्य सत्वरम् ।
आनाय्य श्रीनवद्वीपात् सभक्तां श्रीशचीं तु ताम् ।६।

अनन्तर जगद् गुरु श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द प्रेमविह्वल होकर श्रीअद्वैत आचार्य्य के गृह में उपस्थित हुये थे। उन दोनों को देखकर महेश्वर अद्वैत आचार्य्य सहसा उठ कर प्रेम बिवश होकर निजगण के सहित श्रीगौर नित्यानन्द के चरण धारण कर विधिवत् प्रक्षालन पूर्वक चरणोदक पान किये थे। एवं मस्तक में धारण कर मत्त केशरि विक्रमसे वसन को कम्पित्त कर नृत्य प्रारम्भ किये थे ।।१-२-३

श्रीअद्वैत को हर्ष से आलिङ्गन एवं पुनः पुनः प्रणाम किये थे, अनन्तर श्रीअद्वैत के द्वारा आप्यायित होकर शाल्यन्न भोजनादि के द्वारा गौराङ्ग नित्यानन्द सुतृप्त हुये थे ।।४।।

परमेश्वर जगद् गुरु श्रीगौर, नित्यानन्द भक्तवृन्द के सहित कीर्तन रस मग्न होकर नृत्य किये थे ।।५।।

अनन्तर श्रीअद्वैत आचार्य्य सहसा अनुसन्धान कर नवद्वीप से

बूभुजे स तया चापि तथा वैष्णवपत्निभिः ।
सह पाचितमन्नं च पायसादिचतुर्व्विधम् ।७।
पुरीश्रीमाधवः कृष्णप्रेमानन्दसुखार्णवः ।
तस्याप्याराधनतिथौ चत्रस्य शुक्लपक्षके ।८।
द्वादश्यां भोजयामास द्वौ प्रभु साग्रहं मुदा ।
तथा भक्तगणान् सर्व्वानाचार्य्योऽद्वैत ईश्वरः ।९।
तस्यां तेन समं कृष्णचैतन्यवल्लभेन च ।
स्वयं महाप्रसादं हि भुक्त्वानन्दमवाप्नुयात् ।१०।
श्रीमाधवपुरीप्रेमरसौ श्रीशचीनन्दनौ ।
हरिसंकीर्त्तनानन्दौ भक्तैः सह ननर्त्ततुः ।।११।।
एवं कृत्वानन्दनन्तत्र स्थित्वा मातृवशानुगौ ।
तां प्रसाद्य मधुरया गिरा संशितविग्रहौ ।१२।

भक्त वृन्द के सहित श्रीशची मा को ले आने के निमित्त व्यक्ति प्रेरण किये थे ।।६।।

अनन्तर शचीमाता प्रभृति का आगमन होने से वैष्णव पत्नी वृन्द के द्वारा पाचित पायसादि चतुर्विध अन्न भोजन उन सबके सहित श्रीअद्वैत प्रभु किये थे ।।७।।

कृष्ण प्रेमानन्द सुखार्णव श्रीमाधव पुरी की आराधन तिथि का आगमन हुआ था, उनकी आराधन तिथि में अर्थात चैत्र शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि में अद्वैत प्रभु ने समस्त भक्त वृन्द के सहित श्रीगौर नित्यानन्द को अति आनन्द से भोजन कराये थे ।।९।।

उस तिथि में श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के सहित अद्वैत प्रभु-महाप्रसादान्न भोजन कर परमानन्द प्राप्त किये थे ।।१०।।

श्रीमाधवपुरी प्रेमरस मग्न श्रीशचीनन्दन नित्यानन्द श्रीहरि कीर्त्तनानन्दसे विभोर होकर भक्त वृन्द के सहित नृत्य किये थे ।।११।।

आचार्य्यादीन् भक्तगणान् तथा श्रीवाससं प्रभुम् ।
संसान्त्वय्य सुखेनापि शयनाय कृत्तोद्यमौ ॥१३॥
तेषां विक्रीड़ितं केऽपि वर्णयन्ति महात्मनाम् ।
यथा कृष्णे मधुपुरीगते श्रीव्रजवासिनः ।१४।
तिष्ठन्ति तन्मयाः सर्व्वे तथैते वैष्णवोत्तमाः ।
चिन्तयन्तश्च तल्लीलां बभूवुस्तन्मयाः किल ।१५।
कृष्णरामौ च तावेतौ तत्र ते च महत्तमाः ।
उपमीयगतिर्ज्ञेया कृष्णप्राणावुभौ सदा ।१६।

ततः स्वयं श्रीजगदीश्वरावुभौ
श्रीमज्जगन्नाथदिदृक्षयान्वितौ।
प्रजग्मतुः श्रोपुरुषोत्तम प्रभुः ।
स्वभक्तवृन्दैः परिसेवितौ ध्रुवम् ॥१७॥

आगत्य क्षेत्रं भुवनैकबन्धु-र्दृष्ट्वा जगन्नाथमुखारविन्दम् ।

मातृवशानुग श्रीगौरनित्यानन्द ने माता को आनन्दित कर एवं मधुर वाक्य से सुतृप्त कर आचार्य्य प्रमुख एवं श्रीवास को सान्त्वना प्रदानकर विश्राम करने के निमित्त उद्‌योग किये थे ।१२-१३

महात्मा वृन्द का वृत्तान्त कतिपय व्यक्ति वर्णन करते हुये कहते हैं, जिस प्रकार श्रीकृष्ण चन्द्र का मथुरा गमन होने पर व्रज-वासिवृन्द की अवस्था हुई थी, उस प्रकार वैष्णवोत्तम वृन्द की अवस्था हुई थी, श्रीगौर सुन्दर की चिन्ता से वे सब तन्मय होकर रहते थे ॥१४-१५॥

श्रीगौर नित्यानन्द श्रीकृष्ण एवं बलराम थे, अतएव महत्तम वृन्द कृष्णगत प्राण होकर निरन्तर रहते थे ॥१६॥

अनन्तर स्वयं जगदीश्वर होते हुये भी श्रीजगन्नाथ दर्शन हेतु प्रभु भक्तवृन्द परिशोभित होकर पुरुषोत्तम क्षेत्र गमन किये थे ॥१७॥

प्रेमाश्रुपूर्णौ कलधौतविग्रहौ बभूवतुर्गद्गदरुद्धकण्ठकौ ।१८।

श्रीकाशीमिश्रस्य गृहे गतौ पुनः
श्रीरामकृष्णौ किल भक्तवेष्टितौ ।
श्रीसार्व्वभौमादय एव सर्व्वे
तत्रागताः क्षेत्रनिवासिनोऽपरे ।।१९।।

पश्यन्ति तत्पादसरोजवैभवं प्रणम्यभूमौ प्रणिपत्य ते मुदा ।
बद्धाञ्जलिं साश्रुविलोललोचनाःसगद्गदं कृष्णरसाब्धिमग्नाः ।।२०।।

उत्थाय तौ सत्वरमेव तानपि
आलिङ्गय प्रेम्ना हि मुदान्वितौ प्रभु ।
वृन्दावनस्य मधुरं कथामृतं
शुश्रावयामासतुरेव मानदौ ।।२१।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे श्रीवृन्दावनगमनानन्तरं श्रीनवद्वीपविहार श्रीपुरुषोत्तमदर्शनं नाम पञ्चदशः सर्गः ।

भुवनैकबन्धु, श्रीक्षेत्र में आकर श्रीजगन्नाथमुखारविन्द सन्दर्शन किये थे, एवं प्रेमाश्रु पूर्ण, गद गद् रुद्धकण्ठ होकर कलधौत विग्रह में शोभित हुये थे ।।१८।।

श्रीराम कृष्ण श्रीकाशी मिश्र के भवन में भक्तवृन्द के सहित उपस्थित हुये थे, श्रीसार्वभौम एवं अपर क्षेत्र वासिगण, श्रीगौर पाद पङ्कज वैभव को सन्दर्शन कर भूतल में निपतित होकर प्रणाम किये थे एवं अश्रु वारि के द्वारा हृदय को अभिसिञ्चित किये थे। इस प्रकार कृष्ण रसाब्धि मग्ना जनगण बद्धाञ्जलि होकर स्तुति करने लगे थे। प्रभु गौर हरि उनसब को प्रेम पूर्वक आलिङ्गन मधुर वृन्दावन कथामृत श्रवण कराकर आनन्दित किये थे ।।१९-२०-२१।।

इति श्रीकृष्ण चैतन्यचरिते चतुर्थ प्रक्रमे श्रीवृन्दावनगमनानन्तरं श्रीनवद्वीप विहार श्रीपुरुषोत्तमदर्शनं नाम पञ्चदशः सर्गः ।।

षोड़शः सर्गः

***

ततो गजपती राजा दर्शनार्थं महाप्रभोः ।
सार्व्वभौमं समाहूय रामानन्दसमन्वितम् ।१।
पप्रच्छ सत्वरं प्रीतः सादरं विनयान्वितः ।
दर्शनं गौरचन्द्रस्य साग्रजस्य कथं भवेत् ।२।
स प्राह तं महाराज दर्शनं दुर्घटं तव ।
उपायान्तरमासाद्य कर्त्तव्यं न तु सम्मुखम् ।३।
यदा संकीर्त्तनानन्दमत्तौ तौ परमेश्वरौ ।
तदैव ते महाराज कर्त्तव्यं दर्शनं तयोः ।४।
भद्रमेव तथा कार्य्यं यथा शीघ्रं भवेद्द्विज ।
इति प्राह समुत्कण्ठो राजा प्रहसिताननः ।५।
तदैव कीर्त्तनानन्दमत्तौ तौ परमेश्वरौ ।

अनन्तर गजपति महाराज प्रतापरुद्र श्रीमन्महाप्रभु दर्शनाभिलाषी होकर रामानन्द के सहित श्रीवासुदेव सार्वभौम को विनय पूर्वक आह्वान किये थे ।।१।।

आदर एवं विनयान्वित होकर प्रतापरुद्र ने निवेदन किया, श्रीगौर चन्द्र का दर्शन कैसे होगा ? ।।२।।

श्रीसार्वभौम कहे थे, महाराज ! आप के पक्ष में श्रीगौरचन्द्र का दर्शन दुर्घट है, उपायान्तर अवलम्बन करना होगा, साक्षात् दर्शन होना सम्भव नहीं है ।।३।।

जिस समय श्रीपरमेश्वर गौर नित्यानन्द सङ्कीर्त्तनानन्द में विभोर रहेंगे, हे महाराज ! उससमय ही दर्शन करना उचित होगा ।४

राजा आनन्दित होकर सहास्य वदन से कहे थे, हे द्विज ! जिस से वह कार्य्य सुसम्पन्न हो, उसका संघटन करें ।।५।।

उस समय राजा के श्रुति गोचर हुआ कि—परमेश्वर श्रीगौर

श्रुत्वा राजा समासाद्य ददर्श करुणार्णवौ ।६।
अश्रुकम्पपुलकाद्यै नासालालमुखामृतैः ।
मण्डितौ तौ समुद्वीक्ष्य राजाश्रुपुलकान्वितः ।७।
ययौ स्वभवनं प्रीतः सुप्तः स्वप्ने ददर्श तौ ।
रत्नसिंहासनस्थौ च कीर्त्तनानन्दविग्रहौ ।८।

ततः प्रलम्बारिमुरद्विषौ सुखं
पश्यन् सदापूर्णविलासवैभवौ ।
किं किं ब्रुवन् भूमिपतन् सुनिर्भरं
पुनः समुत्थाय ददर्श तौ प्रभुः ।९।
एवं स वारत्रयमेव स्वप्नं
दृष्ट्वा रुदन् प्रेमविभिन्नधैर्य्यः ।
ततः समुत्थाय जगाम सत्वरं
गौराङ्गपादाम्बुजयोः समीपकम् ।१०।

नित्यानन्द सङ्कीर्त्तनानन्द में विभोर हैं, राजाने भी उस समय जाकर करुणार्णव श्रीगौर नित्यानन्द का दर्शन किया ।।६।।

अश्रु कम्प पुलक प्रभृति के द्वारा विभण्डित वपु प्रभु युगल को देखकर राजा, पुलकाश्रु परिपूरित हो गये थे, एवं स्वभवन में प्रत्यावर्त्तन कर सुखनिद्रा प्राप्त किये थे। स्वप्न में आपने देखा, सिंहासनस्थ श्रीकृष्ण बलराम कीर्त्तनानन्द विग्रह रूपमें विलसित हैं। इस प्रकार प्रलम्बारि एवं मुरमथन को सदापूर्ण विलास वैभव मण्डित रूप में पुनः पुनः राजा देखने लगे थे, क्या है ? क्या है, कह कह कर भूतल में निपतित होने लगे थे, एवं पुनर्वार उठ उठ कर दर्शन करने लगे थे। इस रीति से तीन वार स्वप्न में आपने श्रीगौर नित्यानन्द को दर्शन किया, एवं विभिन्न धैर्य्य होकर सत्वर उठकर श्रीगौर पदाम्बुज के समीप को प्राप्त किया ।।७-८-९-१०।।

प्रणम्य साष्टाङ्गमसौ पुनः पुनः
निपत्य भूमौ च रुदन्मुहुर्म्मुहुः ।
धृत्वा प्रभोः श्रीचरणाम्बुजं हृदि
तुष्टाव सर्व्वेश्वरमादिपुरुषम् ।११।
जय जय जगदीश प्रेमपूर्णप्रकाश
सकलजननिवासानन्दभोगेन्द्रशायिन् ।
निजजनमतिमत्तभृङ्गचुम्विस्वपाद
सरसिजविरहार्त्त पाहि मां दीनबन्धो ।१२।
एवं स्तुवन्तं नृपतिं जगत्पतिः
श्रृङ्गारपोषं निजवैभवं प्रभुः ।
श्रीविग्रहं षड्‌भुजमद्भूतं महत्
प्रदर्शयामास महाविभूतिः ।१३।
पूर्णानन्दं परममधुरं दर्शयन् गौरचन्द्रः (?)
सर्व्वेषां प्रेमदाता विजयति सततं घूर्णयन्नेत्रभृङ्गम् ।

साष्टाङ्ग प्रणाम भूमि में निपतित होकर राजाने किया, एवं मुहुर्मुहु रोदन कर श्रीप्रभुचराम्बुज को हृदय में धारण कर आदि पुरुष श्रीगौर हरि का स्तव करना प्रारम्भ किया ॥११॥

हे दीन बन्धो ! हे जगदीश ! हे प्रेम पूर्ण प्रकाश ! सकल जन निवासानन्द योगेश्वर शायिन् ! निज जन मतिमत्त भृङ्ग चुम्बि पाद विहरार्त्त मेरी रक्षा आप करें ॥१२॥

महाराज प्रतापरुद्र उस प्रकार स्तव कर रहे थे, महाविभूति सम्पन्न प्रभुने उस समय निज वैभव स्वरूप अद्‌भुत महत् शृङ्गार रस पूर्ण षड्‌भुज श्रीविग्रह प्रदर्शन किया ॥१३॥

सर्व प्रेमदाता श्रीगौरचन्द्र प्रीति पूर्ण दृष्टि सम्पन्न पूर्णानन्द परम मधुर रूप को प्रदर्शन कर उत्कर्ष मण्डित हुये थे। नित्यानन्द

नित्यानन्दः स्वयमपि वलं दिव्यमाधुर्य्यपूर्णं
प्रेमोन्मादैः शुभमपि निजं विग्रहं शान्तरूपम् ।१४।
उद्ध्वं हस्तद्वयमपि धनुर्व्वाणयुक्तं च मध्यं
वंशीवक्षः स्थलविनिहितमुत्तमं गौरचन्द्रः ।
शेषहस्तद्वयञ्च परमसुमधुरं नृत्यवेशं स बिभ्रत्
एवं श्रीगौरचन्द्रं नृपतिरखिलं प्रेमपूर्णं ददर्श ॥१५॥

दृष्ट्वा श्रीहरिरामयोः सुमधुरां श्रीरासलीलां स्मरन्
प्रेमाश्रुपुलकाधृतः कतिपयान् श्लोकान् पठन् नृत्यति ।
श्रीमद्भागवतस्य तस्य परमं माधुर्य्यसारस्य च
श्रीगोपीजनमण्डली शुभगयोः सानन्दभावोन्मदैः ।१६।

श्रीभागवते दशमस्कन्धे चतुस्त्रिंशतितमाध्याये ।

कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः

भी प्रेमोन्माद के द्वारा विभोर होकर दिव्य माधुर्य्य पूर्ण शुभ शान्त रूप निज बल विग्रह का प्रदर्शन किये थे ॥१४॥

ऊद्ध्वं हस्त में धनुर्वाण थे, मध्य हस्तद्वय में वंशी विलसित रही, शेष हस्त द्वय परम समधुर नृत्य भङ्गी से शोभित थे, इस प्रकार नृपति ने श्रीगौरचन्द्र को प्रेम पूर्ण रूप में देखा ॥१५॥

श्रीहरि नाम की सुमधुर श्रीरासलीला का स्मरण दर्शन कर प्रेमाश्रु पुलक से शोभित होकर कतिपय श्लोक पाठ कर नृत्य करने लगे थे। सानन्द भावोन्मदके द्वारा परम माधुर्य्य सार स्वरूप श्रीगोपी जन मण्डली के परम सौभाग्य सूचक श्लोक समूह का पाठ करने लगे थे ॥१६॥

श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्धस्य चौतीस अध्याय में वर्णित "अद्भुत विक्रम राम एवं गोविन्द कदाचित् रात्रि में व्रजललनागणों के सहित विहार करते थे" विवरण भी पाठ किया ॥१७॥

विजह्र तुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ।।१७।।
उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैर्व्बद्धसौहृदैः ।
स्वालङ्कृतानुलिप्ताङ्गौ स्रग्विनौ वनमालिनौ ।१८।
निशामुखं सानयन् तावुदितोड़ुपतारकम् ।
जगदुः सर्व्वभूतानां मनः श्रवणमङ्गलम् ।।१९।।
दृष्ट्वा षड़्भुजविग्रह प्रभुवरं श्रीमत् शचीनन्दनं
रामं रोहिणीपुत्रमेव पुलकैः संमण्डिताश्वाश्रुभिः ।
पूर्णाः सर्व्वमहज्जनाश्च सततं श्रीसार्व्वभौमादयः
श्रीकृष्णगुणकीर्त्तनामृतरसे मग्ना विहस्ता बभुः ।।२०।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे
श्रीप्रतापरुद्रानुग्रहो नाम षोड़शः सर्गः ।

व्रज स्त्रीजनगण के सहित बद्ध सौहृद होने के कारण, भूषितानुलिप्त माल्ययुक्त वन माला विभूषित होकर एवं नृत्य गीत परायण रूप में राम गोविन्द विहार किये थे ।।१८।।

निशामुख में चन्द्र तारका उदित होनेपर सर्वभूत श्रवण मङ्गल कर गान किये थे ।।१९।।

समस्त महज्जनगण, श्रीसार्वभौम प्रभृति मनीषिवृन्द, प्रभुवर श्रीमत् शचीनन्दन एवं रोहिणी नन्दन राम को देखकर पुलक अश्रु प्रभृति प्रेम विकार मण्डित होकर श्रीकृष्ण गुण कीर्त्तन रस में निमग्न हुये थे ।।२०।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे श्रीप्रतापरुद्रानुग्रहो
नाम षोड़शः सर्गः ।।

८

सप्तदशः सर्गः

***

अथ भक्तगणाः सर्व्वे ये ये गौड़निवासिनः ।
गन्तुमिच्छन्ति गौराङ्गदर्शनाय नीलाचलम् ॥१॥
आचार्य्यः श्रीमदद्वैत ईश्वरो जगतां गुरुः ।
सगणः परमानन्दः श्रीवासः सहभ्रातृभिः ॥२॥
आचार्य्यरत्नः श्रीचन्द्रशेखराचार्य्य एव च ।
पुण्डरीकाक्षको विद्यानिधिः प्रेमनिधिस्तथा ॥३॥
गङ्गादासाख्यकश्चैव पण्डितः सद् गुणान्वितः ।
वक्रेश्वरः पण्डितश्च प्रद्युम्नब्रह्मचार्य्यपि ॥४॥
हरिदासाख्यठक्कुरो हरिदासद्विजस्तथा ।
श्रीवासुदेवदत्तः श्रीमुकुन्ददत्त एव च ॥५॥
श्रीशिवानन्दसेनश्च पुत्रदारासमन्वितः ।
श्रीगोविन्दघोष एव मुकुन्दो गायकोत्तमः ॥६॥
लेखको विजयश्चैव श्रीसदाशिवपण्डितः ।

सप्तदशः सर्गः

अनन्तर जो जो भक्त वृन्द गौराङ्ग महाप्रभु के दर्शन निमित्त नीलाचल गमनेच्छु हुये थे, उन सब का विवरण इस प्रकार है । जगद् गुरु अद्वैत आचार्य्य, सगण परमानन्द, भ्रातृगण सह श्रीवास, आचार्य्य रत्न श्रीचन्द्रशेखर, श्रीपुण्डरीकविद्यानिधि, प्रेमनिधि सर्वसद् गुणान्वित गङ्गादास पण्डित, वक्रेश्वर पण्डित, प्रद्युम्न ब्रह्मचारी, हरिदास ठाकुर, हरिदास द्विज, वासुदेवदत्त, श्रीमुकुन्ददत्त, श्रीशिवानन्द सेन उनके पुत्र परिवार वर्ग, श्रीगोविन्द घोष, उत्तम गायक मुकुन्द, लेखक विजय, श्रीसदाशिव पण्डित, पुरुषोत्तम, सञ्जय, श्रीनाथाख्य पण्डित, श्रीनन्दन, शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी, खोलावेचा भक्त

पुरुषोत्तमो सञ्जयस्य श्रीमानाख्यकपण्डितः ॥७॥
श्रीनन्दनाख्यको ब्रह्मचारी शुक्लाम्बरस्तथा ।
खोलावेचेतिविख्यातः स भक्तश्रीधर सुखी ॥८॥
लेखकपण्डितश्चैव गोपीनाथाख्यपण्डितः ।
श्रीगर्भपण्डितश्चापि पण्डितो वनमालिकः ॥९॥
जगदीशः पण्डितश्च हिरण्याख्यश्च वैष्णवः
बुद्धिमन्ताख्यखानश्च आचार्य्यः श्रीपुरन्दरः ॥१०॥
राघवः पण्डितश्चैव वैद्यसिंहमुरारिकः ।
श्रीगरुड़पण्डितश्च गोपीनाथाख्यसिंहकः ॥११॥
श्रीरामपण्डितश्चैव श्रीनारायणपण्डितः ।
दामोदरः पण्डितश्च रघुनन्दनठक्कुरः ।१२।
श्रीमुकुन्द-नरहरि-चिरञ्जीव–सुलोचनाः ।
रामानन्दवसुश्चैव सत्यराजादयस्तथा ।१३।
सर्व्वे श्रीकृष्णचैतन्यप्राणाः प्रेमसमन्विताः ।
आचार्य्यप्रभुणा सार्द्धमाययुः पुरुषोत्तमम् ।१४।
श्रीमन्नरेन्द्रमायातान् भक्तान् सर्व्वेश्वरो हरिः ।

सुखी श्रीधर, लेखक पण्डित, गोपीनाथ पण्डित, श्रीगर्भ पण्डित, वनमाली पण्डित, जगदीश पण्डित, हिरण्याख्य वैष्णव,बुद्धिमन्तखान, आचार्य्य पुरन्दर, राघव पण्डित वैद्यसिंह मुरारि, श्रीगरुड़ पण्डित, गोपीनाथसिंह, श्रीराम पण्डित, श्रीनारायण पण्डित, दामोदर पण्डित, रघुनन्दन ठाकुर, श्रीमुकुन्द; श्रीनरहरि, चिरञ्जीव,सुलोचन रामानन्द वसु, सत्यराज प्रभृति ॥१-१३॥

प्रेमभक्ति समन्वित श्रीकृष्ण चैतन्य प्राण सर्वस्व भक्त वृन्द श्रीआचार्य्य प्रभु के सहित पुरुषोत्तम क्षेत्र गमन किये थे ॥१४॥

निकटस्थान् भक्तगणान् प्रेषयामास सत्वरम् ।१५।
पश्चादेव स्वयमपि गन्तुं चक्रे मनः प्रभुः ।
भक्तप्राणो भक्तवशो भक्तानां प्रीतिदः सदा ।१६।
नित्यानन्दप्रभुश्चैव पण्डितः श्रीगदाधरः ।
पुरी श्रीपरमानन्दो भट्टः श्रीसार्व्वभौमकः ।१७।
पण्डितो जगदानन्दस्तथा श्रीकाशीमिश्रकः ।
दामोदरस्वरूपश्च पण्डितः शङ्करस्तथा १२।
श्रीकाशीश्वरगोस्वामी पण्डितो भगवांस्तथा ।
श्रीलप्रद्युम्नमिश्रः श्रीपरमानन्दपात्रकः ॥१९॥
श्रीरामानन्दरायश्च गोविन्दो द्वारपालकः ।
ब्रह्मानन्दभारती च श्रीरूपः श्रीसनातनः ॥२०॥
श्रीरघुनाथदासश्च वैद्यः श्रीरघुनाथकः ।
श्रीनारायणनन्दाख्य आचार्य्यपुत्रनन्दनः ।२१।
अच्युतानन्दगोस्वामी गौराङ्गप्राणवल्लभः ।
शिखिमाहेतिविख्यातो वाणीनाथस्तथापरे ।२२।

नरेन्द्र सरोवर में भक्त वृन्द का आगमन होने पर भक्तवत्सल सर्वेश्वर गौरहरि निकटस्थ भक्त वृन्द को आशु प्रेषण किये थे ॥१५॥

अनन्तर भक्तवश, भक्त प्रीतिद प्रभु, स्वयं वहाँपर उपस्थित होने के निमित्त मनस्थ किये थे ॥१६॥

नित्यानन्द प्रभु, पण्डित गदाधर, परमानन्द पुरी, भट्टाचार्य श्रीसार्वभौम, पण्डित जगदानन्द, काशी मिश्र, स्वरूप दामोदर, पण्डित शङ्कर, काशीश्वर गोस्वामी, भगवान् पण्डित, प्रद्युम्न मिश्र, परमानन्द पात्र, रामानन्द राय, गोविन्द द्वारपाल, ब्रह्मानन्द भारती, श्रीरूप, सनातन, श्रीरघुनाथदास, वैद्यरघुनाथ, श्रीनारायण, आचार्य्य पुत्र नन्दन, अच्युतानन्द गौराङ्ग प्राण वल्लभ शिखिमाहिती, वाणी

ये क्षेत्रवासिनो भक्ता आययुः प्रभुणा सह ।
एतैः समन्वितः कृष्णचैतन्यो भक्तवत्सलः ।२३।
श्रीनरेन्द्रसरस्तीरमागतः परमेश्वरः ।
तत्राद्वैतोऽपि भगवान् सभक्तः समुपस्थितः ।२४।
उभयोर्द्दर्शनादेव सर्व्वे जातमहोत्सवाः ।
अश्रुकम्पादयो भावा मूर्त्तिमन्तस्तदा बभुः ।२५।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे भक्तानुग्रहो
नाम सप्तदशः सर्गः ।

**

अष्टादशः सर्गः

***

भावमासाद्य ते सर्व्वे परमानन्दविह्वलाः ।
नमन्ति दण्डवद्भूमौ हरिध्वनिसमन्विताः॥१॥

नाथ प्रभृति श्रीक्षेत्रस्थ भक्त वृन्दके सहित भक्त वत्सल श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नरेन्द्र सरोवर के और गमन किये थे ॥१७–२३॥

परमेश्वर श्रीकृष्णचैतन्य देव श्रीनरेन्द्र सरोवर के तीर में उपस्थित होने पर भक्त वृन्द के सहित श्रीअद्वैत आचार्य भी उपस्थित हुये थे ॥२४॥

उभय के दर्शन से भक्तवृन्द महानन्द से विभोर हो गये थे, एवं अश्रु कम्पादि भावों से परिशोभित हुये थे ॥२५॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते चतुर्थ प्रक्रमे भक्तानुग्रहो
नाम सप्तदशः सर्ग ॥

अष्टादशः सर्गः ॥

भक्ति भावाक्रान्त होकर भक्त वृन्द परमानन्द विह्वल होकर श्रीहरि ध्वनि के सहित भूतल में दण्डवत् प्रणत हुये थे ॥१॥

ईश्वरोऽपि नमश्चक्रे वैष्णवैः सह वैष्णवान् ।
दर्शयन्नाश्रमादीनां वैष्णवाराधने विधिम् ॥२॥
अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्य इति कृष्णमुखोदितम् ॥३॥
प्रकाश्यजनसंघानां हिताय जगदीश्वरः ।
वैष्णवान् वन्दनं चक्रे न्यासादिमदखण्डनम् ॥४॥
कम्पाश्रुपुलकव्याप्ता धूलिमण्डितविग्रहाः ।
नृत्यन्तश्च नमन्तश्च गायन्तस्ते पुनः पुनः ॥५॥
गौराङ्गदर्शनानन्दमत्ता स्वं न विदन्ति ते ।
गौराङ्गो जय गौराङ्ग गौराङ्ग इति वादिनः ॥६॥
तथा वैष्णवपत्न्यश्च दूरे दृष्ट्वा महाप्रभुम् ।

ईश्वर होकर भी वैष्णव वृन्द के सहित वैष्णव वृन्द को प्रणाम किये थे, कारण, सर्व वर्णाश्रमियों के पक्ष में वैष्णवाराधन करना एकान्त कर्त्तव्य है ॥२॥

यदि मानव सुदुराचार परायण होकर भी श्रीकृष्णभजन के निमित्त अनन्य बुद्धि को प्राप्त करता है, तो उसे साधु जानना होगा, कारण, उसने अपना उत्तम निश्चय किया है, यह वचन, श्रीकृष्ण का मुखोदित है ॥३॥

जगदीश्वर गौरहरि, प्रकाश्य जन निकर के हित के निमित्त न्यासादिमद खण्डन कारी वैष्णव वन्दन किये थे ॥४॥

भक्त वृन्द, धूलीधूसरिताङ्ग होकर एवं कम्पाश्रु पुलक व्याप्त होकर पुनः पुनः नृत्य, नमन, एवं श्रीहरि नाम गान करते थे ॥५॥

गौराङ्ग देव दर्शन से वे सब मत्त होकर अपने को भूल गये थे, एवं केवल जय गौराङ्ग ! जय गौराङ्ग ! जय जय गौराङ्ग, ही कहते थे ॥६॥

वैष्णव पत्नि वृन्द भी दूर से प्रभु को देखकर जिस प्रकार प्रेम

तासां प्रेमपराकाष्ठां को वेद कोऽपि संवदेत् ॥७॥
ततस्ता श्रीहरेर्भक्तिसंव्यापिन्यो न संशयः।
श्रीकृष्णनामपूर्णास्याः प्रेमाङ्कपुलकान्विताः ॥८॥
तदैव रामकृष्णौ श्रीयात्रागोविन्द एव च।
जलक्रीड़ार्थमायातौ नरेन्द्रसरसि ध्रुवम् ।६।
महाविभूतिसंयुक्ता हरिसङ्कीर्त्तनादिभिः।
मण्डिता भक्तवर्गैश्च गौर गोविन्दकिङ्कराः ।१०।
नावमासाद्य तावच्च विहरन्तो महामुदः।
गोविन्दरामकृष्णाश्च कुर्व्वन्ति जलकौतुकम् ।११।
सभक्तो गौरचन्द्रश्च जलमाविश्य कौतुकी।
गदाधररसोल्लासी नित्यानन्दसुखप्रदः ॥१२॥
अद्वैताचार्य्यप्रेष्ठश्च स्वरूपाद्यैः समन्वितः।

पराकाष्ठा में उपनीत हुई थीं, उस का वर्णन कौन कर सकते हैं ॥७॥

अतएव वे सब महिलावृन्द, श्रीहरि भक्ति स्वरूपा रही इस में सन्देह नहीं है, कारण श्रीकृष्णनाम पूर्ण वन्दना एवं प्रेमाङ्क पुलकान्विता वे सब रहीं ॥८॥

उस समय श्रीराम कृष्ण, एवं श्रीयात्रा गोविन्द, जलक्रीड़ार्थ नरेन्द्र सरोवर में आये थे ॥६॥

महाविभूति सम्पन्न गौर गोविन्द किङ्कर वृन्द, भक्त वृन्द मण्डित श्रीहरि सङ्कीर्त्तन के सहित अवस्थित थे ॥१०॥

नाब को अवलम्बन कर परमानन्द से गोविन्द राम कृष्ण कौतुकमय जल बिहार किये थे ॥११॥

भक्त गण सह गदाधर रसोल्लासी, नित्यानन्द सुखप्रद, गौर चन्द्र कौतुक वश जल में प्रवेश किये थे ॥१२॥

स्वरूपादि के सहित प्रेष्ठ श्रीअद्वैताचार्य्य भी पुराकाल में

क्रीड़ति परमानन्द यमुनायां यथा पुरा ।१३।
स सनातनरूप श्रीरघुनाथेश्वरो हरिः ।
मुरारि-राम श्रीवास-गोरीदास-प्रियोऽपि यः ।१४।
परमानन्दपुरी वंशी रामानन्दसहायवान् ।
काशीश्वरमानदाता हरिदासप्रियङ्करः ।१५।
स्वप्रकाशतया सर्व्वभक्तैश्च विपिनेश्वरः ।
सहैव क्रीड़ति गौर गोविन्दः शचीनन्दनः ।१६।
सर्व्वे जानन्ति क्रीड़न्तं गौराङ्गो हि मया समम् ।
तेन सार्द्धं भक्तगणाः कुर्व्वन्ति जलकौतुकम् ।१७।
गोपीभिः सह गोविन्दो यमुनायां यथा पुरा ।
अकरोद्विविधां क्रीड़ां श्रीरासरसकौतुकी ॥१८॥
यथा गोपीजनाः कृष्णं जलक्रीड़ापरायणम् ।
सुखयन्ति निजप्रेमविलासनवविभ्रमैः ॥१९॥

यमुना में जल विहार के समान जलक्रीड़ा करते थे ॥१३॥

सनातन, रूप, श्रीरघुनाथेश्वर हरि, मुरारि, राय श्रीवास गौरीदास, परमानन्द पुरी, वंशी रामानन्द, मानदाता काशीश्वर प्रियङ्कर हरिदास के सहित विपिनेश्वर गौर गोविन्द श्रीशचीनन्दन स्व प्रकाश रूप में क्रीड़ा करते थे ॥१४–१६॥

सब व्यक्ति जानते थे कि – मेरे साथ ही श्रीगौराङ्ग जलक्रीड़ा कर रहे हैं। भक्त गण श्रीगौराङ्ग के सहित जल कौतुक भी करते थे ॥१७॥

जिस प्रकार प्राचीन काल में गोपीवृन्द के सहित यमुना में रासरस कौतुकी श्रीकृष्ण विविध क्रीड़ा किये थे। जिस समय गोपी जनगण निज प्रेम विलास विभ्रमके द्वारा जल क्रीड़ा परायण श्रीकृष्ण को सुखी करती थीं, उस प्रकार ही श्रीगोविन्द, राम कृष्ण, श्रीयात्रा

एवं जलविहारञ्च कारयित्वा यथोचितम् ।
गौराङ्गो रामकृष्णो श्रीयात्रागोविन्द एव च ।२०।
उत्तिष्ठन्ति जलह्रदाद्भूषिता भूषणोत्तमैः ।
पूजिता चोपहारैश्चस्व वस्वभृत्यसमन्विताः ।२१।
नृत्यवाद्यसुगानाद्यैर्मन्दिरं प्रययुः सुखम् ।
रामकृष्णौ च श्रीयात्रागोविन्दः स्वजनैः सह ।२२।
गौराङ्गश्च निजैर्भक्तैः कृष्णसंकीर्त्तनैः परैः ।
समं भक्तावेशतया ययौ श्रीहरिमन्दिरम् ।२३।
जगन्नाथमुखं दृष्ट्वा सभक्तः प्रेमविह्वलः ।
गरुड़स्तम्भमाश्रित्य स्थितो दर्शनलालसः ॥२४॥
नित्यानन्दसुखोल्लासी भक्तवर्गसमन्वितः ।
द्वौ पार्श्वे पश्यन्ति गौरचन्द्र रामजनार्द्दनौ ।२५।

गोविन्द, गौराङ्ग यथोचित जल विहार कर तीर में उत्थित होने पर सेवक वृन्द उतम वसन भूषण के द्वारा भूषित कर विविध उपचार द्वारा पूजन किये थे ॥१८–२१॥

रामकृष्ण, श्रीयात्रा गोविन्द, नृत्य, गीत, वाद्य परायण स्वजनगण के सहित निज मन्दिर में गमन किये थे ॥२२॥

सङ्कीर्त्तन परायण निज भक्त वृन्द के सहित श्रीगौराङ्ग देव भक्तावेशाविष्ट होकर श्रीहरि मन्दिर में गमन किये थे ॥२३॥

भक्त वृन्द के सहित प्रेम विह्वल होकर श्रीजगन्नाथ के श्रीमुख दर्शन प्रभु किये थे। एवं गरुड़ स्तम्भ को अवलम्बन कर दर्शन लालसा कृष्ट हुये थे ॥२४॥

भक्त वर्ग समन्वित नित्यानन्द सुखोल्लासी गौरचन्द्र राम-जनार्दन को उभय पार्श्व में दर्शन कर रहे थे ॥२५॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे नरेन्द्रसरोविहारो नामाष्टादशः सर्गः ।

**

ऊनविंशः सर्गः

***

ततो भक्तगणैः सार्द्धं नित्यानन्दधृतः प्रभुः ।
काशीनाथगृहं शीघ्रमागतो जगदीश्वरः ।१।
जगन्नाथप्रसादान्नं नित्यानन्दसमन्वितः ।
श्रीलाद्वैतादिभिः सार्द्धं स्वरूपाद्यैर्निवेदितम् ।।२।।
भुक्त्वा चतुर्व्विधं द्रव्यं भक्तसङ्कल्पपालकः ।
भोजयामास स्वान् भक्तान् पुत्रप्रायेण लालयन् ।३।
त्वं भुङ्क्ष भुङ्क्ष भुङ्क्षेति वात्सल्यरसमूर्त्तिमान् ।
जगदानन्दस्वरूपाद्यैर्द्वारैरेव दयानिधिः ।४।
एवं क्रमेण प्रत्यक्षं संबोध्य कोशलान्वितः ।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थ प्रक्रमे नरेन्द्र सरोविहारो नामाष्टादशः सर्गः।।

ऊनविंशः सर्गः ।।

जगदीश्वर प्रभु श्रीनित्यानन्द को अवलम्बन कर भक्तवृन्द के सहित काशीनाथ के गृह में सत्वर आये थे ।।१।।

नित्यानन्द के सहित प्रभु जगन्नाथ के प्रसाद सेवन किये थे, जिस में श्रीअद्वैत प्रभृति के सहित स्वरूप परिवेशन किये थे ।।२।।

भक्त सङ्कल्प पालक प्रभु पुत्रवत् लालन पालन कर निज भक्त वृन्द को भोजन कराये थे ।।३।।

"तुम भोजन करो, भोजन करो भोजन करो" यह कहकर दयानिधि गौरहरि कौशल पूर्वक, एवं प्रत्यक्ष रूप से चतुर्विध भूरिद्रव्य

संभोज्य भूरिद्रव्येण चातुर्व्विध्येन वैष्णवान् ।५।
गण्डुकादिक्रियाः सर्व्वं समाप्य जगदीश्वरः ।
चन्दनपुष्पमालाभ्यां भूषयित्वा यथाक्रमम् ।६।
नित्यानन्दाद्वैतमुख्यान् भक्तान् गौड़निवासिनः ।
उत्कलस्थानपि श्वेतद्वीपस्थान् वैष्णवान् प्रभुः ।७।
लालयायास करुणो वात्सल्याद्भक्तवत्सलः ।
तैः समं सुखमासीनः सङ्कीर्त्तनकुतूहली ।८।
राजाज्ञया महापात्रश्चन्दनेश्वरसंज्ञकः ।
भक्तान् निवासयामास गेहे गेहे यथासुखम् ।९।
एवं भक्तगणाः सर्व्वे सङ्कीर्त्तनपरायणाः ।
तिष्ठन्ति प्रभुणा सार्द्धं सङ्कीर्त्तनविनोदिना ।१०।
प्रभुप्रीतये यद्द्रव्यं तैरानीतं प्रयत्नतः ।
तेन वैष्णवपत्नीभिः पाचितं परमादरात् ।११।

वैष्णव वृन्द को भोजन कराये थे ।।४-५।।

जगदीश्वर गौरहरि गण्डुषादि किया समापन पूर्वक चन्दन पुष्प माल्य के द्वारा क्रमशः भूषित किये थे, उनसे अद्वैत नित्यानन्द प्रभु रस गौड़देशीय भक्त वृन्द, उत्कल वासी भक्त वृन्द, एवं श्वेत द्वीप-निवासी भक्त वृन्द थे। सहज वात्सल्य से भक्तवत्सल करुण प्रभुके सब का लालन पालन किया, एवं उनसब के सहित सङ्कीर्त्तन कुतूहली प्रभु सुखपूर्वक अवस्थान किये थे ।।६-७-८।।

सङ्कीर्त्तन विनोदी प्रभु के सहित सङ्कीर्त्तन परायण समस्तभक्त वृन्द अवस्थान किये थे। राजाकी आज्ञा से महापात्र संज्ञक चन्दनेश्वर भक्त वृन्द के सुख निवास हेतु स्थान सम्पादन किये थे ।।९-१०।।

प्रभु की प्रीति से वशीभूत होकर भक्तवृन्द ने उपायन स्वरूप जो द्रव्य आनयन किये थे। वैष्णव पत्नीगण उक्त द्रव्य समूह का पाक

अन्नं चतुर्व्विधेनापि रसेन सहितं प्रभुः ।
बुभुजे च घृतैः सिक्तां सभक्तः साग्रजः सुखी ।१२।
अद्वैतो भगवान् साक्षात् स्वयमोदनमुत्तमम् ।
भुङ्क्त्वा सुमधुरं चापि नेमे तं भार्य्यया सह ।१३।
निभृतं भोजयामास क्षीरं घृतसमन्वितम् ।
स्वप्राणवल्लभं कृष्णचैतन्यं भक्तवत्सलम् ।१४।
एवं क्रमेण श्रीवासपण्डिताद्याः सपत्निकाः ।
सेवां चक्रु भंगवतो गौराङ्गस्य यथासुखम् ।१५।
ततश्च प्रेमगोस्वामी समन्व्रच स्वजनैः सह ।
नवीनं गौरचन्द्रस्य नामसङ्कीर्त्तनं शुभम् ॥१६॥
करोति मण्डलीकृत्य हर्षेण वैष्णवैः सह ।
नृत्यति परमोद्दण्डं गर्ज्जति धावति क्वचित् ॥१७॥

परम आदर पूर्वक किये ॥११॥

अग्रज के सहित प्रभु, चतुर्विध घृतसिक्त अन्न भोजन आनन्द से किये थे ॥१२॥

साक्षात् भगवान् अद्वैत, सुमधुर उत्तम अन्न भोजन कराने की इच्छा करके भार्य्या के सहित निभृत में प्राण वल्लभ श्रीकृष्णचैतन्य देवको क्षीर एवं घृत समन्वित द्रव्य भोजन कराये थे ॥१३-१४॥

इस क्रमसे श्रीवासादि पण्डित वर्ग निज निज पत्नी के सहित सुख पूर्वक श्रीगौरहरि की सेवा किये थे ॥१५॥

अनन्तर भक्त वृन्द को लेकर श्रीगौरचन्द्र का नवीन नाम सङ्कीर्त्तन सर्व मङ्गल रूप में प्रेम गोस्वामी ने प्रारम्भ किया ॥१६॥

वैष्णव वृन्द के सहित आनन्द से मण्डली बन्धन कर शुभनाम सङ्कीर्त्तन प्रारम्भ किये थे। एवं उस से कभी नृत्य, कभी परमोद्दण्ड नृत्य, कभी गर्जन एवं धावन करते थे ॥१७॥

नित्यानन्दोऽपि भगवान् गौराङ्गभावभावितः ।
यस्य नृत्यपदाघातैः कम्पते भुवनत्रयम् ॥१८॥
मत् प्राणसर्व्वस्वगौरचन्द्र मामुद्धर प्रभो ।
नित्यानन्दप्रियगौर गदाधररसप्रदः ॥१९॥
श्रीवासादिप्रियप्राण प्रेमद करुणार्णव ।
एवं सङ्कीर्त्तनं सोऽपि गौराङ्गः कीर्त्तनप्रियः ।२०।
कृष्णसङ्कीर्त्तनं मत्वा जगौ प्रेमवशः स्वयम् ।
स एव कीर्त्तनानन्दो ब्रह्माण्डं पुरयन् बभौ ।२१।
सर्व्वे पश्यन्ति नृत्यन्तं गौरचन्द्रं स्वसम्मुखम् ।
यथा मध्यगतं कृष्णं बालका वनभोजनः ॥२१॥
ईश्वरोऽपि भगवताद्वैताचार्य्येण संयुतः ।
नित्यानन्दो महातेजाः प्रेमोन्मादेन नृत्यति ।२३।

गौराङ्ग भावविभावित भगवान् नित्यानन्द सङ्कीर्त्तन में नृत्य करते थे, जिनके नृत्य पदाघात से भुवन त्रय कम्पित होते हैं ॥१८॥

श्रीवासादि प्रिय प्राण ! प्रेमद ! करुणाब्धे ! मत् सर्वस्व प्राणनाथ गौरचन्द्र ! हे प्रभो मामुद्धर ! नित्यानन्द प्रिय गौर ! गदाधर रस प्रद ! शब्दोच्चारण पूर्वक कीर्त्तन करते थे । कीर्त्तन प्रिय श्रीगौराङ्ग भी श्रीकृष्णसङ्कीर्त्तन जानकर स्वय प्रेम विभोर होकर कीर्त्तन किये थे । इस प्रकार कीर्त्तनानन्द से ब्रह्माण्ड परिपूर्ण हुआ था ॥१९-२०--२१॥

सर्व व्यक्ति देख रहे थे, गौर चन्द्र निज सम्मुख में ही कीर्त्तन करते रहते हैं, जिस प्रकार वन भोजन लीला में बालक गण श्रीकृष्ण को मध्यस्थ में ही देखे थे ॥२२॥

ईश्वर होकर भी भगवान् अद्वैताचार्य्य के सहित महातेजाः नित्यानन्द प्रेमोन्माद से नित्य किये थे ॥२३॥

मत्तपारीन्द्रविक्रान्तः कारयन्नवनीतलम् ।
गौराङ्गप्रेमदाता यस्तस्य किं चित्रमेव तत् ।२४।
गदाधरोऽपि गौरौङ्गप्रीतिदो नृत्यति सुखम् ।
श्रीवासाद्याः सुखं सर्व्वे नृत्यन्ति गौरचेतसः ।२५।
एतदन्तर्गतं यस्य गौराङ्गगुणकीर्त्तनम् ।
स एव साक्षी नान्ये च कोटिशो ज्ञानपारगाः ।२६।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे श्रीमदद्वैतप्रभुकृतं
श्रीगौराङ्गकीर्त्तनं नामैकोनविंशतितमः सर्गः ।

मत्त पारीन्द्र के समान बलशाली नित्यानन्द थे,उन्होंने पृथिवी को निज विहार विक्रम से पवित्र किया, कारण, जो श्रीगौराङ्ग प्रेमदाता हैं, उनके पक्ष में दुर्घट क्या है ? ॥२४॥

श्रीगौराङ्ग प्रीतिद श्रीगदाधर भी नृत्य, सुख पूर्वक करते थे । गौरगत प्राण श्रीवासादि भक्त वृन्द भी सुख पूर्वक नृत्य किये थे ॥२५

श्रीगौराङ्ग गुण कीर्त्तन जिनके हृदय में अवस्थित वह ही इस का साक्षी है, अपर अतिशय ज्ञानपरायण व्यक्ति भी गौर लीला को जानने में अक्षम है ॥२६॥

इति श्रीकृष्णचैतन्य चरिते चतुर्थ प्रक्रमे श्रीमदद्वैत प्रभुकृतं
श्रीगौराङ्ग कीर्त्तनं नामैकोनविंशतितमः सर्गः ॥

**

विंशतितमः सर्गः

एकदा दृष्टवान् कृष्णः श्रीदामोदरपण्डितम् ।
सत्यं कथय मन्मातुः कृष्णभक्तिर्दृढ़ास्ति किम् ।१।

**

विंशतितमः सर्गः ।

एकदिन भगवान् श्रीगौरकृष्ण, श्रीदामोदर पण्डित को पूछे थे,

श्रुत्वा स प्राह सक्रोधस्तत् प्रसादात् परं त्वयि ।
सास्ति कृष्णरसा भक्तिर्नित्यानन्दस्वरूपिणी ।२।
दृष्ट्वा विप्रं परिष्वज्य प्राह सकरुणं प्रभुः ।
यथा त्वं प्राह मां बन्धो सत्यं तं गर्व्वमेव हि ।३।
तदाज्ञया हि क्षेत्रेऽस्मिन् वसामि नात्र संशयः ।
तत्प्रेम्ना नीयते तस्याः सन्निधिमप्यलं खलु ।४।
ततः श्रीजगदीशस्य स्नानयात्रामहोत्सवम् ।
ददर्श परमप्रीतः सभक्तः साग्रजो हरिः ।५।
ततोऽनवसरं वीक्ष्य राममाधवयोः प्रभुः ।
सभक्तो दुःखसन्तप्तो दृष्ट्वाऽप्यालालनाथकम् ॥६॥
पश्यन् देवं सप्तरात्रि स्थित्वायातः स सत्वरम् ।

सत्य कर कहो, श्रीकृष्ण चरणारविन्द में मेरी मा की दृढ़ा भक्ति क्या है ? ॥१॥

सुनकर दामोदर पण्डित सक्रोध से बोले थे, उनके प्रसाद से हो तो आपमें श्रीनित्यानन्द स्वरूपिणी कृष्णरसा भक्ति विद्यमान है ।२

प्रभुने कारुण्यवश होकर विप्र को आलिङ्गन कर कहा, हे बन्धो ! तुमने जो कुछ मुझ से कहा, वह सर्वथा सत्य है। मैं तो केवल गर्व ही करता हूँ ॥३॥

मैं तो माता की आज्ञा से ही श्रीक्षेत्र में रह रहा हूँ। इस में विन्दुमात्र संशय नहीं है । उनका प्रेम ही मुझ को उन की सान्निध्य प्राप्त यथेष्ट कराता रहता है ॥४॥

अनन्तर साग्रज श्रीहरि श्रीजगदीश्वर की स्नानयात्रा महोत्सव को देखकर परमप्रीत हुये थे ॥५॥

पश्चात् राममाधव का अनवसर को देखकर भक्त वृन्दके सहित दुःख सन्तप्त होकर आलाल नाथ को चले गये थे। वहाँ आलाल नाथ का दर्शन सात रात्रि रह कर आपने किया, अनन्तर सत्वर अग्रज को

नेत्रोत्सवं च संपश्यन् साग्रजस्य जगत्पतेः ।७।
सङ्कीर्त्तनरसानन्दैर्ननर्त्त स्वजनैः सहः ।
भक्ताभिमानी भगवान् नित्यानन्दकराश्रितः ।८।

ततः स्वमालयं गत्वा स्वभक्तैः संवृतो हरिः ।
भुक्त्वा महाप्रसादञ्च भक्तदत्तः सुखं बभौ ।।९।।

एवं सदानन्दरसेऽतिमत्तः
श्रीगौरचन्द्रो हरिराममयोः शुभम् ।
महाविभूत्यौः किल स्यन्दनोत्सवं
द्रष्टुं स्वभक्तैः सह सत्वरं ययौ ।१०।

दृष्ट्वा च रामं मधुसूदनञ्च सुदर्शनेनापि युतां सुभद्राम्।
रथस्थितौ तौ रथसंस्थितां तां संवीक्ष्य हर्षेण ननाम साग्रजः ।११।

देखकर जगदीश के नेत्रोत्सव सन्दर्शन निमित्त प्रस्थान किये थे ।।६-७।।

श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन रस में निमग्न होकर स्वजन गण के सहित नित्यानन्द के करावलम्बन कर भक्ताभिमानी भगवान् नृत्य किये थे ।।८।।

अनन्तर निज वासस्थान में उपस्थित होकर निज भक्तगण परिवेष्टित होकर भक्त दत्त महा प्रसादान्न भोजन श्रीगौरहरि किये थे ।।९।।

इस प्रकार सदानन्द रस में विभोर होकर श्रीगौर चन्द्र महाविभूति पूर्ण श्रीराम माधव के शुभ रथ यात्रा महोत्सव दर्शन हेतु भक्त वृन्द के सहित प्रस्थान किये थे ।।१०।।

श्रीराम, मधुसूदन, सुदर्शन, एवं सुभद्रा कों रथ में अवस्थित देखकर अग्रज के सहित हर्षोद्रिक्त चित्त से प्रणाम किये थे ।।११।।

श्रीगुण्डिचामन्दिरमेव सत्वरं
रथाश्च गच्छन्ति सुमेरुतुल्याः ।
स्वभक्तवर्गः किल गौरचन्द्रमा
ययौ तदाग्रेऽखिलभावभावितः ।१२।
पश्यन् जगन्नाथमुखारविन्दं
स्मरन् कुरुक्षेत्रविशालवैभवम् ।
संङ्कीर्त्तनानन्दसमुद्रमग्नैः
स्वभक्तवर्गैः किल वेष्टितो हरः ।१३।
श्रीराधिकाप्रेमभरातिमत्तो
हसन् रुदन् प्राह स्वमेव नाद ।
आगच्छ यामि व्रजमण्डलं विभो
वृन्दावनं यत्र सुवंशिकाध्वनिः ।१४।
इति ब्रुवन् नर्त्तनगानमाधुरी
समुद्रमग्नाति मनोमतङ्गजः ।

सुमेरु तुल्य रथ का आगमन गुण्डिचालय में सत्वर होगा, जान कर अखिल भाव भावित गौरचन्द्रमाः स्वभक्त वर्ग समन्वित होकर सर्व प्रथम वहाँपर उपस्थित हुये थे ।।१२।।

आपने श्रीजगन्नाथ की मुखारविन्द सुधा का पान अनिमिष नयन युगल से पुनः पुनः करके एवं कुरुक्षेत्र विशाल वैभव का स्मरण कर सङ्कीर्त्तनानन्द समुद्रमग्न भक्तवृन्दके द्वारा परिवेष्टित हुये थे ।।१३

श्रीराधिका प्रेम भरातिमत्त होकर हँसकर, रोदन कर, प्रभु कहने लगे, हे नाथ ! हे विभो ! आओ, व्रज मण्डल को चले, जहाँ वृन्दावन है, एवं सुवंशिकाध्वनि है ।।१४।।

इस प्रकार कहकर, नर्त्तन गान माधुरी समुद्रमग्न मनोमतङ्गज श्रीगौरहरि, सत्वर श्रीजगदीश्वर के रथ के सहित सत्वर श्रीगुण्डिचा

श्रीगुण्डिचामन्दिरमाप सत्वरं
रथेन सार्द्धं जगदीश्वरस्य च ॥१५॥
श्रीमन्दिरे रत्नमयीषु वेदीषु
स्वयं प्रकाशासु च संगतौ तौ ।
विवेशतुरामजनार्द्दनौ सुखं
पश्यन्नति प्राह त्वमागतः किम् ।१६।
वृन्दावने आगत एव श्रीहरि
रिति स्ववादीज्जनतास्वनैः प्रभुः ।
सर्व्वं वनं रम्यमनुप्रविश्य च
स्वानन्दतृष्णोऽखिलभावपूर्णः ॥१७॥
जगन्नाथस्य सर्व्वं हि भोगादिरसवैभवम् ।
पश्यन् भक्तजनैः सार्द्धं करोति कीर्त्तनं महत् ।१८।
वृन्दारण्यविलासिनो मुररिपोः श्रीरासलीलां शुभां
साक्षादेव विलासलास्यलहरीपूर्णां मनन् श्रीहरिः ।

मन्दिर को प्राप्त किये थे ॥१५॥

श्रीमन्दिर की स्व प्रकाश रत्नमय वेदी में राम जनार्दन सुखोपविष्ट होने पर श्रीगौर प्रभु ने उनको देखकर पूछा – तुम आगये क्या ? ॥१६॥

श्रीवृन्दावन में श्रीहरि आगये हैं, प्रभु ने जनता की ध्वनि से कहा, एवं रम्य वन प्रदेश में प्रविष्ट होकर स्वानन्द तृष्णा अखिल भाव पूर्ण श्रीगौर हरि परमानन्दित हुये थे ॥१७॥

श्रीजगन्नाथ देव के भोगादि रस वैभव को देखकर भक्त वृन्द के सहित भक्त वृन्द के सहित महत् सङ्कीर्त्तन प्रभु किये थे ॥१८॥

वृन्दारण्य विलासी श्रीमुररिपु की शुभा विलास लास्य लहरी पूर्णा श्रीरास लीला साक्षात् रूप से मानकर स्वयं श्रीनन्दात्मज, भक्ति

श्रीराधारसमाधुरीधुरितनुर्गौराङ्गमूर्त्तिः स्वयं
श्रीनन्दात्मज एव भक्तिरसिकः स्वाराज्यलक्ष्मीं दधे ।१९।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे श्रीगुण्डिचामन्दिर-
विलासो नाम विंशतितमः सर्गः ।

**

एकविंशतितमः सर्गः

***

एवं दिनत्रयं तत्र भक्तेश्वरविभावितः ।
कृष्णो विहरते रत्नमन्दिरं रासमण्डलम् ।१।

नवदिनसमुदायं गुण्डिचाप्रेमवासं
गजपतिनृपसेव्ये नीलशैलाधिनाथे ।
कृतवति जगदीशे साग्रजे गौरचन्द्रो
रथमनुगत एव भक्तवर्गेण सार्द्धम् ॥२॥

होरापञ्चमीयात्राञ्च श्रीलक्ष्मीविजयोत्सवम् ।

रसिक श्रीराधामाधव माधुरी धुरितनु श्रीगौराङ्ग मूर्त्ति स्वाराज्य लक्ष्मी को प्राप्त किये थे ॥१९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्य चरिते चतुर्थ प्रक्रमे श्रीगुण्डिचामन्दिर
विलासो नाम विंशतितमः सर्गः ॥

एकविंशतितमः सर्गः ।

इस प्रकार रीति से दिन त्रय भक्तेश्वर विभावित श्रीकृष्ण रत्नमन्दिर एवं रासमण्डल में विहार किये थे ॥१॥

नव दिवस पर्य्यन्त नीलशैलाधिनाथ, गजपति के द्वारा सेवित होकर गुण्डिचा मन्दिर में निवास करने के पश्चात् पुनर्वार रथारोहण करने पर श्रीगौर हरि भक्त वृन्द के सहित होरा पञ्चमी यात्रा एवं लक्ष्मी विजयोत्सव निष्पन्न कर श्रीजगन्नाथ के सहित नीलशैल में

कृत्वा ययौ नीलशैलं श्रीलीलापुरुषोत्तमः ॥३॥
ततः परं श्रीशचीनन्दनो हरिः पद्मावतीनन्दनरामसङ्गतः ।
श्रीरत्नसिंहासनमध्यसंस्थितं रामानुजं पश्यति वैष्णवैः सह ॥४॥

पौराणिकं ध्यानम् ।

नीलाद्रौ शङ्खमध्ये शतदलकमले रत्नसिंहासनस्थं
सर्व्वालङ्कारयुक्तं नवघनरुचिरं संस्थितं चाग्रजेन ।
भद्राया वामभागे रथचरणयुतं ब्रह्मरुद्रादिवन्द्यं
वेदानां सारमेकं सकलगुणमयं ब्रह्मपूर्णं स्मरामि ।५।
इति ॥

एवं ध्यात्वा गतः कृष्णो मिश्रस्य पुष्पवेष्टिकाम् ।
सुखमासनमासित्वा भक्तान् गौड़निवासिनः ।६।
यापयामास भगवान् जनन्याः सुखहेतवे ।

आगमन किये थे ॥२-३॥

अनन्तर श्रीशचीनन्दन श्रीहरि, पद्मावतीनन्दन राम के सहित एवं वैष्णववृन्द के सहित सिंहासन मध्यमें संस्थित रामानुज श्रीकृष्ण के दर्शन किये थे ॥४॥

पौराणिक ध्यान इस प्रकार है—

नीलाद्रि के रत्न मन्दिरस्थ शतदल कमल शङ्खस्थ सिंहासन में अवस्थित वाम भाग में सुभद्रा, दक्षिण भाग में अग्रज राम समन्वित सर्व्वालङ्कार युक्त नवघन रुचिर, वेदों का एकमात्र सार स्वरूप सकल गुणमय, ब्रह्मरुद्रादि वन्दय पूर्णब्रह्म का स्मरण में करता हूँ ॥५॥

उस प्रकार ध्यान करने के पश्चात् गौर कृष्ण, मिश्र की पुष्प वाटिका में गौड़निवासी भक्त वृन्द के सहित सुख पूर्वक उपवेशन कर समय अतिवाहित किये थे ॥६॥

यातासौ श्रीहरेर्भक्तिरूपिणी प्रेमरूपिणी ।७।
नित्यानन्दं समालिङ्ग्य धृत्वा तस्य करद्वयम् ।
प्राह सगद्गदं याहि गौड़देशं त्वमीश्वरः ।।८।।
तव देहविजानीयाद्विश्वासभरणं मम ।
एतज्ज्ञात्वा यथेच्छं त्वं कर्त्तुमर्हसि हि प्रभो ।९।
मूर्खनीचजड़ान्धाख्या ये च पातकिनोऽपरे ।
तानेव सर्व्वथा सर्व्वान् कुरु प्रेमाधिकारिणः ।।१०।।
तमिति प्रहसन् प्राह नर्त्तकोऽहं तव प्रभो ।
करिष्यामि यथाज्ञा ते यतस्त्वं सूत्रधारकः ।११।
तयोरेवं कथयतोः स्वरूपादिगणैः सह ।
पुरीश्रीपरमानन्दरामानन्दादिभिस्तथा ।१२।

जननी को आनन्दित करने के निमित्त भगवान् श्रीगौर हरि श्रीक्षेत्र में निवास किये थे, कारण, मा, साक्षात् श्रीहरि की भक्ति स्वरूपिणी प्रेमरूपिणी हैं ।।७।।

नित्यानन्द को आलिङ्गन कर एवं कर धारण कर प्रभु गौर हरि गद्गद स्वर से कहे थे, तुम गौड़देश को जाओ ।।८।।

हे प्रभो ! तुम्हारे देह ही मेरा एक मात्र विश्वास पात्र है यह जानकर यथेच्छ आचरण तुम कर सकते हो, तुम ईश्वर प्रभु, समर्थ हो ।।९।।

मूर्ख, नीच, जड़ अन्ध प्रभृति एवं पातकी गण जो कोई हो सब का श्रीकृष्ण प्रेमाधिकारी करो ।।१०।।

नित्यानन्द ने भी हँसकर बोला, प्रभो, मैं आप का नर्त्तक हूँ, आप सूत्रधारक हो, जिस प्रकार आप की आज्ञा हो मैं वही करूँगा ।।११।। नित्यानन्द प्रभु के सहित महाप्रभु श्रीगौराङ्ग महाप्रभु का वार्त्तालाप हो रहा था, उस समय स्वरूपादि का आगमन श्रीपरमानन्द पुरी, रामानन्दादि के सहित हुआ ।।१२।।

द्राविड़स्थो द्विजः कश्चिद्दारिद्रो बुद्धिसत्तमः ।
आजगाम धनार्थं च जगन्नाथदिदृक्षया ।१३।
निवेद्य स्वप्रयोजनं जगन्नाथस्य सन्निधौ ।
स्थितः सप्तदिनान्येव प्रत्यादेशं विचिन्तयन् ।१४।
अप्राप्य वाञ्छितं दुःखात् समुद्रतीरमागतः ।
तत्रैव ह्यागतं दैवाद्विभीषण अदर्शयन् ॥१५॥
पप्रच्छ को भवान् कुत्र याहि स त्वं वदस्व भो ।
सप्ताहं श्रीजगन्नाथदर्शनार्थं गतोऽप्यहम् ।१६।
विभीषणो नाम मह्यमित्युक्त्वा प्रययौ स च ।
विप्रोऽपि तेन सार्द्धञ्च ययौ सौभाग्यपर्व्वतः ।१७।
आगतो गौरचन्द्रस्य समीपं श्रीविभीषणः ।
दृष्ट्वा श्रीचरणद्वन्द्वं तस्य दण्डनतिर्भुवि ।१८।

एकदरिद्र द्राविड़ देशस्थ बुद्धिसत्तम द्विज का आगमन श्रीजगन्नाथ दर्शन कर धन प्राप्त करने की आशा से हुआ ॥१३॥

निज धन प्राप्ति प्रयोजन का जगन्नाथके समीप में निवेदन कर विप्र सातदिन आदेश की प्रतीक्षा कर धन्ना दिये थे ॥१४॥

वाञ्छित सिद्धि नहीं हुई, इस से दुःखित होकर विप्र समुद्र तीरमें आ गये थे, वहाँ दैववशसे समागत विभीषण को आपने देखा ।१५

विभीषण ने पूछा, आप कौन हैं ? ब्राह्मण बोले, मैं सात दिन श्रीजगन्नाथ दर्शन किया, किन्तु अभीप्सित पूर्त्ति नहीं हुई ॥१६॥

विभीषण बोले; मेरा नाम विभीषण है, इस प्रकार कहकर विभीषण चल दिये, विप्र भी उनके साथ चलकर सौभाग्य पर्वत में उपस्थित हुये थे ॥१७॥

श्रीविभीषण श्रीगौरचन्द्र के समीप में आकर दण्डवत् भूतल में निपतित होकर चरण द्वय को देखकर प्रणाम किये थे ॥१८॥

विप्रोपि स चमत्कारं पश्यन् प्रेमपरिप्लुतः ।
दारिद्रं श्लाघयन् दुःखं ननर्त्त जातकौतुकः ।१९।
विभीषणञ्च भगवान् वाञ्छाकल्पतरुः प्रभुः ।
प्राह ब्राह्मणवर्य्याय धनं दत्त्वा भवान् खलु ।२०।
पूर्णयिष्यति येनासौ दुःखरोगाद्विमुच्यते ।
कृताञ्जलिपुटः सोऽपि जग्राह शिरसि वचः ।२१।
श्रुत्वा द्विजवरः प्राह मा मां संत्यक्तुमर्हसि ।
यथा ते वचनप्राप्तिस्तथा कुरु जगद्गुरो ।।२२।।
जगन्नाथ हृषीकेश संसारार्णवतारक ।
पतितप्रेमदः कृष्णस्तमेव मां समुद्धर ।२३।
तं प्राह करुणासिन्धुर्याहि त्वं निजमन्दिरम् ।
भुक्त्वा भोगान् समुत्सृज्य श्रीकृष्णचरणं सदा ।२४।

विप्र, यह सब चमत् कार को देखकर प्रेम परिप्लुत हो गये एवं कौतूहलाक्रान्त होकर दारिद्रय दुःख की प्रशंसा करने लगे, एवं नृत्य करने लगे ।।१९।।

वाञ्छाकल्पतरु प्रभु भगवान् विभीषण को बोले थे, आप ब्राह्मणवर्य्य को धन प्रदान कर दारिद्रय दुःख मुक्त कर सकते हैं। कृताञ्जलि होकर विभीषण ने भी श्रीगौर हरि के वचन को मस्तक में धारण किया ।।२१।।

सुनकर द्विजवर ने कहा, हे जगद् गुरो ! मुझ को त्याग न करो, जिस प्रकार आप की वचनप्राप्ति हो, ऐसा करो ।।२२।। हे जगन्नाथ ! हे हृषीकेश ! हे संसारार्णवतारक ! तुम ही पतित प्रेमद श्रीकृष्ण हो, मेरा उद्धार करो ।।२३।।

विप्र को करुणा सिन्धु गौरहरि बोले थे, तुम निज भवनमें गमन करो,विषय भाग करने के बाद भोगपरित्याग पूर्वक श्रीकृष्ण चरणाश्रय

भजनाल्लभते भक्तिं यथा स्यात् प्रेमसम्पदः ।
एवं श्रुत्वा प्रणम्यासौ ययौ निजगृहं द्विजः ।२५।
विभीषणश्च संस्नात्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ।
जगाम स्वग्रहं रम्यं ध्यायन् तच्चरणाम्बुजम् ।२६।
इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे रामदासानुग्रहो नामैकविंशतितमः सर्गः ।।

**

द्वाविंशतितमः सर्गः

**

ततश्च श्रीगौरचन्द्रो भक्तवर्गसमन्वितः ।
नित्यानन्द पुनरपि प्राह प्रहसिताननः ।।१।।
पूर्व्वं यत् कथितं तच्च कर्त्तव्यं भवता किल ।

करना ।।२४।।

श्रीकृष्ण भजन से भक्तिलाभ होगी, प्रेम सम्पत् भी होगी, यह सुन कर द्विज प्रणाम कर निजगृह को चले गये ।।२५।।

विभीषण भी स्नान कर एवं पुनः पुनः प्रणामकर श्रीप्रभु श्रीचरण नलिन युगल का ध्यान करते करते रम्य निज भबन को चले गये ।।२६।।

इति श्रीकृष्णचैतन्य चरितामृते चतुर्थ प्रक्रमे राम दासानुग्रहो–नामैकोविंशतितमः सर्गः ।।

द्वाविंशतितमः सर्गः ।

अनन्तर भक्त वर्ग समन्वित श्रीगौरचन्द्र हँसकर नित्यानन्द को पुनर्वार कहे थे ।।१।।

पहले जो कुछ मैंने कहा है, वह एकान्त कर्त्तव्य है, आप उस का पालन करें, गौड़देश गमन करें,यह सुनकर नित्यानन्द हँसहँस कर

गच्छ गौड़ं हि तत् श्रुत्वा स जगाम हसन् प्रभुः ।२।
पानिहाटं पुरं रम्यं राघवपण्डितालयम् ।
प्रणमन्तं द्विजं क्रोड़ीकृत्वा प्राह महासुखी ॥३॥
राघव कुरु शीघ्रं मे सुवासितजलैरपि ।
अभिषेकं चन्दनादिपुष्पालङ्करणादिना ।४।
स्वर्णरौप्यप्रवालादिमणिमुक्तादिनिर्म्मितैः ।
भूषणैश्च त्वया कार्य्यं मदङ्गपरिमण्डनम् ॥५॥
येन मे प्राणनाथस्य गौरचन्द्रस्य सर्व्वदा
सच्चिदानन्दपूर्णस्य पूर्णो मनोरथो भवेत् ॥६॥
श्रुत्वा सर्व्वं शीघ्रमेव कारयित्वा जनैर्द्विजः ।
सुगन्धिपयसा सुरदीर्घिकाया मुदान्वितः ।७।
स्नापयित्वा संनिमज्य भूषयित्वा स भूषणैः ।
गन्धचन्दन पुष्पैश्च ननाम भुवि दण्डवत् ॥८॥

चले गये ॥२॥

पानिहाटी ग्राम में राघव पण्डित के रम्य गृह विद्यमान था, वहाँ नित्यानन्द उपस्थित हुये थे, राघव नामक द्विज उनको प्रणाम करने से द्विज को उन्होंने निजाङ्ग स्थापन कर कहा, राघव ! सुवासित्त जल चन्दन पुष्पादि के द्वारा तुम मेरा आभिषेक आशु करो, अनन्तर चन्दन पुष्प अलङ्कार, स्वर्ण रौप्य प्रवाल मणि मुक्तादि निर्मित्त भुषणों के द्वारा तुम मदङ्ग का परिमण्डन करो ॥३-४-५

जिस से मेरा प्राणनाथ सच्चिदानन्द गौरचन्द का सर्वदा मनोरथ पूर्ण हो ॥६॥

आदेश प्राप्तकर राघव पण्डित ने जन समूह के द्वारा अभिषेक सामग्री एकत्रकर एवं आनन्दचित्त से जाह्नवी के सुगन्धित जल सत्वर आनयन पूर्वक श्रीनित्यानन्द का अभिषेक कार्य्य सम्पन्न किया एवं

सर्व्वालङ्कारसंयुक्तो रेजे नन्दसुतो यथा ।
बलदेवः स्वयं चापि स्वयं गोपालरूपधृक् ।९।
श्रीदामाद्याः सखा ये च व्रजगोपालरूपिणः ।
वंशीवेणुविषाणाद्यै रलङ्कारैश्च मण्डिताः ॥१०॥
श्रीरामसुन्दरगौरीदासाद्याः कीर्त्तनप्रियाः ।
विहरन्ति सदा नित्यानन्दसङ्गे महत्तमाः ।११।
एवं स भगवान् रामस्तैः सार्द्धं जाह्नवीजले ।
क्रीड़न् ताण्डवमासाद्य स्वभक्तानां गृहे गृहे ॥१२॥
रममाणः सुखेनापि गदाधरगृहं ययौ ।
गोपीभावेन पूर्णः स दृष्ट्वा तं प्रेमविह्वलः ॥१३॥
आगतः कीर्त्तनानन्दः सप्तग्रामाख्यकं पुरम् ।

विविध भूषणों से भूषितकर गन्धचन्दन पुष्पों के सुसज्जित एवं पूजन कर भूतल में निपतित होकर दण्डवत् प्रणाम किया ॥८॥

बलराम एवं नन्दनन्दन जिस प्रकार सर्व अलङ्कार से भूषित होते थे श्रीदाम प्रभृति गोपाल बालकों के द्वारा परिवेष्टित होते थे, वंशी वेणु विषाण प्रभृति के द्वारा शोभित होते थे उस प्रकार नित्यानन्द भी निरन्तर वसन भूषणों से मण्डित होकर श्रीराम सुन्दर गौरीदास प्रभृति कीर्त्तन प्रिय महत्तम गण के सहित विलसित थे ॥९-१०-११॥

इस प्रकार भगवान् नित्यानन्द राम, भक्त वृन्द के सहित जाह्नवी जल में प्रवेशकर क्रीड़ा ताण्डव करते थे, एवं निज भक्त वृन्द के गृह गृह में सुख पूर्वक विचरण करते थे ॥१२॥

उस रीति से भ्रमण कर एकदिन गदाधर के गृह में उपस्थित हुये थे, गदाधर दास उनको देखकर गोपीभाव से पूर्ण चित्त होकर प्रेम विह्वल हो गये थे ॥१३॥

त्रिवेणीतीरमासाद्य गौराङ्गगुणकीर्त्तने ।१४।
ननर्त्त परमानन्दं गोपीभावं प्रदर्शयन् ।
नित्यानन्दोऽपि गौराङ्गकीर्त्तनानन्ददायकः ।१५।
कृत्वा तस्मान्महोल्लासं पुरन्दरगृहं ययौ ।
तस्य प्रेमरसेनापि कृत्वा तस्य सुखञ्च सः ।१६।
यत्र सप्तर्षयः सर्व्वे स्मरन्ति भावतः पदम् ।
मुक्तवेणीतयाख्यातं वदन्ति वेदपारगाः ।१७।
गङ्गायमुनयोश्चैव सरस्वत्याश्च सर्व्वदा ।
प्रवाहाश्च वदन्तिस्म दद्दर्शनमहोत्सवाः ॥१८॥
नरा मुक्त भवन्ति हि स्नात्वा वा स्मरणादपि ।
हरौ भक्तिञ्च विन्दन्ति सर्व्वदुःखविनाशिनीम् ॥१९॥

अनन्तर कीर्त्तनानन्द प्रभु, सप्तग्राम में उपस्थित हुये थे एवं त्रिवेणी तीर को प्राप्तकर गोपीभाव प्रदर्शन पूर्वक परमानन्दित होकर गौर, गुण गान नर्त्तन किये थे ॥१४॥

भक्त वृन्द के सहित गौराङ्ग कीर्त्तनानन्द दायक नित्यानन्द भी विविधभाव प्रकाश पूर्वक अत्याश्चर्य्य कर नृत्य किये थे ॥१५॥

वहाँ भक्तवृन्द को आनन्दित कर पुरन्दर के भवन में उपस्थित हुये थे । पुरन्दर को कृष्णप्रेम विभावितकर सुख पूर्वक वहाँ अवस्थान किये थे ॥१६॥

जहाँ सप्तर्षिवृन्द, भाव पूर्ण चित्त से भगवद् स्मरण कर परम पद को प्राप्त किये हैं, वेद विद् गण जिसको मुक्त वेणी कहते हैं ॥१७॥

सरस्वती, गङ्गा यमुना का जहाँपर सङ्गम हुआ है, एवं गङ्गा यमुना सरस्वती का सङ्गम सर्वदा दृष्ट होता हैं जनगण उसको देखकर परमानन्दित होते है ॥१८॥

नरगण जिस से स्नान कर मुक्त होते है, एवं स्मरण से भी मुक्त होते हैं, सर्व दुःख विनाशिनी हरि भक्ति लाभ भी करते हैं ।१९।

नित्यानन्दप्रभुस्तत्र वणिजान्तु गृहे गृहे ।
करोति कृष्णचैतन्यनामसंकीर्त्तनं महत् ।।२०।।
यथा सङ्कीर्त्तनसुखं नवद्वीपे भवेत् पुरा ।
नित्यानन्दप्रसादेन तदेवात्र सुखं परम् ।।२१।।
उद्धारणगृहे स्थित्वा तेन सार्द्धं जगद्‌गुरुः ।
गौरचन्द्ररसे मग्नः शान्तिपुरमगात्ततः ।२२।
नित्यानन्दमुखं दृष्ट्वा श्रीलाद्वैतो महामतिः ।
हुहुङ्कारेण नादेन दिङ्मुखं परिपूरयन् ।२३।
स्तुत्वा परमहर्षेण नमस्कृत्य पुनः पुनः ।
तमालिङ्गच प्रभुश्चापि प्रणम्य ससुखं वसन् ।।२४।।
तस्यापि जनयन् हर्षं नवद्वीपमगात् प्रभुः ।
गौराङ्गगुणसंमत्तो जगदाह्लादकारकः ।।२५।।

नित्यानन्द प्रभु वहाँपर वणिक् वृन्दके घर घर में श्रीकृष्णचैतन्य नाम सङ्कीर्त्तन करते थे ।।२०।।

जिस प्रकार पूर्वकाल में नवद्वीप में सङ्कीत्तनानन्द होता था, नित्यानन्द के प्रसाद से यहाँ पर वह परमानन्द ही उपस्थित हुआ ।२१।

जगद् गुरु नित्यानन्द, उद्धारण दत्त के गृह रहकर कतिपय दिवस के पश्चात् उनको साथ लेकर गौरचन्द्र रसानन्द में मग्न होकर शान्ति पुर आये थे ।।२२।।

श्रील अद्वैत महामति, नित्यानन्द मुख दर्शनकर हुहुङ्कार नाद से दिग् वलय को पूर्ण कर पुनः नमस्कार स्तव किये थे, प्रभु ने भी उनका आलिङ्गनकर स्वस्थ किये थे, एवं वहाँपर सुख पूर्वक अवस्थानकर श्रीअद्वैत प्रभु का आनन्द विस्तार किये थे, पश्चात् गौराङ्ग गुण संमत्तप्रभु नित्यानन्द, जगत् को आनन्दित करने के निमित्त नवद्वीप में प्रत्यावर्त्तन किये थे ।।२३--२४-२५।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे श्रीनित्यानन्दाद्वैत-
सङ्गोत्सवो नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ।

***

त्रयोविंशतितमः सर्गः

तत आगत्य प्रथमं श्रीशचीदर्शनोत्सुकः ।
प्रणम्य चरणोपान्ते मातरागतेऽहं सुखम् ।१।
श्रुत्वा सा सत्वरं माता तस्य मूर्द्ध्नि करद्वयम् ।
धृत्वा तातेति सम्बोध्य संचुम्व्य च मुहुर्म्मुहुः ।२।
उवाच मधुरं तात स्थातुमर्हसि मद्गृहे ।
येन त्वां सर्व्वदा तात पश्यामि दुःखच्छेदकम् ।।३।।
प्रहसन् प्राह तां मातः शृणु सत्यं वदामि ते ।
वसामि सानुजोऽहं ते सदा सन्निहितोऽपि च ।।४।।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे श्रीनित्यानन्दाद्वैतसङ्गोत्सवो
नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ।।

त्रयोविंशतितमः सर्गः ।

नवद्वीप में आकर उत्सुक चित्त से शचीमा का दर्शन कर उन के श्रीचरणोंपान्त में प्रणाम कर श्रीनित्यानन्द ने कुशल प्रश्न किया एवं कहा 'मा' मैं आनन्द से आया हूँ ।।१।।

'मा' सुनकर सत्वर हस्त द्वय के द्वारा नित्यानन्द के मस्तक धारण कर चुम्वन किये, एवं नित्यानन्दके कर युगल धारण कर पुनः पुनः 'तात' ! 'तात' ! सम्बोधन एवं चुम्वन किये ।।२।।

अनन्तर मा मधुर स्वरसे बोलों, तात ! मेरे घर में रहो, जिस से मैं दुःख विनाशक तुम को सर्वदा देख सकूँगी ।।३।।

हँसकर नित्यानन्द बोले, मातः ! मैं तुम को सत्य कहता हूँ,

त्वया पाचितमन्नं यत् श्रीकृष्णाधरपूरितम् ।
तल्लोभेन सदा मातस्तिष्ठामि तव सन्निधौ ।५।
एवं श्रुत्वा हसन्ती सा पक्वशाल्यन्नमुत्तमम् ।
सूपं तं पायसाद्यञ्च तमन्नं परमाद्भुतम् ।६।
तस्मै सर्व्वं विनिवेद्य पश्यन्ती मुखपङ्कजम् ।
बुभुजे सानुजः सोऽपि प्रहसन् भक्तवत्सलः ।७।
दृष्ट्वा स रामकृष्णौ च भुक्तवन्तौ सुखार्णवे ।
मग्ना बभूव तां दृष्ट्वा नित्यानन्ददयानिधिः ।८।
प्राह मातः सत्यमेव वचः किं मे वदाधुना ।
सा प्राह तात ते सत्यमीश्वरस्य वचो यथा ।९।
तथापि सानुजं त्वां हि द्रष्टुमिच्छामि सर्व्वदा ।
यथाज्ञा ते सुखं मातः कर्त्तव्यं मे निरन्तरम् ।१०।

तुम्हारे निकट अनुज के सहित नित्य निवास करता हूँ ॥४॥

हे मातः ! तुम्हारे पाचित अन्न, श्रीकृष्णाधर सुखद है, उसको प्राप्त करने के लोभ से मा ! तुम्हारे निकट में निरन्तर रहता हूँ । इस प्रकार सुनकर 'मा' ने हँसकर उत्तम पक्व शाल्यन्न सूप; पायस प्रभृति परमाद्भुत सामग्री समूह उपस्थित कर नित्यानन्द कर समर्पण किया, एवं नित्यानन्द के मुख पङ्कज को देखने लगा। भक्तवत्सल नित्यानन्द भी अनुज के सहित हँसकर अन्नादि सामग्री भोजन किये थे ॥५--६॥

'मा' राम कृष्ण को भोजन करते देख कर आनन्द सागर में में निमग्न हो गई। यह देखकर दयानिधि नित्यानन्द बोले, मा ! कहना सत्य है न ? 'मा' बोलीं, तात ! ईश्वर की वाणी के तुल्य, तुम्हारी वाणी सत्य है, तथापि अनुज के सहित ही मैं तुम को देखना चाहती हूँ, नित्यानन्द, उत्तर में बोले, हे मातः ! आप की जैसी आज्ञा

एवं तत्र स्थितो नित्यानन्दः सर्व्वसुखप्रदः ।
जनयन् परमानन्दं नवद्वीपनिवासिनाम् ॥११॥
सर्व्वान् सर्व्वजनान् कृष्णचैतन्यरसभावितान् ।
गौराङ्गकीर्त्तनानन्दो ननर्त्त स्वजनैः सह ॥१२॥
गन्धचन्दनलिप्ताङ्गो नीलाम्बरसमावृतः ।
स्वर्णरौप्यप्रवालाद्यैरलङ्कारैश्च मण्डितः ।१३।
कर्पूरताम्बुलाद्यैश्च पूर्णश्रीमुखपङ्कजः ।
लौहदण्डधरो रौप्यहारकौस्तुभभूषणः ।१४।
कुण्डलैकधरः श्रीमान् वनमालाविभूषितः ।
वेणुपाणिः सदा कुर्व्वन् गौराङ्गगुणकीर्त्तनम् ॥१५॥
चौरदस्युगणाः सर्व्वे दृष्ट्वा तस्य विभूषणम् ।
हर्त्तुं कुर्व्वन्ति ते नाना स्वयत्नमाततायिनः ।१६।
तानेव कृपया पूर्णो नित्यानन्दो महाप्रभुः ।

हो, मैं उस प्रकार ही निरन्तर करूँगा ॥७-८-९-१०॥

इस नवद्वीप में अवस्थित होकर नित्यानन्द, कृष्ण चैतन्य रस भावित नवद्वीपस्थ समस्त जन निकर को परमानन्दित किये थे। एवं गौराङ्ग कीर्त्तनानन्द में विभोर होकर स्वजन वृन्द के सहित नृत्य किये थे ॥११-१२॥

नित्यानन्द गन्ध चन्दन लिप्ताङ्ग, नीलाम्वरधारी, स्वर्ण रौप्य प्रवालादि द्वारा अलङ्कृत होकर कर्पूर ताम्बूल सेवन कर, रौप्यहार कौस्तुभ भूषणान्वित, एवं एक कुण्डल भूषित, वनमाला विभूषित, वेणुपाणि, लौहदण्ड धारणकर सदा श्रीगौराङ्ग नाम कीर्त्तन करते थे ॥१३-१४--१५॥

आततायि चौर दस्युवृन्द उनके विभूषण समूह को देखकर अपहरण हेतु विविध यत्न किये थे। नित्यानन्द प्रभु उनसब को

गौराङ्गकीर्त्तनानन्दपरिपूर्णान् चकार ह ।१७।
एवं स विहरन् कृष्णचैतन्यरसभावुकः ।
करोति विविधां क्रीड़ा गोपालबाललीलया ॥१८॥
गङ्गातीरं समासाद्य स्वभक्तानां गृहे प्रभुः ।
विहरन् स्नेहसम्पूर्णः कृष्णदासगृहं ययौ ॥१९॥
बड़गाछीनिवासी स प्राप्य दुष्प्राप्यमीश्वरम् ।
आनन्देनाकुलो भुत्वा धून्वन् वासो ननर्त्त ह ।२०।
महापुण्यतमो ग्रामो बड़गाछीतिसंज्ञकः ।
नित्यानन्दस्वरूपस्य विहारो भावि यत्र वै ।२१।
कृष्णदासेन सार्द्धं श्रीनवद्वीपं समागतः ।
विहरन् कीर्त्तनानन्दो रामदासादिभिर्वृतः ।२२।
श्रीकृष्णचैतन्यनाम्ना परिपूर्णं जगत्रयम् ।
कृत्वा रराज गोपालैः समं नन्दव्रजे यथा ।२३।

कृपया गौरनाम सङ्कीर्त्तनानन्द से परिपूर्ण किये थे ।१६-१७॥

कृष्णचैतन्य रस भावुक श्रीनित्यानन्द गोपबालक क्रीड़ा से विविध आचरण प्रकट कर विहार करते थे ॥१८॥

गङ्गातीर में एवं भक्तवृन्दके गृहमें स्नेह पूर्ण नित्यानन्द भ्रमण करते करते एकदिन कृष्णदासके घर में उपस्थित हुये थे ॥१९॥

बड़गाच्छी निवासी कृष्णदास दुष्प्राप्य ईश्वर को निज भवन में प्राप्तकर आनन्द से आकुल होकर वस्त्र विस्तार कर नृत्य किये थे । ॥२०॥ बड़गाछी नामक ग्राम महापुण्यतम है, जहाँ नित्यानन्द का विहार हुआ ।२१।

राम दासादि के द्वारा परिवृत होकर कीर्त्तनानन्द विभोर होकर कृष्णदास के सहित नित्यानन्द नवद्वीप में आये थे ॥२२॥

नन्द व्रज में जिस प्रकार गोपाल वृन्द के सहित विविध क्रीड़ा

वेत्रवंशीशृङ्गवेणुगुञ्जामालाविभूषितैः ।
पार्षदैरावृतः कृष्णकीर्त्तनामृतवर्षुकैः ।२४।
बलदेवः स्वयं गोपो वृन्दारण्यविलासवान् ।
तद्रूपं दर्शयन् लोके गौराङ्गप्राणवल्लभः ।२५।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे श्रीनित्यानन्द-
विलासो नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ।

**

चतुर्विंशतितमः सर्गः

***

ततः श्रीगौराङ्गचन्द्रः स्वरूपाद्यैः समन्वितः ।
श्रीराधाभावमाधुर्य्यैः पूर्णो न वेद कश्चन ।१।
रामानन्देन सहितः कृष्णमाधुर्य्यवैभवम् ।

कर जगत् को सुखी किये थे, उस प्रकार श्रीकृष्णचैतन्य नाम कीर्त्तन के द्वारा जगत्त्रय को पूर्ण किये थे ॥२३॥

वेत्र वंशी शृङ्ग वेणु गुञ्जामाला विभूषित कृष्ण सङ्कीर्त्तनामृत वर्षुक पार्षद वृन्द परिवृत गौराङ्ग प्राणवल्लभ स्वयं बलदेव नित्यानन्द वृन्दावन विलास लीला प्रकट कर जन गण के मध्य में प्रसिद्ध हुये थे ॥२४--२५॥

इति श्रीकृष्ण चैतन्यचरिते चतुर्थ प्रक्रमे श्रीनित्यानन्द
विलासो नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ।

चतुर्विंशतितमः सर्गः ।

अनन्तर पुरुषोत्तम क्षेत्र में श्रीगौराङ्ग चन्द्र स्वरूपादि के सहित श्रीराधाभाव माधुर्य्य विभोर होकर वाह्य विषयक स्मृति रहित हुये थे ॥१॥

भक्त वश्य स्वयं हरि, रामानन्दराय के सहित कृष्ण माधुर्य्य

आस्वाद्यास्वादयन् भक्तान् भक्तवश्यः स्वयं हरिः ।२।
वृन्दावनस्मारकाणि वनान्युपवनानि च ।
श्रीकृष्णान्वेषणं तत्र यमुनास्मारकेण च ।३।
समुद्रपतनञ्चापि स्वरूपाद्यैर्निर्दशितम् ।
कृष्णपञ्चगुणेनैव पञ्चेन्द्रियविकर्षणम् ।४।
सुरभीमध्यपातेन कूर्म्माकारेण भावनम् ।
श्रीरासलीलास्मरणात् प्रलापाद्यनुवर्णनम् ॥५॥
गोवर्द्धनभ्रमेणैव चटकगिरिदर्शनम् ।
कृष्णाधरामृतास्वादं गोपीभावेन सर्व्वतः ।६।
मथुरास्मृतिमात्रेण दिव्योन्मादविचेष्टितम् ।
जातं स्वयं भगवतो भक्तिप्रेमरसात्मनः ।७।

वैभव स्वयं आस्वादन कर एवं भक्त वृन्द नेत्रको आस्वादन करवा कर निरन्तर काल यापन करते थे ॥२॥

वृन्दावन स्मारक वन उपवन समूह सन्दर्शन कर श्रीवृन्दावन लीला में आविष्ट होते थे, एवं कृष्णान्वेषण करते थे, यमुना स्मरण समुद्र दर्शन से होने से उस में निपतित होते थे ॥३॥

स्वरूप प्रभृति निज जनगण के द्वारा भावानुरूप वर्णन से कृष्णगुण श्रुति गोचर होता था उस से प्रभु की पञ्चेन्द्रिय का आकर्षण होता था ॥४॥

सुरभी मध्य में निपतित होकर रहते थे, कभी तो कूर्माकृति को प्राप्त करते थे। एवं रास लीलास्मरण कर अनेक प्रलाप वर्णन करते थे ॥५॥

गोवर्द्धन भ्रमण से चटकगिरि दर्शन किये थे, एवं गोपीभावसे सर्वतो भावेन कृष्णाधरामृतास्वादन किये थे ॥६॥

प्रेम रसात्मा भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्यदेव का मथुरास्मृतिमात्र से ही दिव्योन्माद उपस्थित होता था, एवं रामानन्द स्वरूप के द्वारा

सात्त्विकाद्यैरष्टाभिश्च भावैः सम्पूर्णविग्रहः ।
रामानन्दस्वरूपाभ्यां सेवितो राससंज्ञया ।८।
भावानुरूपश्लोकेन राससंकीर्त्तनादिना ।
श्रीराधाकृष्णयोर्लीलारसविद्यानिदर्शनम् ।९।
श्रीराधाशुद्धप्रेम्ना हि श्रवणामृतमद्भुतम् ।
पीत्वा निरन्तरं श्रीमच्चैतन्यरसविग्रहः ।।१०।।
सच्चिदानन्दसान्द्रात्मा राधाकान्तोऽपि सर्व्वदा ।
तद्भावभावितानन्दरसमग्नो बभूव ह ।११।
यां यां लीलां प्रकुर्व्वति कृष्णः सर्व्वेश्वरेश्वरः ।
तां तां को वक्तुं शक्नोति तत्कृपाभाजनं विना ।१२।
रामानन्दः स्वरूपश्च परमानन्दनायकः ।
काशीश्वरो वासुदेवो गोविन्दाद्याश्च सर्व्वदा ।१३।

वर्णित रास संज्ञक लीला श्रवणसे प्रभु अष्टसात्त्विक भावों से विभूषित होते थे ।।७–८।।

भावानु रूप श्लोक एवं रासलीला सङ्कीर्त्तन के द्वारा श्रीराधा कृष्ण की लीला का आस्वादन होता था, श्रीराधा कृष्ण के शुद्ध प्रेम अत्यद्भुत श्रुति रसायन है,श्रीचैतन्य रस विग्रह उसका पान निरन्तर करते थे ।।९–१०।।

सच्चिदानन्द सान्द्रात्मा राधाकान्त होकर भी सर्वदा तद्भाव भावित आनन्द रस मग्न होकर रहते थे ।।११।।

जो जो लीलाका प्रकटन, सर्वेश्वरेश्वर श्रीकृष्ण करते थे, उस का वर्णन उनके कृपा भाजन व्यक्ति व्यतीत कौन वर्णन करने । में समर्थ हैं ? ।।१२।।

रामानन्द, स्वरूप, परमानन्द, काशीश्वर, वासुदेव, गोविन्द प्रभृति एवं अपर रसाभिज्ञ व्यक्ति गण निरन्तर श्रीकृष्ण कीर्त्तन करते

अपरैश्च रसाभिज्ञैः कृष्णसंकीर्त्तनात्मकैः ।
सेव्यमानौ रतौ कृष्णौ भक्तभावविभावितः ।१४।
श्रीनवद्वीपमासाद्य श्रीनित्यानन्द ईश्वरः ।
श्रीचैतन्यरसोन्मत्तस्तन्नामगुणकीर्त्तनैः ।१५।
परिपूर्णः सदा भाति गौराङ्गगुणगर्व्वितः ।
तदाज्ञापालनाद्गाने स्थितेऽपि तत् प्रकाशतः ।१६।
स्वेच्छामयो रसज्ञोऽसौ को वेद तस्य चेष्टितम् ।
तद्दर्शनसमुत्कण्ठो ययौ श्रीपुरुषोत्तमम् ॥१७॥
पुष्पव टीं समासाद्य ध्यायन् गौराङ्गसुन्दरम् ।
उत्थाय प्रणमद्भूमौ निपत्य प्रणमन्मुहुः ।१८।
हुङ्कारगम्भीरारावैर्जयगौराङ्गनिःस्वनैः ।
तुष्टाव परमप्रीतो गौरचन्द्रं महासुखी ।१९।
एवं परस्परं कृष्णरामौ हि परमेश्वरौ ।

थे, उस से श्रीचैतन्य प्रभु निरन्तर श्रीकृष्णभाव विभावित होकर रहते थे ॥१३--१४॥

इधर नित्यानन्द ईश्वर, श्रीनवद्वीप में आकर श्रीचैतन्य नाम गुण प्रभृति कीर्त्तन से निरन्तर उन्मत प्राय रहते थे ॥१५॥

गौराङ्ग गुण गर्वित होकर निरन्तर परिपूर्ण दृष्ट होते थे । श्रीचैतन्य आज्ञा पालन में तत्पर होकर भी आप उनका ही द्वितीय प्रकाश विग्रह थे ॥१६॥

आप स्वेच्छामय, रसमय, रसज्ञ थे, आप की चेष्टा को कौन जान सकते हैं, एकदिन श्रीचैतन्य दर्शनोत्कण्ठित होकर श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र प्रस्थान किये थे ॥१७॥

पुष्पवाटी को प्राप्त कर श्रीगौराङ्ग पदाम्बुज का ध्यानकर भूमि से उठकर एवं बारम्बार गिर कर श्रीगौराङ्ग को प्रणाम करते

प्रेमभक्तिरसाकृष्टो चक्रतुरभिवंदनम् ।२०।
श्रीशचीनन्दनः प्राह श्रीनित्यानंदमीश्वरम् ।
नन्दपुत्र भवानन्दगोष्ठभक्तिप्रदः सदा ।२१।
अलङ्कारादिरूपेण नवधा भक्तिमुत्तमाम् ।
पश्यामि तव देहे च कृष्णकेलिसुखार्णवे ।२२।
नन्दगोकुलवासिनां भक्तिरेव सुदुर्लभा ।
भाव्यते शुद्धभावैश्च लभ्यते वा नरैः क्वचित् ॥२३॥
तां भक्तिं त्वञ्च प्रीत्या हि स्त्रीबालादिभ्यः स्वेच्छया ।
ददासि को भवांस्तत्र दातास्तीति वदाशु मे ।२४।
स प्राह प्रहसन्नाथ दाताहर्त्ता च रक्षिता ।
प्रेमदः करुणस्तेषां त्वमेव सर्व्वप्रेरकः ।२५।
एकः सपार्षदो नित्यानन्दो विश्वम्भरोऽपरः ।
स्वरूपाद्यैः सदा प्रेमपूर्ण-आनंदविग्रहौ ।२६।

थे, हुङ्कार गम्भीर राव, जय जय गौराङ्ग इस प्रकार शब्द के द्वारा गौराङ्ग देव का स्तव किये थे । उस से श्रीगौराङ्ग महासुखी होनेपर भी परम प्रीत हुये थे ॥१८–१९-

इस प्रकार परमेश्वर कृष्णराम, परस्पर प्रेम भक्ति रसाकृष्ट होकर परस्पर को अभिनन्दन किये थे ॥२०॥

श्रीशचीनन्दन, श्रीनित्यानन्द ईश्वर को कहे थे, आप गोष्ठानन्द प्रदनन्द पुत्र हैं । अलङ्कारादि रूप में नवधाभक्ति को निज देह में धारण करते हैं, एवं कृष्ण केलि सुखार्णव में भी निमज्जित हैं ।२१-२२

नन्द गोकुल वासियों की भक्ति सुदुर्लभा है, शुद्ध भाव प्राप्त होने से कोई व्यक्ति कदाचित् उसका अधिकारी होते हैं ॥२३

उस भक्ति का दान आपने प्रीति पूर्वक स्त्री बालकों को स्वेच्छासे किया है । आप को छोड़कर और कौन दाता हो सकते हैं, कहिये ? ।२४

गदाधरेण च समं सेव्यमानौ निरन्तरम् ।
क्रीड़तः स्वमुखं कृष्णकीर्त्तनप्रेमविह्वलौ ।२७।
यशोदानन्दनः कृष्णः श्रीगोपी प्राणवल्लभः ।
श्रीराधारमणो रामानुजो रासरसोत्सुकः ।२८।
रोहिणीनन्दनः कृष्णो यज्ञो रामो बलो हरिः ।
रेवतीप्राणनाथश्च रासकेलिमहोत्सवः ।२९।
इति नाम प्रागयन्तौ भक्तवर्गसमन्वितौ ।
श्रीकृष्णचैतन्यनित्यानन्दरामौ स्मरेत्तु तौ ।३०।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे भक्तमण्डल-
विलासो नाम चतुर्व्विशतितमः सर्गः ।

नित्यानन्द ने हँसकर कहा, दाता, हर्त्ता रक्षिता प्रेमद करुण, एवं सबका प्रेरक तुम्हीं हो ॥२५॥

सपार्षद एक नित्यानन्द हैं, अपर श्रीविश्वम्भर हैं, स्वरूप प्रभृति परिकरों से सदा परिवृत रहते हैं, एवं उभय ही प्रेमपूर्ण—आनन्द विग्रह हैं ॥२६॥

गदाधर के द्वारा सेवित होकर निरन्तर श्रीकृष्ण सङ्कीर्त्तन विह्वल होकर नित्यानन्द गौराङ्ग अवस्थित हैं ॥२७॥

यशोदानन्दन कृष्ण, गोपिका प्राण वल्लभ, श्रीराधारमण, रामानुज, रास रसोत्सुक, रोहिणीनन्दन, कृष्ण, यज्ञ, राम, बल, हरि रेवती प्राणनाण, रास केलि महोत्सव इस प्रकार नाम गान परायण, भक्त वर्ग समन्वित श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द राम का स्मरण करना विधेय है ॥३८-३९-३०॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थ प्रक्रमे भक्त मण्डल
विलासी नाम चतुर्विशतितमः सर्गः ॥

पञ्चविंशतितमः सर्गः

**

एतत्ते कथितं सूत्रं श्रीकृष्णचरितं द्विज ।
वर्णयिष्यन्ति विस्तारैः श्रीवासाद्या महत्तमाः ॥१॥
अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं श्रीगौराङ्गो महाप्रभुः ।
फलास्वादनिमित्तेन कथ्यते तदनुक्रमः ॥२॥
अवतारकारणञ्च श्रीकृष्णस्य विचेष्टितम् ।
बहिर्म्मुखान् जनान् दृष्ट्वा नारदस्यानुतापनः ॥३॥
वैकुण्ठगमनं चापि श्रीकृष्णेनापि सान्त्वनम् ।
सर्व्वेषामवताराणां कथनं कृष्णजन्म च ॥४॥
बाल्यलीलादिकञ्चैव ब्राह्मणस्यान्नभोजनम् ।
विश्वरूपस्य सन्नचासं नित्यानन्दात्मकस्य च ।५।
जगन्नाथस्य संस्थानं दुःखशोकानुवर्णनम् ।
विद्याविलासलावण्यं मातृदुःखविमोचनम् ॥६॥

हे द्विज ! आपके समीप में संक्षेप से श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन मैंने किया है, इसका विस्तृत वर्णन, श्रीव्यास प्रभृति महर्षिवृन्द करेंगे ॥१॥

प्रस्तुत ग्रन्थमें पुनः पुनः श्रीमन्महाप्रभु का वर्णन है । फलास्वाद निबन्धन उसका अनुक्रम को कहते हैं ॥२॥

अवतार कारण, श्रीकृष्ण की चेष्टा, वहिर्मुख जनगण को देख कर नारद का अनुताप ॥३॥

वैकुण्ठ गमन, श्रीकृष्ण कर्त्तृक सान्त्वना प्रदान, समस्त अवतारों का कथन, श्रीकृष्ण जन कथन ॥४॥

बाल्य लीला प्रभृति का वर्णन, ब्राह्मण का अन्नभोजन वृत्तान्त विश्वरूप का सन्नचास, नित्यानन्द स्वरूप की वर्णना ॥५॥

जगन्नाथ मिश्र का संस्थान, दुःख शोक का वर्णन । विद्याविलास,

लक्ष्मी परिणयञ्चैव पूर्व्वदेशे गते प्रभौ ।
तस्याः संस्थितिरेव स्यात् शचीशोकापनोदनम् ।७।
विष्णुप्रियापरिणयं परमानन्दवैभवम् ।
पुरीश्वरदर्शनञ्च गयाकृत्यसमापनम् ।८।
भावप्रकाशनञ्चैव वराहवेशधारणम् ।
संङ्कीर्तनशुभारम्भं मेघनिःसारणं तथा ।९॥
नामार्थकल्पनादेव गङ्गापतननिर्गमम् ।
अधीनं भक्तवर्गाणां श्रीलाद्वैतस्य मेलनम् ।१०॥
भक्तानुकल्पनञ्चैव श्रीनित्यानन्ददर्शनम् ।
षड्भुजदर्शनानन्दं बलरामप्रकाशकम् ।११।
भक्तिरससमाकृष्टं हरेर्म्मन्दिरमार्ज्जनम् ।
भक्तदत्तग्रहणञ्च महैश्वर्य्यप्रदर्शनम् ॥१२॥
नृत्यगानविलासादि गङ्गामज्जनमेव च ।
ब्रह्मशापवरञ्चैव जीवनिस्तारहेतुकम् ।१३।

लावण्य, मातृ दुःख विमोचन ॥६॥ लक्ष्मी परिणय, पूर्व देश गमन, लक्ष्मी प्रिया की संस्थिति, शची शोकापनोदन ॥७॥

विष्णु प्रिया परिणय, परमानन्द वैभव पुरीश्वर दर्शन, गया कृत्यसमापन ॥८॥ भाव प्रकाशन, वराह वेश धारण, सङ्कीर्त्तन शुभारम्भ, मेघनिः सारण ॥९॥

नामार्थ कल्पना से गङ्गापतन निर्गम । भक्त वर्ग की अधीनता, श्रीअद्वैताचार्य्य का दर्शन ॥१०॥

भक्तानुकल्पना, श्रीनित्यानन्द दर्शन, षड्भुज दर्शनानन्द, बलराम का प्रकाश ।११। भक्तिरसाकृष्ट, श्रीहरिमन्दिर मार्ज्जन, भक्त दत्त वस्तु ग्रहण, महैश्वर्य्य प्रदर्शन ॥१२॥

नृत्य गान विलासादि, गङ्गा मज्जन, ब्रह्मशापवर, जीव निस्तार

बलरामरसावेशमधुपानादिनर्त्तनम् ।
गोपीवेशधरं नित्यगानमाधुर्य्यवर्णनम् ।१४।
सन्न्यासोपक्रमे गुप्तमुरार्य्यादिकसान्त्वनम् ।
नवद्वीपकण्टकाख्यपुरवासिविलापनम् ।१५।
सन्न्यासनामग्रहणं प्रेमानन्द प्रकाशनम् ।
राढ़देशकृतार्थञ्च चन्द्रशेखरप्रेषणम् ॥१६॥
नवद्वीपस्य च नित्यानन्देन दुःखनाशनम् ।
शान्तिपुरविलासञ्च भक्तवर्गसमन्वितम् ॥१७॥
ततो दण्डभञ्जनं श्रीगोपीनाथस्य दर्शनम् ।
वराहदर्शन पुण्यं विरजादर्शनं तथा ।१८।
वैतरणयाजपुरश्रीशिवलिङ्गदर्शनम् ।
नानाभावप्रकाशं श्रीभुवनेश्वरदर्शनम् ॥१९॥
निर्म्माल्यग्रहणस्यापि विधानकथनं शुभम् ।
श्रीमन्दिरस्थगोपालदर्शनं रोदनं प्रभोः ।२०।

हेतु ॥१३॥

बलराम रसावेश, मधुपान, नर्त्तन, गोपी वेशधारण, नित्य गान माधुर्य्य वर्णन ॥१४॥ सन्न्यासोपक्रम में मुरारि द्वारा सान्त्वना प्रदान, नवद्वीप कण्ठकादि निवासी जनों का विलाप ॥१५॥

सन्न्यास नाम ग्रहण, प्रेमानन्द प्रकाशन, राढ़देश को पवित्र करण, चन्द्रशेखर प्रेरण ॥१६॥

नवद्वीप निवासी जनगण का एवं नित्यानन्द का दुःख विदूरी करण, शान्तिपुर विलास, भक्त वर्ग मिलन ॥१७॥

दण्ड भञ्जन, श्रीगोपीनाथ दर्शन, वराह दर्शन, पुण्य, विरजा दर्शन ॥१८॥ वैतरणी, याजपुर, श्रीशिवलिङ्ग दर्शन, नाना भाव प्रकाश, श्रीभुवनेश्वर दर्शन ॥१९॥ निर्माल्य ग्रहण वृत्तान्त, विधान

मार्कण्डेयसरस्येव शिवलिङ्गप्रदर्शनम् ।
ततः श्रीमज्जगन्नाथदर्शनानन्दवैभवम् ।२१।
सार्व्वभौमादिभिः सार्द्धं पुनः श्रीमुखदर्शनम् ।
श्रीमन्महाप्रसादस्य वन्दनं भोजनं शुभम् ।२२।
सार्व्वभौमसमुद्धारं दक्षिणगमनं हरेः ।
कूर्म्मनाथदर्शनञ्च कूर्म्मविप्रानुकम्पनम् ।२३।
वासुदेवसमुद्धारं शक्तिसञ्चारणं तथा ।
जियड़ाख्यनृसिंहस्य चरित्रास्वादनं सुखम् ।२४।
श्रीलरामानन्दरायमिलनं शुभदं शुभम् ।
पुरीश्रीमाधवशिष्य परमानन्ददर्शनम् ।२५।
पञ्चवटीरङ्गक्षेत्ररङ्गनाथप्रदर्शनम् ।
तत्र श्रीविमलतटपुरी प्रस्थापनं प्रभोः ।२६।
सेतुबन्धे श्रीलरामेश्वरलिङ्गप्रदर्शनम् ।
ततः श्रीमज्जगन्नाथदर्शनानन्दवर्णनम् ।२७।

कथन, श्रीमन्दिरस्य गोपाल दर्शन, रोदन ।।२०।।

मार्कण्डेय सरवर में श्रीशिवलिङ्ग दर्शन, अनन्तर श्रीमज्जगन्नाथ दर्शनानन्द वैभव वर्णना ।।२१।। सार्वभौम प्रभृति के सहित पुनर्वार श्रीजगन्नाथ के श्रीमुखदर्शन, महाप्रसाद वन्दन, भोजन ।।२२

सार्वभौम समुद्धार, शक्ति सञ्चारण, जियड़ नृसिंह चरित्रा स्वादन ।।२३-२४।।

शुभद श्रीलरामानन्दराय मिलन, पुरी श्रीमाधव शिष्य परमानन्द दर्शन ।।२५।।

पञ्चवटी, रङ्ग, क्षेत्र, रङ्गनाथ, दर्शन, एवं श्रीविमलतट पुरी प्रस्थापन ।।२६।।

सेतुबन्ध में श्रील रामेश्वर लिङ्ग दर्शन, अनन्तर श्रीजगन्नाथ

वृन्दारण्यं समुद्दिश्य गौड़ाभिगमनं शुभम् ।
वाचस्पतिगृहे कृष्णं वैभवं परमाद्भुतम् ।२८।
देवानन्दं समुद्दिश्य श्रीभागवतकीर्त्तनम् ।
तद्वक्तुर्लक्षणश्चापि श्रोतुश्च कथितं शुभम् ।२९।
श्रीनृसिंहानन्देन यत् कृतं जङ्घालमुत्तमम् ।
तेन यथा रामकेलिकृष्णनाट्यस्थलावधि ॥३०॥
गमनञ्च पुनः श्रीलाद्वैतगेहशुभागमः ।
नवद्वीपभक्तवर्गमेलनं पुनरेव च ।३१।
श्रीभोजनसुखं तत्र मातुश्चरणवन्दनम् ।
पुरुषोत्तममासाद्य श्रीगोपीनाथदर्शनम् ।३२।
इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे ग्रन्थानुकथने श्रीकृष्णजन्मादिगोपीनाथदर्शनपर्यन्तकथनं नाम

पञ्चविंशतितमः सर्गः ।

दर्शनानन्द वर्णन ॥२७॥ वृन्दारण्य गमनोद्देश्य से गौड़ाभिगमन । वाचस्पति गृह श्रीकृष्ण परमाद्भुत वैभव वर्णन ॥२८॥

देवानन्द को उद्देश्यकर श्रीभागवत कीर्त्तन, श्रीमद्भागवत वक्ता एवं श्रोता का लक्षण ॥२९॥

श्रीनृसिंहानन्द कर्त्तृक मानसिक मार्ग निर्माण, एवं रामकेलि कृष्ण नाट्य स्थलावधि पथ का निर्माण ॥३०॥

पुष्प निर्मित मार्ग में गमन, पुनर्वार श्रीअद्वैतगृह में आगमन । नवद्वीपस्थ भक्त वृन्द के सहित पुनर्मिलन ॥३१॥

भोजन सुख, मातुश्चरण वन्दनम् पुरुषोत्तम क्षेत्रमें प्रत्यावर्त्तन पूर्वक श्रीगोपीनाथ दर्शन ॥३२॥

इति श्रीकृष्णचैतन्य चरिते चतुर्थ प्रक्रमे ग्रन्थानुकथने श्रीकृष्ण जन्मादि गोपीनाथ दर्शन पर्यन्त कथनं नाम पञ्चविंशतितमः सर्गः ।

षड्विंशतितमः सर्गः

**

वृन्दावनस्य गमने भक्तवर्गविलापनम् ।
सान्त्वनञ्चापि तेषां वै वर्णितं प्रभुणा कृतम् ।१।।
वनपथि क्रमेणैव काशीपुर्य्याश्च दर्शनम् ।
तथा विश्वेश्वरस्यापि तपनादेश्च मेलनम् ।२।
प्रयागे माधवदेवदर्शनं यमुनामनु ।
अग्रवनरेणुकादिमथुरालोकनं तथा ।३।
कृष्णदासेन च समं घट्टकूपादिदर्शनम् ।
वृन्दारण्यादिकं सर्व्वं द्वादशवनमेव च ।४।
प्रतिग्रामं प्रतिवनं प्रतिकुण्ड सनातनम् ।
कृष्णनानाप्रकाशञ्च लीलानुकरण तथा ।५।
कृष्णजन्म समारभ्य तथा कंसबधादिकम् ।
वर्णनं श्रवणञ्चापि तत्तद्रूपप्रकाशनम् ।६।
भावोन्मादविकारादिवर्णनं परमाद्भुतम्

वृन्दावन गमनोद्योग में भक्तवर्ग का विलाप, प्रभु कर्तृक सान्त्वना प्रदान ।।१।। वनपथ में गमन, क्रमशः काशी पुरी का दर्शन, विश्वेश्वर दर्शन तपनमिश्रादि मिलन ।।२।।

प्रयाग में माधवदेव दर्शन, अग्रवन, रेणुकादि तीर्थावलोकन एवं मथुरा दर्शन ।।३।। कृष्णदास के सहित घाट एवं कूपादि का दर्शन । वृन्दारण्य एवं द्वादशवन दर्शन ।।४।।

प्रतिग्राम, प्रतिवन, प्रति कुण्ड, दर्शन, कृष्ण के विविध प्रकाश लीलानुकरण ।।५।।

कृष्ण जन्मारभ्य कंसबधादि का वर्णन, व्रजवृत्तान्त श्रवण, तत्तद्रूप प्रकाशन ।।६।।

भावोन्माद विकार वर्णन, समस्त व्रजवासियों के घर घर में

सर्व्वव्रजनिवासिनां गृहे गृहे प्रकाशनम् ।७।
पुनरागमनञ्चैव प्रयागे रूपमेलनम् ।
काश्यां सनातनस्यापि तपनाद्यनुरोधतः ।८।
काशीवासिजनोद्धारचरितं किल्विषापहम् ।
तक्रपानञ्च गोपस्य नवद्वीपशुभागमः ।।९।।
तत्र नित्यविहारञ्च गौरीदासगृहेऽपि च ।
पुनराचार्य्यगेहे च गमनं शुभदर्शनम् ।१०।
भक्तवर्गरसोल्लासमातुश्चरणवन्दनम् ।
माधवाराधनं तत्र नीलाद्रिगमनं ततः ।।११।।
प्रतापरुद्रसन्त्राण रथयात्रादिदर्शनम् ।
नरेन्द्रसरसि भक्तमेलनं हरिकीर्त्तनम् ।।१२।।
तैर्द्दत्तं भोजनञ्चापि गौराङ्गगुणकीर्त्तनम् ।
कृतमद्वैतप्रभुणा रामदासानुकम्पनम् ।१३।

प्रकाश ।।७।।

पुनरागमन, प्रयाग में श्रीरूप मेलन, काशी में सनातन मिलन, तपन मिश्र का अनुरोध ।।८।। काशीवासी जनों का उद्धार कार्य्य, निर्म्मली करण, गोप का तक्रपान, नवद्वीप शुभागमन ।।९।।

नवद्वीप में नित्य विहार, गौरी दास गृह में अवस्थान पुनर्वार, अद्वैत आचार्य्य गृह में गमन, शुभ दर्शन ।।१०।।

भक्त वर्ग का परमोल्लास, मातुश्चरण वन्दनम्, माधवाराधन, अनन्तर नीलाद्रिगमन ।।११।। नरेन्द्र सरोवर में भक्त मेलन, श्रीहरि कीर्त्तन ।।१२।।

भक्त प्रदत्त भोज्य पदार्थ भोजन, श्रीगौराङ्ग गुण कीर्त्तन श्रीअद्वैत कर्त्तृक श्रीमन् महाप्रभु की स्तुति, रामदास के प्रति अनुकम्पा ।।१३।।

नित्यानन्दविहारादि-गौराङ्गगुणकीर्त्तनम् ।
दिव्योन्मादादिभावानां प्राकट्यं स्यादनन्तरम् ॥१४॥
रामानन्दस्वरूपाद्यै राससंकीर्त्तनादिकम् ।
नित्यानन्दविहारादिवर्णनं गौरदर्शनम् ।१५।
गुण्डिचायां पुष्पवाट्यां विराजञ्च स्वभक्तयोः ।
गदाधरसमं नित्यानन्दगौराङ्गचन्द्रयोः ।१६।
एवं सञ्चिन्तयन् कृष्णचैतन्यचरितं बुधः ।
शुद्धप्रेमामृतनिधौ निमग्नो भवति सदा ।१७।
ईश्वरोऽपि स्वयं कृष्णो यतो भक्तिरसाश्रयः ।
आस्वादयति स्वप्रेमनाममाधुर्य्यमद्भूतम् ॥१८॥
तल्लीलास्वादनादेव किं न स्यात् प्रेमवैभवम् ।
अतो निर्म्मत्सरो भूत्वा शृणु गौराङ्गकीर्त्तनम् ॥१९॥

नित्यानन्द विहारादि गौराङ्ग गुण कीर्त्तन, दिव्योन्मादादि भाव प्रकटन, अनन्तर रामानन्द स्वरूप प्रभृति के द्वारा रास सङ्कीर्त्तन नित्यानन्द विहारादि वर्णन, गौर दर्शन, ॥१४-१५

पुष्पवाटी एवं गुण्डिचा मन्दिर में निवास, निज वृन्द के सहित गदाधर एवं नित्यानन्द के सहित कथोपकथन ॥१६॥

इस प्रकार बुधगण, श्रीकृष्णचैतन्य चरित चिन्तन कर सदा शुद्ध प्रेमामृताम्बुधि में निमग्न होंगे ॥१७॥

स्वयं कृष्ण ईश्वर होकर भक्ति रसाश्रयता निबन्धन निजनाम माधुर्य्य का आस्वादन करते हैं ॥१८॥

उनकी लीला का आस्वादन करने से क्यों नहीं प्रेम वैभव होगा ? अतएव निर्म्मत्सर होकर गौराङ्ग चरित कीर्त्तन श्रवण करें ॥१९॥

चत्वारः प्रक्रमा अस्य सर्गादि अष्टसप्ततिः ।
प्रथमः षोड़शश्चापि द्वितीयोऽष्टादशस्तथा ।२०।
तृतीयस्तु तथैव स्यात् चतुर्थः षड़् विंशतिः ।
एकोनविंशशतशः सप्तविंशाधिकानि च ॥२१॥
श्लोकानि सुपठन्नेव रसिकः परमादरात् ।
प्रेमपूर्णो भवेन्नित्यं श्रवणादपि भावुकः ।२२।
श्रुत्वा सर्व्वं नित्यानन्दगौराङ्गगुणकीर्त्तनम् ।
मुरारिं संप्रणम्याह श्रीदामोदरपण्डितः ।२३।
कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं न संशयः ।
धन्योऽसि हि भवान् कृष्णचैतन्यरसपूरकः ॥२४॥
श्रीलाद्वैतप्रभुरपि सुखं श्रीलगौराङ्गचन्द्र-
लीलारत्नसमञ्जसं सुमधुरमाश्रुत्य हर्षादसौ ।
तं प्राह श्रीमुरारिं त्वमपि खलु सदा रामचन्द्रस्य*
तस्मादेतत्त्वयि प्रकटितं ग्रन्थरत्नं हि तेन ।२५।

प्रस्तुत ग्रन्थ में चार प्रक्रम हैं, सर्ग – अष्ट सप्तति ७८ हैं, प्रथम प्रक्रम में षोड़श सर्ग, द्वितीय में अष्टादश, तृतीय में अष्टादश, चतुर्थ में षड़् विंशति सर्ग हैं। सर्ग समूह में श्लोक संख्या १९२७ है ॥२०-२१॥

रसिक भावुक गण, परमादर से श्लोक समूह पान करने से नित्य प्रेम पूर्ण हृदय मण्डित होंगे ॥२२॥

श्रीदामोदर पण्डित मुरारि कवि को प्रणाम कर कहे थे, मैं कृतार्थ हूँ, कृतार्थ हूँ, कृतार्थ हूँ, इस में संशय नहीं है। आप धन्य हैं, आप श्रीकृष्णचैतन्य रस पूरक हैं ॥२३-२४॥

श्रील अद्वैत प्रभु भी सुमधुर श्रील गौराङ्ग चन्द्र लीला रत्न समञ्जस को सुनकर सर्ष मुरारि को कहे थे, तुम सदा रामचन्द्र के एकनिष्ठ भक्त हो, अतएव तुम्हारे द्वारा प्रकटित ग्रन्थ रत्न अतीव

श्रीरामगौरात्मक इहजगति प्रादुरासीद्यतोऽसौ
ग्रन्थेनैतेन नित्यं जनयति परमप्रेममाधुर्य्यपारम् ।
श्रुत्वा सर्व्वे परमरसिकाः प्रेमपूर्णान्तराश्च ।
गायन्तस्तं परमसुखदं मोक्षमेवाक्षिपन्ति ।२६।
श्रीवासपण्डितः प्राह प्रेमगद्गदया गिरा ।
ग्रन्थमासाद्य हर्षेण मुरारिं परमोत्सुकः ।२७।।
त्वमेष जगतां बन्धमोक्षाय कृतवान् हरेः ।
लीलां भगवतो ग्रन्थं श्रुत्वा मुच्येज्जनो भयात् ।२८।
एवं भक्तगणाः सर्व्वे ग्रन्थवर्णनमद्भूतम् ।
श्रुत्वा मुरारिं संनम्य प्राह तस्य कथा मिथः ।२९।
सोऽपि प्रणम्य विधिवन्मुरारि
धृत्वा तु तेषां चरणारविन्दम् ।

उज्ज्वल है।।२५।।

श्रीराम ही गौरात्मक हैं, इस जगत् में जन कल्याण कर शिक्षा प्रदान हेतु आविर्भूत हुये हैं। अतः इस चरित्र ग्रन्थ, परमप्रेम माधुर्य्य पराकाष्ठा को उत्पन्न करेगा। परम रसिक भक्तगण प्रेमपूर्ण हृदय से इस ग्रन्थ पाठ कर परमसुखद मोक्ष को भी तिरस्कार करते हैं।।२६।।

श्रीवास पण्डित प्रेमगदगयायमान वाणी से परमोत्सुकता से मुरारि के प्रति कहे थे।।२७।।

तुमने हि जगज्जनगण को बन्ध से मुक्त करने के निमित्त श्रीहरि चरित्र का वर्णन किया, जिस के श्रवण से जनगण भय से मुक्त हो जायेंगे।।२८।।

इस प्रकार भक्त वृन्द अद्भुत ग्रन्थ वर्णन को सुनकर मुरारि को प्रणाम कर परस्पर कथालाप किये थे।।२९।।

कवि मुरारि ने भी भक्त वृन्द के चरणों में प्रणाम कर प्रेमपूर्वक

प्रेम्ना जय कृष्णचैतन्यराम
इति ब्रुवन्नृत्यति रोरवीति ।३०।
अन्योऽन्यमालिङ्ग्य श्रीगौरचन्द्र रसेनपूर्णा किल ते बभूवुः।
श्रीपतिरेकेन जगद्धिताय प्रकाश्य लीलां सुरहस्यमेतत् ।३१।
चतुर्द्दशशताब्दान्ते पञ्चत्रिंशतिवत्सरे ।
आषाढ़सितसप्तम्यां ग्रन्थोऽयं पूर्णतां गतः ३२

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरिते चतुर्थप्रक्रमे
षड्विंशतितमः सर्गः
सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थः

"कृष्णचैतन्य राम" शब्दोच्चार पूर्वक नृत्य करने लगे थे ॥३०॥

गौर भक्त वृन्द परस्पर परस्परको आलिङ्गन कर श्रीगौरचन्द्र के प्रीतिरस से पूर्ण हुये थे, एवं मानने लगे थे कि श्रीपति एक रूप में जगज्जनों में पारस्परिक सौहार्द्द्य सञ्चार हेतु सत् शिक्षामूलक सुरस्य लीला ग्रन्थ का प्रकाश किये हैं ॥३१॥

१४३५ शकाब्दा की आषाढ़ शुक्ल सप्तमीतिथि में ग्रन्थ प्रणयन समाप्त हुआ ॥३२॥

इति श्रीकृष्णचैतन्य चरिते चतुर्थ प्रक्रमे षड्विंशतितमः
सर्गः सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थः ॥

चैत्रमास्यसिते पक्षे अमायां रविवासरे ।
पूरिता विमलाभाषा सज्जनानन्दवर्द्धिनी ॥
गान्धर्वादास्यलुब्धेन हरिदासेन शास्त्रिणा
भूदेवान्वयजातेन वृन्दारण्य निवासिना ।
रसाकाशग्रहेचन्द्रे ग्रन्थोऽयं पूर्णतां गतः ॥
शुभमस्तु शकाब्दः १९०६ ।